नये भारत का जन्म

अनुक्रम

1. झूठे शब्दों से सावधान..2
2. जगत बहुत यथार्थ है..14
3. वैज्ञानिक चिंतन आना चाहिए...25
4. किनारों से जंजीर भी छूट जाना जरूरी है..47
5. अहंकारी समाज सदा पीछे देखता है...54
6. क्रांति का आधार सूत्र हैः विचार...70
7. देश धन के लिए बीमार हो गया...79
8. दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ेगी..89
9. चरित्रहीनता के कारण ही गुलामी आई...114 10...अध्यात्म बीमारी बन गया .... 124 11..मेरा भरोसा व्यक्ति पर है 140

नये भारत का जन्म
पहला प्रवचन

झूठे शब्दों से सावधान

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहूंगा।
ऐसा ही एक स्कूल था तुम्हारे स्कूल जैसा। बहुत छोटे-छोटे बच्चे थे उस स्कूल में। ऐसी ही एक सुबह होगी, स्कूल खुला होगा और एक इंस्पेक्टर स्कूल के निरीक्षण के लिए आया। उसे स्कूल की बड़ी कक्षा में ले जाया गया। उसने उस स्कूल के छोटे-छोटे बच्चों से कहा कि तुम्हारी कक्षा में जो तीन बच्चे सबसे ज्यादा आगे हैं, जो पहला हो, दूसरा हो, तीसरा हो, उन तीनों बच्चों को मैं एक के बाद एक बुलाऊंगा, वह आकर बोर्ड पर सवाल हल करे।
पहला बच्चा उठ कर आया और उसने सवाल हल किया। फिर दूसरा बच्चा भी उठ कर आया, उसने भी सवाल हल किया। फिर तीसरा बच्चा उठ कर आया, लेकिन उठते समय वह थोड़ा झिझका, डरा, बोर्ड के पास आकर भी ऐसा लगा जैसे भयभीत है। फिर उसने बोर्ड पर सवाल शुरू किया। इंस्पेक्टर उसे देख कर थोड़ा हैरान हुआ। और उसे शक हुआ कि शायद यह तो पहला ही बच्चा है जो पहले भी आ चुका और अब फिर आ गया। उसने उस बच्चे को रोका और पूछा कि मुझे तुम्हारा चेहरा पहचाना हुआ मालूम पड़ता है। लगता है तुमने पहली बार भी आकर सवाल हल किया था। क्या तुम वही लड़के नहीं हो? उस लड़के ने कहा कि मैं लड़का तो वही हूं लेकिन उस हैसियत से नहीं आया हूं, मैं अब हमारी कक्षा के तीसरे लड़के की जगह आया हूं। तीसरा लड़का हमारी कक्षा का क्रिकेट का मैच देखने चला गया है, मुझसे कह गया है कि उसकी कोई जरूरत पड़े तो मैं उसकी जगह काम कर लूं। इंस्पेक्टर तो बहुत नाराज हुआ। उसने कहाः कोई आदमी किसी दूसरे की जगह परीक्षा नहीं दे सकता है। यह तो बेईमानी सीखने की शुरुआत हो गई।
वह बहुत नाराज हुआ, उस बच्चे ने क्षमा मांगी, अपनी जगह जाकर बैठ गया।
तब वह इंस्पेक्टर स्कूल के शिक्षक की तरफ मुड़ा। शिक्षक बोर्ड के पास चुपचाप खड़ा था। उस इंस्पेक्टर ने उस शिक्षक को कहा कि आप क्यों चुपचाप खड़े रहे? हो सकता था मैं न भी पहचान पाता और वह लड़का धोखा दे जाता। लेकिन आपको तो रोकना चाहिए था। आप तो लड़के को पहचानते ही होंगे? उस शिक्षक ने कहाः क्षमा करें, मैं इस कक्षा का शिक्षक नहीं हूं। मैं तो पड़ोस की कक्षा का शिक्षक हूं। लड़कों को मैं पहचानता नहीं। इस कक्षा का शिक्षक क्रिकेट का मैच देखने चला गया है और मुझे कह गया है कि अगर जरूरत पड़ जाए तो मैं उसकी जगह खड़ा हो जाऊं। मैं उसकी जगह खड़ा हुआ हूं।
वह इंस्पेक्टर तो और भी नाराज हुआ। उसने कहाः बच्चे ही दूसरे की जगह खड़े होकर धोखा नहीं दे रहे हैं आप भी धोखा दे रहे हैं। यह तो आपकी नौकरी नहीं चलनी चाहिए। उसने अपना रजिस्टर निकाल कर शिक्षक के खिलाफ लिखना चाहा, गरीब शिक्षक घबड़ा गया, हाथ जोड़ने लगा, पैर पड़ने लगा और कहा, अब दुबारा ऐसी भूल नहीं करूंगा। उस इंस्पेक्टर को दया आ गई और उसने कहा कि इस बार तुम बच जाते हो, क्योंकि मैं असली इंस्पेक्टर नहीं हूं, असली इंस्पेक्टर क्रिकेट का मैच देखने चला गया है। मैं उसका पड़ोसी हूं। मुझसे कह गया है कि कोई काम पड़े तो जाकर मैं निरीक्षण कर आऊं।
इस कहानी से क्यों मैं शुरू करना चाहता हूं? इस पूरे देश की कहानी ऐसी
हो गई है। छोटे से बच्चे से लेकर देश के बड़े राष्ट्रपति तक, सब धोखा है, सब बेईमानी है। छोटे से आदमी से लेकर, बड़े से बड़े आदमी तक आत्मवंचना है, वंचना है। सारा देश एक बड़ी बेईमानी में, सारा देश एक बड़ी अनैतिकता में, सारा देश एक धोखाधड़ी में उलझा हुआ है। लेकिन कोई इसे कहना नहीं चाहता है। कोई इस बात को स्वीकार नहीं करना चाहता है। कोई इस बीमारी को साफ-साफ देखने को राजी नहीं है। और अगर कोई बीमारी ठीक-ठीक न पहचानी जा सके, तो उसका इलाज असंभव हो जाता है। लेकिन अगर हम बीमार को बीमार कहें, तो बीमार नाराज होता है। बीमार भी यही सुनना पसंद करता है कि वह बिल्कुल स्वस्थ है। और हम तो इस देश में झूठी बातें सुनने के इतने आदी हो गए हैं, कि जिसका कोई हिसाब नहीं। शायद इसीलिए हम झूठी बातें सुनने के आदी हो गए हैं कि सच्ची बातें कहने

जैसी हमारे व्यक्तित्व में बिल्कुल नहीं हैं। झूठी बातों को कह कर ही हम मन को समझा लेते हैं। आज सारे देश में, गांव-गांव में, कोने-कोने में हिंदुस्तान के बच्चे गीत गाएंगे, सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा। और सारे जहां से बद्तर हालत है हिन्दुस्तान की। इस झूठ को हम दोहराएंगे। हिन्दोस्तां सारे जहां से अच्छा हो सकता है, है नहीं। और जब तक हम यह नहीं समझ लेते हैं कि है नहीं, तब तक वह हो भी नहीं सकता। यह समझ लेना जरूरी है कि हमारी हालत आज दुनिया में सबसे पिछड़ी हुई, सबसे दीन-हीन, सबसे बुरी है। यह दुखद है जानना। लेकिन इसे जाने बिना कोई रास्ता नहीं है कि हम इस देश को अच्छा बना सकें। सिर्फ अच्छा है, यह कह लेने से कोई देश अच्छा नहीं हो जाता। सिर्फ अच्छा है, यह दोहरा लेने से उस देश के भाग्य नहीं बदल जाते। लेकिन हम हजारों साल से बड़े-बड़े शब्दों का उपयोग करने के इस भाँति आदी हो गए हैं कि हमें यह ख्याल ही नहीं होता कि जो हम कह रहे हैं, वह सत्य है, या नहीं। उसमें कोई सच्चाई है, या नहीं।
हिंदुस्तान देश की तरह दुनिया में बढ़िया से बढ़िया देश है, लेकिन आदमियों के लिहाज से दुनिया में बदतर से बदतर देश है। हम से ज्यादा बुरा आदमी आज पृथ्वी पर खोजना बहुत कठिन है। हम से ज्यादा कमजोर और हारा हुआ आदमी भी खोजना कठिन है। हमसे ज्यादा धोखाधड़ी से भरा हुआ आदमी भी खोजना कठिन है। और हम से ज्यादा अच्छी बातें करने वाली कौम भी कहीं नहीं है। यह बड़ा चमत्कार मालूम होता है। जो कौम धर्म की दिन-रात बात करती हो, जो महावीर, बुद्ध, मोहम्मद और गांधी की चर्चा करती हो, जो कुरान, गीता और बाइबिल से नीचे बात ही न करती हो, अगर हम उसके चरित्र को और उसके व्यक्तित्व को देखें तो बहुत हैरान हो जाना पड़ता है?
मुझसे लोग कभी-कभी पूछते हैं कि इतनी धर्म की जहां बात चलती है, इतने अच्छे लोग जहां पैदा होते हैं, वह समाज अच्छा क्योंनहीं हो पाता? फिर धीरे-धीरे मुझे दिखाई पड़ने लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम इतने बुरे लोग हैं कि सिवाय अच्छी बातें करने के हम और कुछ भी नहीं कर सकते। कई बार ऐसा हो जाता है, जो कौम कुछ भी नहीं कर सकती, वह बातचीत ही करना शुरू कर देती है। फिर बातचीत के धुएं में ही अपने को भुलाने की हम कोशिश में लग जाते हैं। हमें खयाल ही भूल जाता है कि जिंदगी बातचीत से नहीं बनती, जिंदगी के तथ्य बातचीत करने से नहीं बदलते और अच्छी बातें कर लेने से अच्छा समाज निर्मित नहीं हो जाता है। बल्कि सच तो यह है कि जो समाज अच्छा नहीं है, वह अच्छी बातें करने का भी हकदार नहीं है।
मेरे एक मित्र पटना यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर हैं, वह पीछे स्वीडन गए। स्वीडन गए थे। वह भारत के धर्म के संबंध में समझाने। हिंदुस्तान के लोग हिंदुस्तान के बाहर जाते हैं धर्म को समझाने। और कोई उनसे दुनिया में नहीं पूछता, अगर मेरा बस चले तो दुनिया के लोगों से कहूं, हिंदुस्तान का कोई भी आदमी बाहर आए, तो उसकी गर्दन पकड़ लेना और पूछना कि पहले अपने मुल्क को धर्म समझाओ, फिर यहां आना। लेकिन हिंदुस्तान ने एक धंधा बना रखा है। हिंदुस्तान के बाहर जाकर धर्म की बातें करने का, वह मित्र भी स्वीडन गए थे धर्म की बातें करने।
वह जिस होटल में ठहरे थे, सुबह उठते ही उन्होंने होटल के बैरा को कहा
कि मुझे शुद्ध दूध चाहिए, प्योर मिल्क चाहिए। उस बैरा ने कहा, प्योर मिल्क, शुद्ध दूध? हमारे मैन्यु में ऐसी कोई ची.ज नहीं है। पैश्चुराइज. मिल्क मिल सकता है, कंडेन्ड मिल्क मिल सकता है, लेकिन प्योर मिल्क, शुद्ध दूध जैसी कौन-सी चीज होती है, हमें पता नहीं है। आप पुनः समझा दें कि शुद्ध दूध यानि क्या? फिर उस बैरा ने कहा कि मैं बहुत पढ़ा-लिखा आदमी नहीं हूं, मैं अपने मैनेजर को बुला लाता हूं वह शायद समझ सकें कि आपके शुद्ध दूध से क्या मतलब है? क्योंकि यह शब्द मैंने अपनी जिंदगी में सुना ही नहीं।
शुद्ध दूध जैसा शब्द हिंदुस्तान के बाहर कहीं सुना भी नहीं जा सकता है। मैनेजर आया, उसने कहा कि क्षमा करिए, हम बहुत दुखी हैं कि आप शुद्ध दूध चाहते हैं और शुद्ध दूध क्या होता है, हमें यह ही पता नहीं। हम कैसे इंतजाम करें, आपका मतलब क्या है? आप थोड़े ब्यौरे से समझा दें। तो उन मित्र ने कहा कि मैं ऐसा दूध चाहता हूं, जिसमें पानी न मिला हो। तो उस मैनेजर ने कहा

लेकिन दूध में पानी मिलेगा ही किसलिए? दूध में पानी के होने का सवाल ही क्या है? आप कैसी बातें कर रहे हैं? हम दूध में पानी क्यों मिलाएंगे?
उन मित्र ने कहा, आप नहीं मिलाते तो ठीक है, हम इसी तरह के दूध को शुद्ध कहते हैं, जिसमें पानी न मिलाया गया हो। तो वह मैनेजर पूछने लगा, आप आते कहां से हैं? क्या वहां दूध में पानी मिलाया जाता है? वे मित्र कहने लगे, पहले मिलाया जाता था, दूध में पानी, अब तो पानी में दूध मिलाया जाता है, जहां से हम आते हैं। वो मैनेजर उनसे कहने लगा और आप धर्म के संबंध में यहां बोलने आए हैं? आप धर्म के संबंध में यहां बोलने आए हैं?
अभी मैंने अखबारों में देखा कि स्वीड़न में अगर छह आने सेर दूध मिलता है, तो स्वीडन के ग्वालों से सरकार ने निवेदन किया है कि हम एक पैसा दाम बढ़ाना चाहते हैं। सवा छह आने सेर करना चाहते हैं। मैं दंग हुआ पढ़ कर, हमारे मुल्क का ग्वाला सरकार से कहेगा कि हम एक पैसा दाम बढ़ाना चाहते हैं? हिंदुस्तान का ग्वाला नहीं कहेगा, कोई नहीं कहेगा। एक छटांक पानी मिला देगा, आधा सेर पानी मिला देगा। एक पैसा बढ़ाने के लिए सरकार से निवेदन करने की जरूरत? और मैं और भी हैरान हुआ कि स्वीडन की पार्लियामेंट में इस पर विचार चला कि एक पैसा दाम बढ़ाने दिया जाए ग्वालों को, या नहीं। कमीशन नियुक्त हुआ और उसने जांच की कि ग्वालों की मांग सही है या झूठ? एक पैसे की मांग के लिए। और ग्वाले भी एक पैसे की मांग करते हैं? बड़े नासमझ ग्वाले हैं, बड़े भौतिकवादी ग्वाले हैं। धार्मिक ग्वाले तो पानी मिला देते हैं और पैसे का सवाल ही न था।
वह जो कृष्ण को मानने वाले ग्वाले हैं जो, कहते हैं कृष्ण गोपाल की पूजा करते हैं, और गौ को माता कहते हैं, वह पानी मिला देते हैं। हैरान होंगे हम जानके कि कलकत्ते में, बंगाल में गायों के साथ जबरदस्ती दूध निकालने के लिए जो किया जाता है, वैसा अनाचार दुनिया में कहीं नहीं किया जाता। उनकी योनि में डंडे डाल कर धक्के दिये जाते हैं, ताकि घबड़ाहट में उनका दूध ज्यादा छूट जाए। और हिंदुस्तान गौ को माता मानता है। और हिन्दुस्तान धार्मिक देश है। और स्वीडन के नास्तिक लोग भौतिकवादी मैटेरियलिस्ट, वह एक पैसा बढ़ाने के लिए सारे मुल्क के ग्वालों ने सरकार से कहा कि एक पैसा हमें बढ़ाना है। क्योंकि इतने में हमारा काम नहीं चलता। एक पैसा बढ़ाना जरूरी है। कमीशन ने रिपोर्ट दी कि उनकी मांग जायज है। वह एक पैसा बढ़ाया जाना चाहिए। अगर हिन्दुस्तान में किसी को एक पैसा बढ़वाना हो, तो एक रूपये की मांग करनी पड़ेगी। तब मुश्किल से एक पैसा बढ़ सकता है। क्योंकि सरकार भी जानती है कि कोई मांग जायज नहीं होती। और मांग करने वाले लोग भी जानते हैं अगर एक पैसा चाहना हो, तो कम-से-कम सौ पैसे की मांग करो, तब एक पैसा बढ़ सकता है। वह भी नाजायज मांग करते हैं। एक पैसे की मांग जायज थी, लेकिन कमीशन ने यह भी कहा कि जनता पर बहुत भार है, इसलिए जनता से एक पैसा नहीं लिया जा सकता, और ग्वालों की मांग सच है, उन्हें एक पैसा मिलना चाहिए। सरकार एक पैसा दे दे, ग्राहक पर बोझ नहीं पड़ना चाहिए।
सरकार ने तय किया और वो एक पैसा ग्वालों का बढ़ा दिया गया। लेकिन वह एक पैसा सरकार देगी, वह एक पैसा जनता नहीं देगी। हम सोच ही नहीं सकते कि एक पैसे के लिए पार्लियामेंट को इतने परेशान होने की जरूरत है। ये हमारी कल्पना के बाहर है। हम तो सस्ती तरकीबें निकालते हैं, शॉर्टकट निकालते हैं। क्यों मुल्क के नेताओं को तकलीफ दो? क्यों पार्लियामेंट परेशान हो? थोड़ा पानी मिला दो, नल जगह-जगह हैं, थोड़ा खोल दो।
रवीन्द्रनाथ के पिता के घर में सौ आदमी थे। और रोज दस-पच्चीस मेहमान ठहरे रहते थे। मनों दूध उनके घर खरीदा जाता था। रवीन्द्रनाथ ने देखा कि दूध में पानी मिलाया जाता है, तो रवींद्रनाथ ने एक निरीक्षक नियुक्त कर दिया। एक इंस्पैक्टर नियुक्त कर दिया कि वह देख-रेख करे कि दूध में पानी न मिले। लेकिन दूसरे दिन देखा गया कि पानी और भी ज्यादा मिल गया, क्योंकि इंस्पैक्टर का भी उसमें हिस्सा जुड़ गया था। रवीन्द्रनाथ जिद्दी थे, उन्होंने कहा कि हम और एक सुपरवाइ.जर नियुक्त करेंगे। एक आदमी को और सुपरवाइजर रख दिया कि वह निरीक्षक को भी देखे और दूध को भी देखे। तीसरे दिन दूध में पानी भी आया और एक छोटी मछली भी आ गई। क्योंकि जिस पोखर से,

बंगाल में घर-घर में पोखर होते हैं, जिनमें लोग मछलियां पालते हैं। उस पोखर में से पानी भरके डाला होगा मन भर दूध में, उसमें एक मछली भी आ गई। तो रवीन्द्रनाथ के पिता ने कहा कि निरीक्षकों को विदा कर दो, अगर तुमने अब और निरीक्षक रखे तो मगरमच्छ भी आने शुरू हो सकते हैं। क्योंकि सबका हिस्सा बढ़ता चला जाएगा।
उन मित्र को उस मैनेजर ने कहा कि मैं आश्चर्य में हूं कि आप धर्म की शिक्षा देने यहां आए हैं? और आपके मुल्क में लोग दूध में पानी मिलाते हैं, या पानी में दूध मिलाते हैं, बड़ी हैरानी की बात है? कैसे लोग हैं वे? जिनको धार्मिक होने का भ्रम है।
हमें धार्मिक होने का अदभुत भ्रम है। और हमारे व्यक्तित्व में धर्म
का कोई भी संबंध नहीं। मंदिरों में हम जाते हैं, मस्जिदों में हम जाते हैं, धर्मगुरूओं के पास बैठते हैं, संतों और फकीरों की बाते सुनते हैं। लेकिन हमारे जीवन में सच्चाई का, ईमानदारी का, चरित्र का कोई भी हिस्सा नहीं है। क्या हो गया है? ये दुर्भाग्य क्यों हो गया? इस दुर्भाग्य के पीछे कुछ बुनियादी बातें होनी चाहिए। ये दुर्भाग्य आकस्मिक नहीं हो सकता, अचानक नहीं हो सकता। और अगर हम उन बुनियादी बातों की खोज-बीन नहीं करते हैं, तो ये दुर्भाग्य और बड़ा होता चला जाएगा, और हम अपने देश में कभी सौभाग्य का जन्म नहीं देख सकेंगे। उनमें पहली बात यह है कि हम बडे.-बड़े शब्दों का और झूठे शब्दों का प्रचार करने के आदी हो गए हैं। और ध्यान रहे, अगर बहुत प्रचार किया जाए, तो खुद को भी ख्याल नहीं आता कि जो हमने प्रचार किया था, वह झूठ था। सारी दुनिया के गुरू हैं हम, जगतगुरू हैं, हम अपने ही मुंह से प्रचार करते रहते हैं। और धीरे-धीरे हमें यह बात ही भूल गई है कि हमारी गुरू होने की कोई हैसियत नहीं है। हम दुनिया के शिष्य भी हो जाएं, जगत शिष्य भी हो जाएं तो ठीक है, हमें गुरू होने का तो कोई सवाल नहीं है। लेकिन हमें यह ख्याल ही नहीं आता।
मैं अभी एक छोटे से गांव में गया। उस गांव में छोटी सी मैंने एक दुकान देखी, वो दुकान लोहे की कुछ कुर्सियां वगैरह बनाती है, लेकिन बोर्ड उस पर लगा हुआ है इंटरनेशनल स्टील कॉरपोरेशन। अंतर्राष्ट्रीय स्टील निगम। गांव छोटा सा, फर्नीचर लोहे का बनाते हैं, छोटी सी दुकान है, लेकिन नाम है- अंतर्राष्ट्रीय स्टील कॉरपोरेशन।
एक गांव में पनागर का एक कवि इकट्ठा हो जाए, लखनाजोन का एक कवि इकट्ठा
हो जाए, कालादेही का एक कवि इकट्ठा हो जाए, और अखिल भारतीय कवि सम्मेलन शुरू हो जाएगा। किसी को ख्याल ही नहीं आता कि शब्द का कोई अर्थ होता है। शब्द का कोई प्रयोजन होता है।
एक अंग्रेज यात्री भारत से वापस लौटा। और उसने अपनी डायरी में लिखा
है कि भारत में शब्दों को कोई सीरियसली नहीं लेता। इसलिए भारतीय शब्दों का कोई बहुत अर्थ नहीं लेना चाहिए। मैं अभी उसकी डायरी पढ़ रहा था, मैं दंग हुआ। उसने यह उल्लेख किया है, कि भारतीय शब्दों का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि किन्हीं भी शब्दों का किसी भी तरह उपयोग किया जाता है। कोई शब्दों को बहुत गंभीरता से उपयोग नहीं करता। उसने लिखा है कि मैं ऋषिकेश गया और ऋषिकेश में मैंने सुना कि वहां एक योग फोरेस्ट यूनीवर्सिटी है। एक योग विश्वविद्यालय है, तो मैंने सोचा कि हजारों विद्यार्थी उस योग विश्वविद्यालय में पढ़ते होंगे। जैसे ऑक्सफॉर्ड में पढ़ते हैं बारह हजार विद्यार्थी। ऐसा कोई विश्वविद्यालय होगा, तो मैं दर्शन करने गया। एक छोटे से मकान पर तख्ता लगा हुआ है और लिखा हुआ है योग फॉरेस्ट यूनीवर्सिटी। योग विश्वविद्यालय। भीतर जाके मैंने पूछा, वहां कोई भी नहीं है, सिर्फ एक आदमी रहता है। और उस आदमी ने कहा कि अभी तो कोई विद्यार्थी नहीं, कभी-कभी कोई योग सीखने आ जाता है। तो यह विश्वविद्यालय कैसे हो गया?
लेकिन हमें ख्याल ही नहीं आता। हम अपने अहंकार की घोषणाएं किसी भी भांति करते चले जाते हैं। इसी तरह की ये भी घोषणा है कि सारे जहां से अच्छा, हिन्दोस्तां हमारा। कौन कहेगा यह? न हमारे पास वस्त्र है, न हमारे पास भोजन है, न हमारे पास स्वस्थ शरीर है, न हमारे पास उम्र है, आयु है, न हमारे पास रहने के मकान हैं, न हमारे पास काम है, न हमारे पास उत्पादन के

साधन हैं, न हमारे पास आत्मा है, न हमारे पास बुद्धि का विकास है। फिर भी हम दुनिया में सबसे अच्छा अपने को कहे चले जाते हैं। ये झूठ बंद होने चाहिएं। हमें जानना चाहिए कि हम क्या हैं? और कहां हैं? माना कि असलियत बहुत दुखद है। यह भी माना कि उसे स्वीकार करने में भी मन को पीड़ा होती है। लेकिन घाव को देखना अच्छा है, बजाय ढांक लेने से। बीमारी को पहचानना अच्छा है, बजाय भुला देने के, क्योंकि भुलाने से और ढांक लेने से कोई घाव कभी भी समाप्त नहीं होता। जानने से, पहचानने से उसका इलाज भी किया जा सकता है। इस बात को समझ लेना बहुत ही जरूरी है कि आज हमसे दीन-हीन पृथ्वी पर और कोई भी नहीं है। और इसका कारण यह नहीं है कि हमारा देश दीन-हीन होने को मजबूर है, इसका कुल कारण इतना है कि देश को दीन-हीन बनाने में हम सारे लोग सहयोगी हैं। अन्यथा देश महान भी हो सकता है। समृद्ध भी हो सकता है। शक्तिशाली भी हो सकता है। लेकिन हमें ख्याल ही नहीं पैदा होता, इस बात का। हमें यह स्मरण ही नहीं आता। हमारी समझ ही कहीं जैसे भटक गई है, हजारों वर्ष से और हमें पहचान में भी यह बात नहीं रह गई है कि इस देश को सौभाग्यशाली बनाना है, तो कविताएं करके सौभाग्यशाली नहीं बनाया जा सकता। न ऊंचे गुणगान से सौभाग्यशाली बनाया जा सकता है। सौभाग्यशाली बनाना है, तो श्रम करना होगा, मेहनत करनी होगी, समझना होगा, जीवन के विज्ञान को विकसित करना होगा। एक बात इसलिए प्राथमिक रूप से यह कहना चाहता हूं, हम बड़े शब्दों का उपयोग बंद कर दें और अपनी स्थिति के अनुकूल शब्दों की खोज करें। दूसरी बात यह कहना चाहता हूं, कि इन बड़े शब्दों के व्यवहार के कारण, इन बहुत बड़े-बड़े शब्दों के निरंतर उच्चारण के कारण, इन बड़े-बड़े शब्दों की घोषणाओं के कारण, हम तथ्यों को देखने में धीरे-धीरे अंधे हो गए हैं। तथ्यों और फैक्ट के संबंध में हमारी कोई जानकारी, कोई पहचान, कोई प्रतिक्रिया नहीं रह गई। हम पहचान ही नहीं पाते कि तथ्य क्या हैं?
रूस की औसत उम्र अड़सठ वर्ष है। स्वीड़न की औसत उम्र बहत्तर वर्ष है। अस्सी वर्ष तक की औसत उम्र के लोग, दूसरी कौमें हैं। हमारी औसत उम्र तीस साल के आस-पास अटकी हुई है। हम अपनी औसत उम्र नहीं बढ़ा पाते हैं, तो हम मान लेते हैं कि भाग्य जितनी उम्र तय कर देता है, उतनी ही उम्र होती है। भाग्य से तय है कि आदमी की उम्र कितनी होगी? हिन्दुस्तान में एक आदमी की औसत आमदनी बीस नए पैसे से ज्यादा नहीं है। दुनिया में कोई विश्वास नहीं कर सकता है कि बीस नए पैसे औसत आमदनी का आदमी कैसे जिंदा रहता होगा? कैसे जीता होगा? क्या खाता होगा? क्या पीता होगा? बिहार में अकाल पड़ा, तो सारी दुनिया से बिहार के अकाल के लिए सहायता आनी शुरू हुई।
मैंने सुना है, अमेरिका में एक छोटी बच्ची अपनी मां से पूछती है कि अकाल का क्या मतलब होता है? क्योंकि अमेरिका में अकाल का बच्चों को पता ही नहीं कि इसका अर्थ क्या होता है। अमेरिका के बच्चों को अकाल का अर्थ पता नहीं है। हिन्दुस्तान के बच्चों को जन्म के साथ ही अकाल में ही जीना पड़ता है। वो अमेरिका की बच्ची को उसकी मां कहती है कि अकाल का मतलब यह है कि उन लोगों के पास रोटी नहीं है खाने को। तो वह छोटी बच्ची कहती है तो फिर बिस्कुट, आइसक्रीम, यह चीजें वे क्यों नहीं खा लेते? उसकी मां कहती है, पागल उनके पास बिसकुट, आइसक्रीम भी नहीं है, तो उनकी छोटी बच्ची कहती है कि उनके फ्रिज में फल वगैरह तो होंगे, वे फल क्यों नहीं खा लेते? वह बच्ची वही कहती है जो उसके घर में है। उसकी मां कहती है पागल उन्हें फ्रिज का पता ही नहीं कि फ्रिज क्या होता है? वह बच्ची कहती है बड़े अजीब लोग हैं, उनके पास फ्रिज भी नहीं, फल भी नहीं, बिस्कुट भी नहीं, रोटी भी नहीं, तो वे क्या कर रहे हैं, इतने दिनों से? यह चीजें कहां खो गईं? वे बाजार से क्यों नहीं खरीद लेते? उसकी मां कहती है, लेकिन उनके पास पैसे भी नहीं हैं।
लेकिन अमेरिकी बच्ची को, छोटी बच्ची को यह समझना बिल्कुल ही मुश्किल है, कि दुनिया में ऐसे अरबों लोग हैं, जिनको फ्रिज का पता ही नहीं है कि क्या होता है। करोड़ों बच्चे हैं जिन्हें बिस्कुट का कोई पता नहीं। करोड़ों बच्चे हैं जो अकाल में पैदा होते हैं, अकाल में ही जीते हैं, और समाप्त होते हैं।

आज अमेरिका के बच्चों को यह समझना बिल्कुल मुश्किल है। यह उनकी कल्पना के बिल्कुल बाहर है। यह उनके हिसाब के बाहर है। लेकिन यह क्या हो गया? क्या हमारी जमीन बांझ है? क्या हमारी जमीन पैदा नहीं कर सकती? क्या अमेरिका की जमीन में कोई विशेषता है? नहीं, हमारी जमीन बहुत समृद्ध है, बहुत पैदा कर सकती है। लेकिन हमारी बुद्धि बांझ है। हमारी शक्ति बांझ है। हमारी आत्मा मर गई है। हम कुछ भी नहीं कर पाते।
हिरोशिमा में एटम बम गिरा, बीस साल पहले। जिन लोगों ने जाकर उस एटम बम
की जलती हुई बस्ती को देखा, राख हो गई बस्ती को, उन्होंने समझा कि अब हिरोशिमा में कभी भी कुछ नहीं होगा। वह हमेशा के लिए नष्ट हो गया। एक लाख बीस हजार लोग एकदम जल कर राख हो गए। मकान जमीन से मिल गए। वृक्ष समाप्त हो गए। पक्षी मर गए। वहां कोई जीवन न रहा, सपाट जला हुआ मैदान रह गया। आज बीस साल बाद जो हिरोशिमा देखने जाते हैं, वह दंग रह जाते हैं। आज हिरोशिमा से ज्यादा सुंदर बस्ती पृथ्वी पे दूसरी नहीं है। और हिरोशिमा के लोग अकड़ कर यह बात कहते हैं कि अच्छा हुआ एटम गिर गया, हमारा पूरा गांव नया हो गया। नई सड़कें, नए मकान, सब नए बगीचे, सब नया हो गया। आज जापान में हिरोशिमा और नागासाकी सुंदरतम गांव हैं। बीस साल पहले जो जल कर राख हो गए थे, बीस साल में वह फिर से स्वर्ग बन गए, हम न कभी जले, न हम कभी राख हुए, लेकिन फिर भी हम स्वर्ग नहीं बना पाते, फिर भी हम कुछ नहीं कर पाते।
जर्मनी हर पन्द्रह-बीस साल में युद्ध से गुजरा। हर बार बर्बाद हो गया। पंद्रह-बीस सालों में फिर शक्तिशाली हो जाता है। फिर खड़ा हो जाता है। हम महाभारत के बाद किसी बड़े युद्ध से नहीं गुजरे। और कौन जाने महाभारत कभी हुआ या नहीं हुआ? हो सकता है वो सिर्फ कहानी हो। और अगर हुआ भी होगा तो पांच हजार साल पहले कभी हुआ होगा। महाभारत के बाद हम किसी बड़े युद्ध से नहीं गुजरे। हमने कोई बर्बादी नहीं देखी। लेकिन हम बर्बाद ही बर्बाद होते चले जाते हैं। दुनिया में कौमें बर्बाद होती हैं, दस साल में पुनर्जीवित हो जाती हैं। मालूम होती है, उनके पास कोई आत्मा है। कोई आत्मा है, जो मरने से इंकार करती है, जो लड़ती है और फिर जीवित हो जाती है। हमें देख कर ऐसा लगता है हमारे पास कोई आत्मा नहीं है। ये आत्मा हमारी खो कैसे गई? और हम आत्मवादी लोग हैं, हम आत्मा ही आत्मा की सुबह से रात तक बात करते हैं, कि आत्मा अमर है, आत्मा मरती नहीं। और हमें कोई देखे तो पता चलता है कि हमारे भीतर कोई आत्मा ही नहीं है।
जापान या जर्मनी वाले लोग कह सकते हैं कि उनके पास आत्मा है। जर्मनी में एक करोड़ लोगों की हत्या हुई, पिछले महायुद्ध में। एक करोड़ लोग जब किसी मुल्क में हत्या होती है, तो लाशें पुर गई, लाशों को फेंकना मुश्किल हो गया। बर्लिन तक ठेठ सारे देश के मकान तक बर्बाद हो गए। सारे बड़े विश्वविद्यालय सारे मकान गिर गए। सब आग से जल गए। सब बर्बाद हो गया, आज कोई जाके देखे निशान नहीं मिलेगा कि कभी बीस साल पहले यहां बम गिरे थे। कोई निशान नहीं मिलेगा। सब नया हो गया, फिर उन्होंने बसा लिया, अजीब बात है। और ये सारे लोग चिल्ला के नहीं कहते फिरते कि उनका देश दुनिया में सबसे अच्छा है। उनके देश को देख कर लगता है कि वह अच्छा है। उनकी हिम्मत देख कर लगता है कि वह अच्छा है। हम सिर्फ बातचीत किए चले जा रहे हैं। नहीं ऐसे नहीं चलेगा, यह बातचीत बहुत हो चुकी अब आगे नहीं होनी चाहिए। आने वाले बच्चों को हम बातचीत करना नहीं सिखाना चाहते हैं। उन्हें हम कुछ तथ्यों को बदलने की हिम्मत और ताकत देना चाहते हैं। यह तुम छोटे-छोटे बच्चों के हाथ में होगा आने वाले दिनों में कि इस देश को कैसा बनाते हो। यह देश दुनिया में सबसे अच्छा बन सकता है, लेकिन अभी है नहीं। और अगर तुमने समझ लिया कि यह अभी है, तो फिर बनाने का कोई सवाल नहीं है, बात खत्म हो गई।
अगर भिखमंगा समझ ले कि वह सम्राट है, तो फिर भिखमंगा ही रहेगा। फिर सम्राट होने का प्रयत्न क्यों करेगा, जब सम्राट है ही। उसे प्रयत्न करने की क्या जरूरत है? हम चिल्ला कर कहते रहते हैं कि भारत सोने की चिड़िया है। मैंने बहुत खोज-बीन की मुझे वो सोने की चिड़िया कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती। और कब थी भारत सोने की चिड़िया, वह भी मुझे दिखाई नहीं पड़ता? भारत हजारों साल से गरीब और दीन और दरिद्र है। आज जितना समृद्ध है भारत, अगर इसको

समृद्ध कहें, इतना भी समृद्ध कभी नहीं था। क्योंकि समृद्धि का एक लक्षण होता है, जैसे ही देश समृद्ध होता है, उसकी जनसंख्या बढ़नी शुरू हो जाती है। हिन्दुस्तान की जनसंख्या हजारों साल तक ठहरी हुई थी। जनसंख्या बढ़ती नहीं। क्योंकि बच्चे पैदा होते और मर जाते, दस में से सात बच्चे मरते रहे। अमीर बच्चों में से दस में से एक बच्चा मरता है समृद्ध मुल्कों में। और वह कहते हैं कि और मुल्क समृद्ध होगा तो दस में से एक बच्चे को भी नहीं मरने देंगे। गरीब मुल्कों के दस में से सात बच्चे मरते हैं। हिन्दुस्तान की जनसंख्या बुद्ध के जमाने में दो करोड़ थी। और कोई दो हजार साल तक दो-ढाई, तीन करोड़ के बीच अटकती रही। संख्या इधर बढ़ी दो सौ वर्षों में। और आज जोर से बढ़ रही है, आज हमारे बच्चे एकदम मर नहीं जाते हैं, हालांकि जीते हैं मरे- मरे, लेकिन एकदम मर नहीं जाते। इतनी हमारी समृद्धि है कि मरे-मरे जीते चले जाते हैं।
अभी तुम बच्चों की शक्ल मैं देखता हूं। तुम कभी रूस के बच्चों की किताब उठाकर उनकी शक्ल देखना, उनकी किताब मैं पढ़ता हूं तो बंद कर देता हूं। मन होता है उसे देखना नहीं चाहिए, उनके बच्चों की तस्वीर दिखानी चाहिए। उनके बच्चों की तस्वीर को देखते ही छाती में तीर सा लगता है। हमारे बच्चे, उनके बच्चे, उनके बच्चे जीवित मालूम पड़ते हैं। उनके बच्चों की रौनक और है। उनके बच्चों की आंखों की चमक और है। उनके बच्चों का शरीर कुछ और है। और हमारे बच्चे, हमारे बच्चे ऐसे लगते हैं जैसे दिया जल रहा हो और तेल न हो भीतर। सब धुआं-धुआं फैलता हो, थोड़ी पीली-पीली रोशनी उठती हो, जो बत्ती के जलने से पैदा होती है, तेल के जलने से नहीं। ऐसा हमारा बच्चा दिखाई पड़ता है। उनके बच्चे कुछ और ही बात मालूम पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि भीतर शक्ति का उबाल आया हुआ है। बच्चे कुछ करने को तत्पर हैं, बच्चे कुछ जीने के लिए तत्पर हैं, कुछ करेंगे, कुछ जियेंगे। लेकिन हमारे बच्चे तो इतने क्षीण शक्ति हैं कि उनसे हम क्या आशा करें कि वह जिएंगे, हम क्या आशा करें कि वे क्या करेंगे? वे जी रहे हैं, यह चमत्कार है। यह आश्चर्य है कि वे जिंदा हैं।
भारत हमेशा से गरीब था। आज भी गरीब है। आज गरीबी हमें और खलती है, क्योंकि सारी दुनिया भी पहले गरीब थी। हम भी गरीब थे तो बात इतनी नहीं खलती थी। तीन सौ वर्षों में सारी दुनिया तो समृद्ध हो गई और हम गरीब के गरीब बने रहे। तीन सौ वर्षों में सारी दुनिया ने अंबार लगा लिए, रूस की ट्रेनों में पिछले पांच-सात वर्षों तक कोयले की जगह गेहूं जलाया जाता रहा। हमारी कल्पना के बाहर है। यहां आदमी के इंजन में हम गेहूं नहीं डाल पाते, वो रेल में गेहूं जलाते हैं। पागल हैं क्या? लेकिन रूस का इंजीनियर जानता है कि कोयला बनने में बड़ी मुश्किल होती है। कोयला लाखों साल में बनता है जमीन के नीचे। कोयले को बनाना आसान और जल्दी संभव नहीं है। कोयले की संपत्ति तय है, लेकिन गेहूं तो हम पैदा कर लेते हैं। और उतना गेहूं पैदा कर लेते हैं कि गेहूं को जला देते हैं, कोयले की जगह।
आज अमेरिका दुनिया भर के गरीबों को भोजन दे रहा है। हम अपने लिए भोजन पैदा नहीं कर पाते। दूसरी कौमें, दूसरी कौमों को भोजन भेजती हैं। असल बात यह नहीं है कि अमेरिका हिन्दुस्तान पर दया करता है, अमेरिका के पास इतना गेहूं है, कि बिना दिए कोई चारा नहीं। या तो समुद्र में डुबा दो, या किसी को दे दो। तो मुत में अगर दया करनी पड़ती हो, तो दया को छोड़ना गलत है। आज अमेरिका के पास इतना गेहूं है कि उसका तुम क्या करोगे? उसे कैसे खाओगे? उसे देना पड़ेगा किसी को। और हम कृषिप्रधान देश, जहां सौ में से नब्बे आदमी गेहूं पैदा कर रहे हैं और फिर भी भूखे हैं। और जहां अमेरिका में सौ में से केवल पन्द्रह-बीस प्रतिशत लोग गेहूं पैदा करने में लगे हैं, वह अतिरिक्त गेहूं पैदा कर रहे हैं। मामला क्या है?
अमेरिका कृषिप्रधान नहीं है, और अमेरिका आपको गेहूं देता है। और आप कृषिप्रधान हैं और आपको गेहूं मांगना पड़ता है। सौ में से अस्सी-नब्बे आदमी खेती-बाड़ी में लगे हुए हैं। और अमेरिका में बीस प्रतिशत आदमी खेती- बाड़ी में लगे हुए हैं। सोचने जैसा मामला है कि यह बात क्या है? कुछ गड़बड़ है कहीं हमारे काम के ढंग में, हमारे जीने के ढंग में, हमारी विचार की पद्धति

में। हमारे भीतर कहीं कोई बुनियादी भूल चल रही है हजारों वर्ष से। और वह भूल हमें डुबाए चली जाती है, और अगर हम उस भूल के प्रति नहीं जागते, तो हमारा आगे कोई भविष्य नहीं, वो भूल क्या है? वह भूल मैं इंगित करना चाहता हूं। वह भूल यह है कि हमने भौतिकता को जितना मूल्य देना चाहिए था, वह नहीं दिया है। हम थोथे अध्यात्म की बातों में बहुत समय जाया किये। मैं यह नहीं कहता हूं कि अध्यात्म की बातें व्यर्थ हैं; मैं यह कहता हूं लेकिन अध्यात्म की बातों के हकदार वे ही लोग हैं, जो भौतिक जीवन और जगत को जीतने में समर्थ हैं। उससे पहले अध्यात्म की बातें करना गलत है।
जैसे कोई आदमी एक मकान बनाए। नींव तो रखने के पत्थर न हों उसके पास, और मकान के शिखर बनाने की योजना करे। हम पागल कहेंगे। हम कहेंगे पहले नींव के पत्थर चाहिएं, फिर मकान का शिखर बनेगा। पहले मंदिर के नीचे का पत्थर रखो, दीवालें बनाओ, फिर शिखर बनाना, लेकिन वह आदमी कहे कि हम नींव वगैरह की बात नहीं करते, हम तो सिर्फ शिखर बनाना चाहते हैं। अध्यात्म जीवन का शिखर है। भौतिकता जीवन की ध्वनि है, जीवन की बुनियाद है। पश्चिम के मुल्क, दुनिया के मुल्क भौतिकवाद की बुनियाद रख रहे हैं। आज नहीं कल उनके आध्यात्मिक जीवन का शिखर भी प्रकट होगा। लेकिन हमारे पास भौतिकता की बुनियाद नहीं, हम भौतिकवाद के दुश्मन लोग हैं। हम जिस आदमी को भी देखते हैं, वह गाली देता हुआ मालूम पड़ता है कि भौतिकवाद में क्या रखा हुआ है? लेकिन शरीर भौतिक है। पेट के लिए रोटी चाहिए, वह भौतिक है। कपड़े चाहिएं, वह भौतिक है। सड़कें बनानी हैं, वह भौतिक हैं। इंजन बनाने हैं, वह भौतिक हैं। सब कुछ भौतिक है, जगत में सौ चीजें भौतिक हैं, उनमें से एक-आध चीज आध्यात्मिक है, और वह अध्यात्म भी निन्यानबे भौतिक चीजें जब इकट्ठी हों, तब उसके पैदा होने की संभावना होती है, अन्यथा उसके पैदा होने की संभावना भी नहीं होती। यह बड़े मजे की बात है कि जीवन में जो श्रेष्ठतम चीजें हैं वह निकृष्टतम चीजों पर निर्भर करती हैं। निकृष्ट चीजें श्रेष्ठ के बिना भी हो सकती हैं। श्रेष्ठ चीजें निकृष्ट के बिना नहीं हो सकती।
मकान की नींव बिना शिखर के भी हो सकती है, लेकिन शिखर बिना नींव के नहीं हो सकता है। एक आदमी कविता कर सकता है, लेकिन बिना रोटी के कविता नहीं हो सकती। हालांकि बिना कविता के रोटी खाना हो सकता है।
रवींद्रनाथ के मस्तिष्क से गीतांजलि निकली। नोबल प्राइज मिली गीतांजलि को। लेकिन रवीन्द्रनाथ को रोटी देना बंद कर दो, गीतांजलि विलीन हो जाएगी। और रोटी को कोई नोबल प्राइ.ज ने देगा कि आदमी अच्छी तरह से खाना खाता तो उसको नोबल प्राइज दो। लेकिन रोटी के बिना गीतांजलि विलीन हो जाएगी। इससे गीतांजलि छोटी नहीं होती। इससे काव्य छोटा नहीं होता है। और न रोटी बड़ी होती है, इससे सिर्फ यही सिद्ध होता है कि दुनिया में जितनी ऊंची ची.ज हैं, वह उतनी नीची चीजों की बुनियाद पर खड़ी होती हैं, और निर्भर होती हैं। जीवन में जो श्रेष्ठ है, वह निकृष्ट पर खड़ा होता है। और हम निकृष्ट को छोड़कर बैठे हुए लोग, हमने शरीर को, हमने भूत को, हमने पदार्थ को कोई भी मूल्य नहीं दिया। हम सिर्फ परमात्मा की प्रार्थना कर रहे हैं, यह भूल बंद होनी चाहिए, अगर इस भूल को हम बंद नहीं कर पाते हैं, तो हम इस देश को कभी भी आगे उठाने में समर्थ नहीं हो सकेंगे।
एक छोटी सी कहानी, इस बात को मैं पूरा करूंगा। एक छोटी सी कहानी मुझे निरंतर प्रीतिकर रही है, मैंने सुना है कि रोम में एक बादशाह बीमार पड़ गया और वह बहुत बीमार था, वह इतना बीमार था कि उसके बचने की कोई उम्मीद न रही। चिकित्सक हार गए और उन्होंने कह दिया कि मौत निश्चित है। यह बादशाह बचेगा नहीं। तब किसी ने कहा कि एक फकीर आया हुआ है गांव में, वह फकीर मुर्दों को भी जिंदा कर देता है, तो आप तो अभी जिंदा हैं। शायद वो आपको बचा सके।
उस फकीर को लाया गया, उस फकीर ने कहा, यह बादशाह बच जाएगा। इसे कोई खतरनाक बीमारी नहीं है, एक छोटे से इलाज के इंतजाम की जरूरत है। अगर तुम्हारे रोम में, तुम्हारी बड़ी राजधानी में कोई एक समृद्ध और शांत आदमी मिल जाए तो उसके कपड़े ले आओ। वह कपड़े इसे पहना दो। यह ठीक हो जाएगा। वजीर भागे उन्होंने कहा, यह तो बहुत आसान है, राजधानी में आकाश छूते महल हैं, समृद्ध लोगों की भीड़ है, कोई कठिनाई नहीं होगी। वह नगर के सबसे बड़े धनपति

के पास गए, बड़ा वजीर, वजीर के साथ राजा का बूढ़ा नौकर। वजीर ने जाकर उस समृद्ध धनपति को कहा कि आप अपने कपडे. दे दें, सम्राट मरणशय्या पर पड़ा है, और किसी फकीर ने कहा है कि बच सकता है, अगर किसी समृद्ध और शांत आदमी के कपड़े मिल जाएं। उस धनपति ने कहा, मैं अपने प्राण दे सकता हूं राजा को बचाने के लिए। उसका बचाया जाना बहुत जरूरी है। लेकिन मेरे कपड़े काम नहीं आ सकेंगे। समृद्ध तो मैं बहुत हूं, लेकिन शांति से मेरा कोई परिचय नहीं है। मेरे कपड़े व्यर्थ हैं।
फिर वजीर गांव भर में घूमता रहा, ना मालूम कितने धनपतियों के द्वार खटखटाए, लेकिन यही उत्तर। सांझ हो गई, सूरज ढलने लगा तो व.जीर घबराया उसने साथ दौड़ते नौकर से कहा मैं तो सोचता था इलाज सस्ता है, लेकिन इलाज खतरनाक मालूम पड़ता है, वह फकीर धोखा दे गया। यह बीमारी ठीक नहीं हो सकेगी। वह बूढ़ा नौकर कहने लगा, मैं तो पहले ही समझ गया था कि यह इलाज बहुत मुश्किल है। यह दवा खोजी नहीं जा सकती। आप इतनी देर से समझे? उस वजीर ने कहा तू कैसे समझ गया? उस बूढ़े नौकर ने कहा, जब आप सम्राट के बड़े व.जीर अपने कपड़े देने का विचार न करके, दूसरे से कपड़े मांगने निकले तभी मुझे शक हो गया था कि यह इलाज होना संभव नहीं है। तो उस वजीर ने कहा कि मेरे कपड़े काम में नहीं आ सकते। धन तो मेरे पास बहुत है लेकिन शांति मेरे पास कहां? फिर वे सांझ होते-होते राजमहल वापस लौटने लगे, अंधेरा बढ़ने लगा। वजीर डरता है, महल में घुसने पर राजा से क्या कहेंगे? और तभी महल के पीछे नदी के पास से किसी की बांसुरी की आवाज सुनाई पड़ी, कोई गीत गा रहा है, उस गीत में ऐसी शांति है कि वजीर ने सोचा कि कहीं इस आदमी को शांति न मिल गई हो। चलो इससे पूछ लें, एक आखिरी उपाय और कर लें। वह नदी पार करके उस आदमी के पास पहुंचे अंधेरी रात, एक पत्थर की चट्टान पे बैठकर वह आदमी बांसुरी बजाता है। उसकी बांसुरी में ऐसा आनंद है, उसके सुरों में ऐसी शांति है, कि व.जीर ने उसके पैर पकड़ लिए और कहा कि जरूर तुम्हें शांति मिल गई है। उस आदमी ने कहा शांति? मैं शांति में ही जीता हूं। शांति ही मेरा जीवन है। क्या चाहते हो? उसने कहा धन्य कि हम आ गए, राजा बच जाएगा। तुम अपने कपड़े दे दो। राजा मर रहा है, किसी ने कहा है कि शांत और समृद्ध आदमी के कपड़े चाहिएं। उस निर्जन रात में, वह बांसुरी बजाने वाला एकदम चुप हो गया। और उसने कहा, मैं अपने प्राण दे सकता हूं। लेकिन कपड़े, मैं नंगा बैठा हुआ हूं। अंधेरे में तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा। कपड़े मेरे पास नहीं हैं। शांत मैं हूं, लेकिन कपड़े, कपड़े मेरे पास नहीं हैं। उस रात वो राजा मर गया। लोग मिले जिनके पास धन था, लेकिन शांति न थी, एक आदमी मिला, जिसके पास शांति थी, लेकिन कपड़े न थे।
पश्चिम और पूरब के मुल्कों ने इसी तरह की भूल की है। पश्चिम के मुल्कों ने कपड़े इकट्ठे कर लिए हैं, धन इकट्ठा कर लिया है, शांति उनके पास नहीं है। हम शांति की खोज में पागल की तरह लग गए, कि हमने सब कुछ खो दिया। हम नंगे और दीन-हीन खड़े हैं। और ध्यान रहे, यह ध्यान रहे ठीक से कि पश्चिम की भूल हमसे ज्यादा खतरनाक भूल नहीं है। क्योंकि पश्चिम की समृद्धि के बीच आज वे शांति को खोजने की आकांक्षा से भर गए हैं। उन्होंने जमीन की बुनियाद बदली है, अब वह शिखर भी रख लेंगे। हमारी भूल ज्यादा खतरनाक है। हमारे पास शिखर की योजनाएं हैं। शिखर है ही नहीं, और.जमीन पर हमारे पास बुनियाद भी नहीं है। हम भटक गए हैं ज्यादा, भौतिकता पहली सीढ़ी है, अध्यात्म दूसरी। उन्होंने पहली सीढ़ी रख ली है, वह दूसरी सीढ़ी भी रख लेंगे। हमारे पास पहली सीढ़ी है नहीं, दूसरी सीढ़ी की सिर्फ बातचीत है, ब्लू-प्रिंट, दूसरी सीढ़ी भी नहीं है। और वह दूसरी सीढ़ी नहीं रखी जा सकती, जब तक हम पहली सीढ़ी न रख लें।
पश्चिम अध्यात्म की तरफ झुकना शुरू हो गया है। उसने अपनी भूल स्वीकार
कर ली है। लेकिन हमने अपनी भूल अभी तक स्वीकार नहीं की है। हम भौतिकवाद की तरफ झुकने अभी भी शुरू नहीं हुए हैं। हमें यह भ्रम पैदा हो गया है कि भौतिकवाद की तरफ झुकना अध्यात्म का विरोध है। यह बात गलत है। यह सौ प्रतिशत गलत है। अध्यात्म और भौतिकवाद में विरोध नहीं है। भौतिकवाद अध्यात्म की सीढ़ी बनता है। भौतिकवाद सेतु है, जिससे हम अध्यात्म तक जाते हैं। शरीर में और आत्मा में विरोध? शरीर और आत्मा में विरोध नहीं है, शरीर

के ही मार्ग से हम आत्मा की तरफ भी जाते हैं। शरीर के बिना आत्मा का भी कोई पता लगाना मुश्किल हो जाएगा। शरीर के ही द्वार से आत्मा में प्रवेश होता है। प्रकृति के द्वार से परमात्मा में प्रवेश होता है। विज्ञान के द्वार से अध्यात्म में प्रवेश होता है। क्योंकि हम भौतिक की तरफ हमने ध्यान नहीं दिया, इसलिए विज्ञान भी पैदा नहीं हो सका है। और जो देश वैज्ञानिक नहीं है, वह देश गरीब होने को मजबूर रहेगा। जो देश वैज्ञानिक नहीं है, वह कमजोर रहेगा। जो देश वैज्ञानिक नहीं है वो दीन-हीन भी रहेगा और गुलाम भी रहेगा। उसकी आजादी बहुत दिन तक टिकने वाली नहीं हो सकती है। क्योंकि कमजोर हाथों में आजादी का क्या मतलब हो सकता है। कविताओं से आजादी की रक्षा नहीं होती है। ताकत चाहिए।
हिंदुस्तान पर चीन का हमला हुआ, सारा हिंदुस्तान कविता करने लगा। सारा हिंदुस्तान कहने लगा, सोए शेरों को मत छेड़ो। हम ऐसा कर डालेंगे, हम वैसा कर डालेंगे। शेरों को कभी सुना है आपने कि शेर कहते हों कि सोए शेर को मत छेड़ो, हम ऐसा कर देंगे, हम वैसा कर देंगे। सोए शेर को छेड़ो और पता चल जाता है कि शेर क्या करता है। लेकिन हम कविताएं करने लगे कि हम ऐसा कर देंगे, हम वैसा कर देंगे। और हमने कुछ भी न किया, चीन लाखों वर्गमील जमीन पर कब्जा करके बैठ गया। और हमारे कवि थोड़े दिन कविता करते रहे, फिर जाके अपनी घर-गृहस्थी संभालने लगे। फिर हम छोड़ दिए वो झंझट। क्योंकि कविताओं से अगर चीन हट जाता, तो हट जाता, उससे ज्यादा तो हम कुछ कर नहीं सकते। अब तो हमारे नेता यह बात ही बंद कर दिए हैं। वह जो हजारों मील, लाखों मील जमीन चीन ने दबा ली है, उसका क्या हुआ? अब उसकी नेता बात ही नहीं करते। अब तो मैं दिल्ली में एक बड़े नेता से बात कर रहा था, उन्होंने कहा, उस जमीन में कुछ पैदा ही नहीं होता, बेकार जमीन है। देश का नेता अगर यह कहे, कि उस जमीन में कुछ पैदा ही नहीं होता, बेकार जमीन है। अपने मन को समझाने की बड़ी तरकीब निकाल रहे हैं। यह भी हम स्वीकार करने को राजी नहीं कि हम हार गए हैं। हम स्वीकार नहीं करेंगे, हारते चले जाएंगे, स्वीकार नहीं करेंगे। स्वीकार करने को शायद हमें ताकत जुटाने का खयाल पैदा हो। लेकिन ताकत ऐसे ही पैदा नहीं हो जाती, ताकत विज्ञान से पैदा होती है, टैक्नोलॉजी से पैदा होती है। और हम विज्ञान के दुश्मन हैं। हम कैसे ताकत पैदा करेंगे? हम कैसे ताकत पैदा कर सकते हैं? नहीं, इन कविताओं को दोहरा लेने से नहीं चलेगा काम, हमें कुछ करना पड़ेगा। और उस करने की दिशा में सबसे बुनियादी बात यह है कि भारत को आने वाले पचास वर्षों में वैज्ञानिक होना है, और भौतिक जगत पर सामर्थ्य और शक्ति पैदा करनी है। और मेरा मतलब यह नहीं है, कि भौतिक जीवन पर शक्ति पैदा करने का अर्थ धर्म को खोना है। मेरा मतलब यह है कि धर्म का शरीर भी भौतिकवाद ही बनता है। और अगर हम भौतिक शरीर को नहीं संभाल पाते, तो आत्मा की हम बातें कर सकते हैं, आत्मा को भी सम्हाल नहीं सकते।
आने वाले पचास वर्षों में सारे मुल्क को इस श्रम में लग जाना है कि हम
एक भौतिकवादी भवन को खड़ा कर लें। फिर हम उसमें भगवान के मंदिर को भी बनाएंगे, जरूर बनाएंगे। लेकिन मकान तो बन जाए, जिसमें हम भगवान की प्रतिमा को स्थापित करें। मंदिर ही नहीं हैं भगवान की प्रतिमा को स्थापित कहां करें? शरीर ही नहीं है, आत्मा के आनन्द को कहां खोजें? रोटी ही नहीं है पेट में, काव्य कैसे पैदा होगा?
यह थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। सूत्र-रूप में दो बातें मैंने कहीं। बड़े शब्दों से सावधान होने की जरूरत है, क्योंकि वे हमारी असलियत को छिपाते हैं। झूठे शब्दों से सावधान होने की जरूरत है, कहीं उनके कारण हम झूठी सांत्वना में पड़ कर अपने को नष्ट न कर लें। और दूसरी बात मैंने कही, धर्म की अति हो गई है, हमें भौतिकवादी जीवन चिंतन को भी जन्म देना होगा, ताकि इस अति का मुकाबला किया जा सके। दूसरी बात मैंने कही कि हमें जीवन की बाह्य सामर्थ्य, शक्ति, समृद्धि इनको विकसित करने में ही लगना होगा।
और कोई कारण नहीं है हमारे पास, शक्ति बहुत है, एक बार हम सक्रिय हो जाएं, तो उस शक्ति से एक बहुत बड़े देश को जन्म दिया जा सकता है। भारत अतीत में महान नहीं था, लेकिन भविष्य में महान हो सकता है। और भगवान नहीं कर देगा उसे महान, उसे हमें श्रम करना होगा, तो हम उसे महान कर सकते हैं। अतीत

में हमारा स्वर्ण युग समाप्त नहीं हो गया। भविष्य में हमारा स्वर्ण युग आने को है, सतयुग बीत नहीं चुका, उसे हमें लाना है। एक अच्छा समाज, एक शक्तिशाली, समृद्ध, शांत, बढ़िया, भले, नैतिक, धार्मिक लोगों के व्यक्तित्व से भरे हुए समाज को जन्म देना है। अगर यह आकांक्षा हमारे भीतर पैदा हो जाए, तो हम उसे जन्म दे देंगे। लेकिन हमने सपना देखना ही बंद कर दिया है। नीत्शे ने कहीं एक वचन लिखा है, वह समाज मर जाता है, जो सपना देखना बंद
कर देता है। हम सपना ही नहीं देखते भविष्य का कोई, कोई ड्रीम हमारे प्राणों में नहीं है कि भविष्य ऐसा हो? कैसा भविष्य उसकी कोई कल्पना, उसकी कोई आकांक्षा, उसकी कोई अभीप्सा हमारे प्राणों में नहीं है? जिस प्राण में भविष्य का सपना नहीं है, उस धनुष की प्रत्यंचा टूट गई हैं, उस धनुष की प्रत्यंचा पर सपने का तीर नहीं है। उस धनुष की प्रत्यंचा अब भविष्य के किसी निशाने को कभी भी पूरा नहीं कर पाएगी। भविष्य के किसी निशाने पर चोट नहीं पहुंचा पाएगी। भारत के प्राणों की प्रत्यंचा टूटी पड़ी है। उसे सपनों का तीर चाहिए। जो भविष्य की तरफ उन्मुख हो। और सारी शक्ति हम लगा दें, तो कोई कारण नहीं है, दुनिया के दूसरे लोग जो कर रहे हैं, वो हम न कर सकें। हमारे बच्चे अभी भी चांद को देख कर हाथ फैलाते हैं। उनके मां-बाप उन्हें समझाते हैं कि चांद को नहीं पाया जा सकता। चांद बहुत दूर है। चांद को मामा समझके हम चुप रह जाते हैं। दूसरे मुल्कों के बच्चों ने हाथ फैला लिये हैं चांद तक। वे चांद को मामा मानने को राजी नहीं हैं। वे चांद पर बस्तियां बसाएंगे, मकान बनाएंगे। दूसरे मुल्कों के बच्चे आज नहीं कल चांद पर उतर जाएंगे। हमारे मुल्के के बच्चे अपने छोटे, गरीब हाथों को फैलाते रहेंगे। और उनके मां-बाप समझाते रहेंगे, चांद मामा है, चंदा मामा है, बहुत दूर है, उसे पाया नहीं जा सकता। और अगर कोई बहुत बुद्धिमान मां-बाप हुए, तो पानी की थाली भरके रख देंगे, और उसमें चांद दिखला देंगे, और बच्चों से कहेंगे, इसे पकड़ लो। पानी की थाली के झूठे चांद बहुत पकड़े जा सकते हैं, अब हमें असली चांदों को पकड़ने का सपना देखना है। और अगर हम यह सपना देख सकते हैं, तो इस मुल्क के सौभाग्य का उदय हो सकता है।
मैंने ये थोड़ी सी बातें कहीं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

नये भारत का जन्म
दूसरा प्रवचन

जगत बहुत यथार्थ है

मेरे प्रिय आत्मन्!
रोम के एक चौराहे पर बारह भिखारी लेटे हुए थे। एक परदेसी यात्री उस चौराहे से गुजरता था। वे बारह भिखारी ही हाथ फैला कर भीख मांगने लगे। उस यात्री ने खड़े होकर कहा कि तुममें जो सबसे ज्यादा अलाल हो, उसी को मैं भीख दे सकता हूं। उन बारह भिखारियों में से ग्यारह भिखारी दौड़ कर उसके सामने खड़े हो गए। और प्रत्येक दावा करने लगा कि मुझसे ज्यादा अलाल और कोई भी नहीं है। भीख मुझे मिलनी चाहिए। लेकिन वह यात्री हंसा और उसने कहा कि तुम ग्यारह ही हार गए। बारहवां आदमी अपनी जगह ही लेटा हुआ था और वहीं से पुकार कर रहा था कि मैं अलाल हूं, भीख मुझे मिलनी चाहिए। वह रूपया जो उसे देना था, बारहवें आदमी को दे दिया उसने। वही अलाल सबसे ज्यादा था। उसने उठने की भी मेहनत नहीं ली थी।
मैं सोचता हूं यह घटना भारत के भी किसी गांव में घट सकती है, बंबई में
या दिल्ली में। लेकिन एक फर्क पड़ेगा, यहां ग्यारह आदमी लेटे रहेंगे और एक आदमी उठेगा। और वह यात्री मुश्किल में पड़ जाएगा। एक आदमी को तो भीख देनी आसान है, ग्यारह आदमियों को भीख देनी बहुत मुश्किल हो जाएगी। यह फर्क क्यों पड़ेगा? यह फर्क इसलिए पड़ेगा कि भारत से ज्यादा अलाल, भारत से ज्यादा आलस्य से भरा हुआ मनुष्य खोजना पृथ्वी पे मुश्किल है। और इसमें भारत के आदमी का कोई कसूर नहीं है। और जो लोग भारत के आदमी को समझाने की कोशिश करते हैं कि तुम्हारी गलती है, वह समझाने वाले लोग बिल्कुल ही गलत हैं। इसमें भारत के आदमी की भूल नहीं है, इसमें भारत को जीवन को देखने का जो ढंग है, उसकी गलती है।
इस संबंध में थोड़ी बात मैं कहना चाहूंगा। हजारों साल से यह दुर्भाग्य
है हमारे ऊपर, हममें से कोई भी कोई काम नहीं करना चाहता है। इस जीवन को सुंदर, इस जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए कोई भी कोई श्रम नहीं करना चाहता है। यह आकस्मिक नहीं है, इसके पीछे हमारा जीवन का दर्शन, हमारी फिलॉसफी और लाइफ हजारों साल से इस देश ने परलोक की चिंता की है, इस लोक की नहीं। हजारों साल से हमारे ऋषि-मुनि हमें समझा रहे हैं, उस लोक को सुंदर बनाने के लिए, इस लोक को सुंदर बनाने के लिए नहीं। स्वभावतः श्रम तो इस लोक में करना पड़ेगा। इस पृथ्वी पर। इस जीवन में, और परलोक है असली लोक? इस पृथ्वी को छोड़ना है, इस जीवन को छोड़ना है, पाना है आकाश में बसा हुआ कोई स्वर्ग। तो इस पृथ्वी पर श्रम करना व्यर्थ है, नासमझी है। जो श्रम करते हैं, वे अज्ञानी हैं। जो आराम करते हैं, वे ज्ञानवान हैं। क्योंकि जिस पृथ्वी को छोड़ ही देना हो, उस पृथ्वी को बनाने और सृजन करने की चेष्टा नासमझी ही हो सकती है। हमने इस देश में ऐसा समझा हुआ है, जैसे कोई रेलवे स्टेशन पर वेटिंगरूम को समझ लेता है। वेटिंगरूम को सुंदर बनाने का कोई सवाल नहीं हैं। आदमी दो घड़ी वहां ठहरता है, उसकी गाड़ी आ जाती है, चला जाता है। उस दो घड़.ी में जितना उस वेटिंगरूम को वह और गंदा कर सके, जरूर करता है। फलों के छिलके वहां डाल सकता है, पान थूक सकता है। जिस वेटिंगरूम से घड़ी भर के बाद उठ जाना है, उस वेटिंगरूम की चिंता करने की जरूरत क्या है? और उस वेटिंगरूम के साथ हर यात्री यही व्यवहार करेगा, क्योंकि वह वेटिंगरूम किसी का भी घर नहीं है।
भारत की तीन हजार वर्षों में एक रेलवे स्टेशन पर बने हुए वेटिंगरूम जैसी हालत हो गई है। हम पृथ्वी के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं, हम इस जीवन के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं। और करना स्वाभाविक मालूम पड़ता है। क्योंकि हमें खोजना है कोई स्वर्ग, हमें पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की कोई कामना नहीं है। हमें कोई स्वर्ग खोजना है, जो पृथ्वी से अन्यथा है। इस गलत दृष्टिकोण ने भारत की सारी ऊर्जा, सारी शक्ति को क्षीण कर दिया और भारत की सारी आकांक्षा, भारत की सारी अभीप्सा, जो इस पृथ्वी को स्वर्ग बना सकती थी, वह व्यर्थ हो गई और मरूस्थल में खो गई। नहीं, भारत के किसी आदमी का कोई भी

कसूर नहीं है। अगर कोई समझाता हो कि भारत के आदमी का कसूर है, तो उसे कहना कि वह गलत बातें समझाता है। भारत की जीवन दृष्टि गलत है। भारत के एक-एक आदमी का कोई कसूर नहीं है।
जिस पृथ्वी को हमें स्वर्ग बनाना हो उसके लिए हम श्रम करते हैं, जिस पृथ्वी को हमें घर बनाना हो, उसके लिए हम श्रम करते हैं। जिस पृथ्वी पर हमें जीना हो और जीने को एक आनंद बनाना हो, उस पृथ्वी के लिए हम श्रम करते हैं। जिस पृथ्वी को छोड़ देना हो, और एक ही हमारे मन की प्रार्थना है हजारों साल से कि भागवान हमें आवागमन से कैसे छुटकारा मिल जाए? हम बड़े दुःखी हैं कि हमें पृथ्वी पर भेजा गया है। हम बहुत निंदित हैं कि हम पृथ्वी पर हैं। पृथ्वी पर वे लोग हैं, जो पाप करते हैं। हमारा सोचना ऐसा है। पृथ्वी पर वे लोग जन्म लेते हैं, जो पाप करते हैं। जो पाप नहीं करते उनका जन्म लेना बंद हो जाता है। जो देश ऐसी गलत बातें सोचता हो, और जीवन में जन्म लेने को पाप समझता हो, वह देश अगर जीवन की बाजी हार जाए तो इसमें आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं।
स्वभावतः जब पाप के कारण हम जीवन में हैं, तो कर्म करके और पाप करेंगे। क्योंकि कर्म तो पाप लाता है और अकर्म मुक्ति लाता है। जो जितना कम काम करता है, वह उतना ही शीघ्र मुक्त हो सकता है क्योंकि प्रत्येक काम बन्धन पैदा करेगा और प्रत्येक काम फलों से बांध देगा। इसलिए तीन हजार वर्ष से भारत अकर्म के, कुछ न करने की बात पर चिंतन कर रहा है। और जब हजारों साल तक समझाया जा रहा हो कि कुछ नहीं करना, कर्म से मुक्त हो जाना, और कर्म से संयासी हो जाना ही मोक्ष पाने का, और परमात्मा के चरणों को पाने का उपाय है, तो अगर पूरे भारत की आत्मा ने यह बात स्वीकार कर ली हो तो, जुम्मेवार कौन है? नहीं भारत का आम आदमी जिम्मेवार नहीं है, भारत के नेता, भारत के गुरु, भारत के संन्यासी जुम्मेवार हैं। भारत की पूरी आत्मा की हत्या का जुम्मा भारत के बड़े लोगों पर है, भारत साधारण आदमी पर नहीं। और जब तक हम ये नहीं समझ लेंगे तब तक भारत की आत्मा का नया जन्म नहीं हो सकता है। भारत को अपने सोचने के सारे ढंग बदलने पड़ेंगे। तो भारत की नई आत्मा का जन्म हो सकता है। उन सोचने में बुनियादी भूल यह है कि अब तक हम स्वर्ग को आकाश में और बादलों में खोजते रहे हैं, वह गलत थी बात। स्वर्ग बनाना पड़ेगा, स्वर्ग खोजना नहीं है। स्वर्ग निर्मित करना पड़ेगा, कहीं बना-बनाया, रेडीमेड नहीं है कि आप बैठेंगे बस में, सवार होंगे और पहुंच जाएंगे। स्वर्ग कहीं भी नहीं है। स्वर्ग बन सकता है, और नर्क भी कहीं नहीं है, नर्क भी बनाना पड़ता है। और हमने काफी नर्क बना भी लिया है। अगर मुल्क में चारों तरफ देखें, तो अब किसी नरक के संबंध में हमें भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि इस मुल्क से ज्यादा बदतर नर्क में अब कहीं भी भेजने का उपाय नहीं हो सकता। मैंने सुना है, एक आदमी मर गया। उसकी पत्नी एक प्रेतात्मविद के पास गई
और उसने कहा कि मैं अपने पति की आत्मा से बात करना चाहती हूं। कोई उपाय करवा सकते हैं? उस प्रेतात्मविद ने उसके पति की आत्मा को एक मीडियम के ऊपर, एक माध्यम के ऊपर बुलवाया। उस पत्नी ने अपने पति से पूछा कि आनंद में तो हैं? उसके पति ने कहा, मैं बहुत ही आनंद में हूं। ऐसा आनंद मैंने कहीं भी नहीं देखा था। उसकी पत्नी ने कहा, तब तो मैं बहुत खुश हूं, मैं तो बड़ी डरी हुई थी। आप आनंद में हैं, यह बड़ा अच्छा हुआ। स्वर्ग के संबंध में और भी कुछ बताइए? उस आदमी ने कहा स्वर्ग? मैं नरक में पड़ा हुआ हूं। उसकी पत्नी ने कहा नर्क में हैं और कहते हैं आनंद में हैं? उस आदमी ने कहा नर्क में आकर पता चला, कि पृथ्वी से बड़ा नर्क और कहीं भी नहीं हो सकता। वह आदमी जरूर भारत में रहा होगा। वह आदमी दुनिया के किसी दूसरे कोने में नहीं हो सकता। ऐसा हम पहले सुनते थे कि देवता तरसते हैं पृथ्वी पर पैदा होने को। जिस पृथ्वी पर से आदमी भी भागने को तरसता है, उस पृथ्वी पर देवता पैदा होने को तरसते होंगे, यह अफवाह उड़ा दी होगी किसी ने। जिस पृथ्वी से आदमी मुक्त हो जाने के लिए तरसता है, उस पृथ्वी पर देवता किसलिए पैदा होने को तरसते होंगे? अब तो मुझे लगता है कि अगर नर्क भी कहीं होगा तो नरक के निवासी भी पृथ्वी पर पैदा होने से बहुत डरते होंगे। अब तो पृथ्वी भी नरक के निवासियों के लिए अंडमान-निकोबार मालूम पड़ती होगी। वहां जो बहुत जघन्य

अपराधी होते होंगे, उनको भेज देते होंगे, पृथ्वी पर। हमने तो अपनी जमीन को कम से कम निश्चित ही नरक बना लिया है। लेकिन नरक के भी हम इतने आदी हो गए हैं कि यह भी हमें दिखाई नहीं पड़ता। आदमी जिस बात का आदी हो जाए, उसे दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। भारत में शूद्र, करोड़ों शूद्र हजारों वर्षों से पशु से भी बदतर जीवन बिना रहे हैं। लेकिन उन्हें दिखाई पड़ना बंद हो गया था। अगर एक आदमी सुबह से सांझ तक पखाना ही ढोता रहे, तो उसे पखाने से दुर्गंध आनी बंद हो जाती है। हम आदी हो जाते हैं।
मैंने सुना है, एक आदमी एक दूर गांव का एक मछुआ मछलियां बेचने शहर आया था। पहली बार शहर आया था। मछलियां बेच कर उसने सोचा कि मैं शहर घूम लूं। वह गांव के बड़े-बड़े रास्तों पर गया। गांव में सुगंध वालों की भी एक अलग गली थी। जहां सुगंध बेचने की दुकानें थी, परयूम की दुकानें थी, वह वहां भी गया। लेकिन वह आदमी सिर्फ मछलियों की सुगंध के सिवाय और कोई सुगंध नहीं जानता था। अगर मछलियों की सुगंध को सुगंध कहा जा सके, तो वह एक ही सुगंध जानता था। वहां बड़ी-बड़ी कीमती सुगंध उड़ रही थी, उस रास्ते पर। वह बहुत घबराने लगा। उसकी श्वासें घुटने लगीं, वह जैसे-जैसे भीतर गया, वह बेहोश होकर गिर पड़ा। सुगंध के दुकानदार भागे हुए आए, तो उन्होंने सोचा कि वह आदमी बेहोश हो गया। उनकी तिजोरियों में जो बहुत कीमती सुगंध थी, जिनको बड़े राजा- महाराजा ही खरीद सकते थे, उनको वे निकाल कर लाए। उस आदमी को सुंघाने लगे ताकि वह होश में आ जाए। उन बेचारों को क्या पता, कि वह सुगंधों के कारण ही बेहोश पड़ा है। वह बेहोशी में हाथ-पैर तड़फाने लगा। सिर पटकने लगा। बोल तो सकता नहीं था। भीड़ इकट्ठी हो गई। उस भीड़ में एक और मछुआ था, जो पहले कभी मछुआ रह चुका था। उसने कहा दोस्तों तुम उसकी जान ले लोगे। तुम्हारी सुगंध उसको और बेहोश किये दे रही है। हटो यहां से दूर। उस गिरे हुए मछुए की पास में ही टोकरी पड़ी थी। टोकरी में गंदे चिथड़े थे, जिनमें वह मछलियां बांध कर लाया था। उस दूसरे मछुए ने उस टोकरी पर थोड़ा पानी छिड़का, और उस आदमी की नाम पर रख दी। उस आदमी ने गहरी श्वास ली, आंखें खोली और उसने कहाः दिस इ.ज ए रियल परयूम। यह है असली सुगंध।
आदमी नर्क का भी आदी हो सकता है, भारत ऐसा ही आदी हो गया। अब हमें कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता। देखने के लिए भी संवेदनशीलता चाहिए। अब हमें कुछ अहसास नहीं होता। चारों तरफ जो हो रहा है हम उसे चुपचाप देखे चले जाते हैं। और इसे देखे चले जाने के पीछे हमारी शिक्षा जुम्मेवार है। हमें कहा गया है, संसार तो एक माया है, एक सपना। इस माया को इस सपने को बहुत गंभीरता से नहीं लेना चाहिए। यह सब होता रहा है, यह सब होता रहेगा। यह दुनिया सदा ऐसी रही है, इसको न अच्छा बनाया जा सकता है, न अच्छा किया जा सकता है। इसलिए भारत का हृदय पत्थर हो गया है। भारत का एक-एक आदमी संवेदनाशून्य हो गया है। वह देखता रहता है, खड़े हुए जो भी हो रहा हो। सड़.क पर लोग भीख मांग रहे हों, वह गुजर जाएगा उनके पास से, उसे ख्याल भी नहीं आएगा कि देश में लोग भीख मांगें, और उसी देश में मैं जिंदा रहूं, यह उचित है? हत्याएं होती रहेंगी, चोरियां होती रहेंगी, बेईमानियां होती रहेंगी और उसे कुछ भी पता नहीं चलेगा। कोई काम नहीं करेगा मुल्क में, कोई श्रम नहीं करेगा, कोई उत्पादन नहीं करेगा, सारे लोग चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक बैठे रहेंगे अपनी कुर्सियों पर। हालांकि हेड चपरासी छोटे चपरासियों को समझाएगा कि काम करना चाहिए। हेड चपरासी को ऊपर का सुपरवाइजर समझाएगा कि काम करना चाहिए। सुपरवाइजर को ऊपर का अधिकारी समझाएगा कि काम करना चाहिए। राष्ट्रपति से लेकर चपरासी तक, जिसके भी नीचे जो उपलब्ध हो, उसको समझाएगा कि काम करो। लेकिन कोई काम नहीं करेगा। सबको पता चल गया है कि काम करना चाहिए, यह एक सिद्धांत की बात है, यह काम की बात नहीं है। यह समझाना चाहिए लोगों को। यह बहुत अच्छी बात है, यह समझाने में बहुत अच्छी लगती है। समझने वाला भी समझता है कि बेकार है, सुनने वाला भी समझता है बेकार है, इस जिंदगी में क्या काम की जरूरत है? एक सपना है जिंदगी गुजर जाएगी। एक माया है, एक खेल चल रहा है, गुजर जाएगा। भगवान की लीला है, भगवान सब कर रहा है, हमारा काम है कि हम खड़े होकर देखते रहें। हजारों साल तक अगर ऐसा समझाया गया हो आदमी को,

तो स्वभावतः आदमी का रस जीवन को बनाने और बदलने का क्षीण हो जाएगा। वह रस हमारा क्षीण हो गया है।
पहली बात, हम स्वर्ग कहीं और खोज रहे हैं, इसलिए भारत निष्क्रिय हो गया है। दूसरी बात, इस पृथ्वी को हम एक सपना, एक झूठ समझ रहे हैं, इसलिए हमारा रस खो गया है। और तीसरी बात, हमें समझाया गया है कि कर्म करना बंधन है, हमें यह समझाया गया है कि काम करना श्रेष्ठतम आदमी का लक्षण नहीं है। हम श्रेष्ठ आदमी उसको कहते हैं, जो सब काम-धाम छोड़के जंगल चला जाता है। हम उस आदमी के पैर पड़ते हैं जो जिंदगी के सारे काम छोड़ देता है। हम उस आदमी को कहते हैं कि यह परम अवस्था को उपलब्ध हुआ, जो सब तरह के काम-धाम बंद करके बैठा रह जाता है। यह हमारा सोचना बड़ा आत्मघाती मालूम होता है। अगर इस भांति हम निष्क्रियता को सम्मान देंगे, और निष्क्रियता को संयास समझेंगे, और निष्क्रियता को साधुता का लक्षण मानेंगे, तो फिर कौन आदमी साधु नहीं बनना चाहेगा? काम भी करो और असाधु भी हो जाओ। तो दतर-दतर में सब साधु हो गए हैं। सारा देश साधु हो गया है। कोई काम नहीं कर रहा है, सब निष्काम भाव से अपनी-अपनी जगह बैठे हुए हैं। ठीक भी है, क्यों काम किया जए? और फिर हमारी चौथी दृष्टि तो यह है कि काम करने वाला तो भगवान है, हम क्या कर सकते हैं? भगवान सब काम चला रहा है, तो हम उसके काम में बीच-बीच में बाधा क्यों दें? सब काम चल ही रहा है, आपके करने से कुछ काम होता है? आप दफ्तर में बैठे रहिए, कुछ आपके करने से नहीं होता। काम तो सब चल ही रहा है। आप करिए या न करिए, काम चलता रहेगा। भगवान सब काम कर रहा है, आप कोई कर्ता हैं? आप कोई करने वाले हैं? यह अहंकार छोड़ दें कि आप करने वाले हैं। करने वाला भगवान है। हम तो उसके लीला के हाथ के खिलौने हैं। रस्सियां खींचता है, हमें नचा देता है, हम नाच लेते हैं, बात खत्म हो जाती है। हमने एक-एक व्यक्ति के भीतर कर्म करने की जो भी प्रेरणा हो, उसको सब तरह से नष्ट कर दिया है। और रह गई फल की बात, तो फल कर्म करने से तो कभी मिलता नहीं, फल भाग्य से मिलता है। पता है आपको प्रमोशन भाग्य से होता है, काम करने से होता है? कभी दुनिया में सुना है कि किसी आदमी का काम करने से प्रमोशन हुआ हो? कभी सुना है किसी आदमी से कि काम करने से कोई आदमी आगे बढ़ गया हो? किसी का बेटा, किसी का चाचा आगे बढ़ता है, वह भाग्य की बातें हैं। अब बेटा और चाचा होना कोई हाथ की बात तो है नहीं। सारा काम भाग्य से हो रहा है।
मैंने एक मजाक सुनी है। मैंने सुना है कि भर्तहरी ने एक बहुत बड़ा प्रयोग किया। ऐसे भारतीय लोग कभी प्रयोग करते नहीं हैं, भर्तहरी कुछ गड़बड़ आदमी रहा होगा। भारतीय लोग कभी प्रयोग नहीं करते, एक्सपैरिमेंट करने की हमें आदत ही नहीं। वह सवाल ही नहीं, हम क्यों प्रयोग करें? हमें तो सारे निष्कर्ष बिना प्रयोग के मिल जाते हैं। जैसे स्कूल का बच्चा क्यों जाकर परीक्षा में अपना गणित करे? कापी उल्टा के पीछे देख लेता है, जहां उत्तर लिखा है, उत्तर पहले मिल जाता है, प्रयोग करने की, और विधि करने की, और गणित करने की जरूरत क्या है? तो भारत को तो सारे निष्कर्ष मिले हुए हैं। हमारे पास सब कन्क्लूजंन्स हैं। ऋषि-मुनियों की कृपा से हमें सब निष्पत्तियां मिल गई हैं। अब हमें कुछ करने की जरूरत नहीं है। लेकिन भर्तहरी का दिमाग थोड़ा खराब रहा होगा। कुछ खराब दिमाग के लोग अक्सर पैदा हो जाते हैं। उसने यह प्रयोग किया कि मैं जानूं कि आदमी को जो फल मिलते हैं, वह भाग्य से मिलते हैं, या कर्म से मिलते हैं? पुरूषार्थ से मिलते हैं या प्रारब्ध से? तो उसने एक बड़ा वैज्ञानिक प्रयोग किया। तो हम प्रयोग करते नहीं और अगर करेंगे तो ऐसे ही वैज्ञानिक प्रयोग करते हैं। उसने क्या किया? भर्तहरी ने तीन प्रयोग किये। उसने एक आदमी को धूप में खड़ा किया, उस आदमी का सिर घुटा हुआ है, वह एक संन्यासी है। धूप में उसका सिर जलने लगा, तकलीफ होने लगी। उस आदमी ने कहा मेरी खोपड़ी में बहुत दर्द होता है। यहां अब मैं घबरा गया, यहां खड़ा नहीं हो सकता हूं। मुझे तकलीफ होती है, मेरे सिर में दर्द होता है। भर्तहरी ने ले जाकर उसे एक वृक्ष के नीचे खड़ा कर दिया, वह आदमी खड़ा ही नहीं हुआ था, कि वृक्ष से एक फल गिरा और उसकी खोपड़ी पर चोट आ गई, भर्तहरी ने कहा, सब भाग्य से होता है। अगर सिर में दर्द ही होना है तो धूप में खड़े रहो तो भी दर्द होगा, और वृक्ष की छाया में खड़े हो जाओ तो फल गिर पड़ेगा। भाग्य।

भर्तहरी ने दूसरा प्रयोग किया, एक सांप को बंद कर दिया एक पेटी में।
और बैठ गया बाहर। भीतर जाने का कोई रास्ता नहीं है, बाहर जाने को कोई रास्ता नहीं है। सांप पेटी में बंद है। और भर्तहरी देखता है कि देखें उसके भाग्य से उसे भोजन मिलेगा कि नहीं। एक पागल चूहा उस पेटी में छेद करने लगा, उसने पेटी में छेद किया चूहा भीतर चला गया, भूखा सांप चूहे को खा गया। और जो छेद चूहे ने किया था उससे बाहर भी निकल गया। भर्तहरी ने कहाः तय हो गया कि आदमी भाग्य से जीता है। सांप बंद था, चूहा भी पहुंच गया वहां और रास्ता भी बना दिया बाहर निकालने का।
अब यह बेचारा भर्तहरी अगर कहे, ठीक है सब भाग्य से होता है, कुछ करने
से नहीं होता, तो कुछ गलत कहता है? कोई भूल तो नहीं करता। ऐसे ही उसने कुछ प्रयोग किये और नतीजा निकाल लिया कि सब भाग्य से होता है। फिर भर्तहरी सब छोड़ कर चला गया। जब सब भाग्य से होता है तो हमें कुछ करना नहीं है। जो देश ऐसा समझता है कि सब भाग्य से होता है, उस देश में फिर कुछ करने का प्रश्न नहीं रह जाता। और हम सब भाग्यवादी हैं। फल तो भगवान देता है। और फल बंधा है तो मिलेगा। तो फिर कर्म करने का क्या सवाल है?
हमने कर्म को और फल को तोड़ लिया होशियारी से। फल बिना कर्म के भी मिल सकता है। यह बात धीरे-धीरे संस्कारित हो गई। दिमाग कंडीशंड हो गया और सारे मुल्क के मन में यह बात पैदा हो गई कि सब भाग्य से होता है, सब भाग्य से होता है। यह वृत्ति इतनी गहरी बैठ गई है कि कोई भी अब कुछ करना नहीं चाहता। एक हजार साल हम गुलाम थे, हमने कुछ भी नहीं किया। हम कुछ भी न करते, अगर मैकाले ने भूल से हिंदुस्तान को अंग्रेजी शिक्षा न दी होती, तो हम कुछ भी न करते। लोग समझते हैं कि मैकाले ने भारत को गुलाम रखने को अंग्रेजी शिक्षा दी, लेकिन अगर मैकाले कहीं भी होगा दुनिया में, तो वह जानता होगा कि उसी ने भूल की। अंग्रेजों के साथ दो सौ साल सम्पर्क में रहने के बाद, हममें में से कुछ लोगों को ऐसा लगने लगा कि करने से भी कुछ हो सकता है। जो लोग भारत की आजादी की लड़ाई लड़े, वे वह लोग थे, जो अंग्रेजी शिक्षा में ठीक से दीक्षित हो गए। भारत का मन तो गुलामी को तोड़ने के लिए कभी राजी नहीं होता, उसने तो मान लिया था, गुलामी भाग्य में होगी तो हम गुलाम रहेंगे। हमरे ग्रंथों में लिखा है, कोई हो राजा हमें क्या मतलब है। हमारा यह काम नहीं है कि हम राजाओं की बाबत चिंता करें कि कौन राज्य करता है, कौन हुकूमत करता है। हमारा तो काम है, हम रो-धो के जिंदगी गुजार दें। राम भजन करके किसी तरह आगे का इंतजाम कर लें। कुछ हवन-कीर्तन करके भगवान को खुश कर लें। बात खत्म हो गई हमारा और तो कुछ काम नहीं है। हम हमेशा गुलाम रह सकते हैं। हमारी आत्मा गुलाम है। स्वतंत्रता की कामना उनमें पैदा होती है, जिन्हें यह ख्याल है कि हम कुछ कर सकते हैं। जिन्हें यह ख्याल है कि हम कुछ कर नहीं सकते, जो होगा, वह झेल लेना पड़ेगा। वह स्वभावतः झेल लेंगे। इसीलिए हम इतनी दरिद्रता झेल रहे हैं, दुनिया में कोई कौम इतनी गरीबी झेलने को राजी नहीं हो सकती। या तो मर जाएगी, या गरीबी को तोड़ने के लिए कुछ करेगी। लेकिन हम इतनी भयंकर गरीबी झेल रहे हैं, चुपचाप झेल रहे हैं, बड़े मजे से झेल रहे हैं। बल्कि कहना चाहिए, बड़े सन्तोष और शांति से झेल रहे हैं। यह कैसे संभव हुआ? क्या हमारे भीतर प्राण ही समाप्त हो गए हैं। कोई चोट नहीं लगती कहीं? नहीं, गरीबी है तो हम सोचते हैं पिछले जन्मों के कर्मो का कोई फल है। भाग्य बिगड़ गया है इसलिए गरीबी झेल रहे हैं, आगे भाग्य ठीक हो जाएगा, तो सब ठीक हो जाएगा। लेकिन हम, हम कुछ भी नहीं करेंगे।
हिंदुस्तान आजाद हुए बीस साल हो गए। बीस सालों में सिवाय भीख मांगने
के हमने दुनिया में और कुछ भी नहीं किया। लेकिन एक लिहाज से यह भीख मांगना बड़ा परंपरागत है। हिन्दुस्तान में जो श्रेष्ठजन रहे हैं, वह हमेशा भीख ही मांगते रहे हैं। भिक्षावृत्ति को श्रेष्ठतम वृत्ति कहा है हमारे शास्त्रों ने। व्यवसाय वगैरह में तो पाप भी लगता है। भिक्षावृत्ति में कोई पाप नहीं लगता। और ठीक हमारे सब महापुरूष भीख मांगते हैं। बुद्ध, महावीर से लेकर विनोबाभावे तक। सबका काम भीख मांगना है। तो अगर हम सारे लोग भी उनके पीछे भीख ही मांगें तो हम कुछ बुरा तो नहीं करते। महाजन जिस रास्ते पर जाते हैं, उसी पर जाना तो सभी का कर्तव्य है।

तो पूरा देश भिखारी हो गया। सारी दुनिया में भीख हम मांग रहे हैं। और हमारे नेता अगर बाहर से भीख मांग कर लौट आते हैं, तो उनकी गर्दन फूल जाती है। उनकी रीढ़ अकड़ जाती है। वह कहते हैं, हां हम ले आये, सफलता मिल गई। भीख मांगने में सफल हो जाने को भी जो कौम सफलता मानने लगे उस कौम का आगे क्या भविष्य हो सकता है?
मैंने सुना है कि उन्नीस सौ बासठ में चीन में अकाल की हालतें थी। हमारे यहां अकाल की हालतें एक अर्थों में सौभाग्य है। क्योंकि जैसे ही अकाल पड़ता है, हम दुनिया भर का ध्यान आकर्षित करने में समर्थ हो जाते हैं। अकाल भगवान बड़ी कृपा करके हम पर भेजता रहता है। हमेशा उसकी कृपा रही है। हमेशा भेज देता है। और जब भी अकाल आता है, तभी दुनिया में भीख मांगने में हमारी हिम्मत बढ़ जाती है। और दुनिया को भीख देने पर मजबूर होना पड़ता है। न दो, तो तुम मैटीरियलिस्ट हो, तुम भौतिकवादी हो। इतना खा-पी रहे हो और हम गरीबों को भीख नहीं देते। हम अध्यात्मवादी हैं, जगत गुरू हैं, हमें भीख चाहिए। तुम्हारा कर्तव्य है सारी दुनिया का कि जगत गुरू को पालो और पोसो। चीन में उन्नीस सौ बासठ में अकाल की हालत थी। इंग्लैंड के कुछ मित्रों ने एक जहाज पर बहुत सा सामान भोजन और कपड़े चीन भेजे। चीन से वह जहाज सीधा का सीधा उल्टा वापस कर दिया गया। और उस जहाज पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया गया, धन्यवाद! लेकिन हम किसी भी हालत में भीख स्वीकार करने को राजी नहीं हैं। हम मर जाना पसंद करेंगे, लेकिन भिखारी होना नहीं। यह कुछ समझ में आने वाली बात मालूम पड़ती है? लेकिन चीन के आदमी तो राक्षस हैं। उनको पता ही क्या? चीन के आदमी कोई आदमी हैं। आदमी हम हैं। हमने तो बड़े होशियारियों के काम किए हैं, हमारे मुल्क में जिसको भिक्षा दो, वह आपको धन्यवाद नहीं देगा। धन्यवाद आप उसका करना कि उसने आपकी भिक्षा स्वीकार कर ली। पता है आपको? पहले भिक्षा दो, फिर पीछे दक्षिणा दो। दक्षिणा है धन्यवाद, कि आपने हमारी भिक्षा स्वीकार की, बड़ी कृपा की। तो पश्चिम से, अमेरिका से, रूस से हम भिक्षा स्वीकार करते हैं, वे लोग अभी नासमझ हैं। उनको ठीक संस्कृति का ज्ञान नहीं है। पहले भिक्षा देनी चाहिए, फिर दक्षिणा देनी चाहिए। बाद में कहें आपकी बड़ी कृपा, कि हे ब्राह्मण देश! तुमने हमारी भिक्षा स्वीकार कर ली, अब दक्षिणा भी स्वीकार करो। और हम उनको आशीर्वाद देकर कि तुम इसी तरह फलो-फूलो ताकि आगे भी भिक्षा दे सको।
बीस साल से हम सिवाए भिक्षा मांगने के और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। और आगे भी हम इसी आशा में बैठे हुए हैं कि हम भीख आगे भी मिलती रहेगी। कब तक मिलेगी? दुनिया में अब तक आदमी भिखारी थे। राष्ट्र का राष्ट्र भिखारी हमारा पहली बार हुआ है। यह अनहोनी घटना है पूरे इतिहास में। और कभी समय-बेसमय कुछ सहायता मिल जाए, एक बात है, लेकिन भिक्षा को वृत्ति बना लेना और उसी पर जिये चले जाना।
अभी मैं एक अमरीकी विचारक की किताब पढ़ता था। और किताब का नाम हैः उन्नीस सौ अठहत्तर। और उसने लिखा है कि उन्नीस सौ अठहत्तर में भारत में एक महानतम अकाल के पड़ने की संभावनाएं थी। ऐसा अकाल विश्व इतिहास में कभी भी नहीं पड़ा होगा। अगर सारी दुनिया ने भीख नहीं दी, तो उस अकाल में हिन्दुस्तान में दस करोड़ से लेकर बीस करोड़ लोगों तक के मरने की संभावना पैदा हो गई। दिल्ली में एक बड़े नेता से मैंने कहा, उन्होंने कहा, उन्नीस सौ अठहत्तर अभी बहुत दूर है। उन्नीस सौ अठहत्तर, नेता कहते हैं, बहुत दूर है। नेताओं को चुनाव के सिवाय और कुछ ची.ज पास मालूम पड़ती ही नहीं। और सब चीजें दूर हैं। उन्नीस सौ अठहत्तर दूर है। और मकान में आग लग जाए, तब कुएं खोदने पड़ते हैं। उन्नीस सौ अठहत्तर से और ज्यादा क्या पास हो सकता है? लेकिन नेता कहते हैं उन्नीस सौ अठहत्तर दूर है। साधु-संयासी कहते हैं कि बच्चे पैदा करो, क्योंकि बच्चे भगवान भेजता है। तुम बच्चे पैदा करो साधु-संयासी समझाते हैं। क्योंकि बच्चों पर रोक लगाना बड़ा पाप है। जो आत्माएं जन्म लेना चाह रही हैं, उन्हें तुम रोक सकते हो। भगवान जानता है, और साधु-संयासी समझाते हैं, जो चोंच देता है, वह चून भी देता है। जो मुंह देगा, वह रोटी भी देगा। नेता कहते हैं उन्नीस सौ अठहत्तर दूर है, संयासी कहते हैं, बच्चे पैदा करते चलो। उन्नीस सौ अठहत्तर जोर से छाती पर आ जाएगा। आ ही रहा है।

हिन्दुस्तान पाकिस्तान का बंटवारा हुआ। तो जितनी आबादी पाकिस्तान में गई थी, उससे ड्योढी आबादी हमने बीस साल में फिर पैदा कर ली।
वह जिन्ना बड़ी गलती में थे। अब हजरत को पता चला होगा कि तुम भारत को कभी कम नहीं कर सकते। चालीस करोड़ की आबादी थी, अब बावन करोड़ की आबादी भारत में है। हिंदुस्तान-पाकिस्तान की मिलाके चालीस करोड़ थी। अब अकेले हिंदुस्तान की बावन करोड़ है। अब मियां जिन्ना बहुत पछताते होंगे कि हमने बहुत गलती कर ली। भारत को तुम कभी कम नहीं कर सकते हो। यह और कुछ पैदा नहीं करती, सिर्फ बच्चे पैदा करती है। और बच्चे इतनी तादाद में पैदा करती है कि और कुछ पैदा करने की जरूरत भी नहीं रह जाती। अरे जहां हम आदमी पैदा कर लेते हैं, क्या मशीनें बनाएंगे हम अध्यात्मवादी लोग हैं, हम मशीनें नहीं बनाते। हम गेहूं पैदा नहीं करते, ये सब भौतिक चीजें हैं, हम तो आत्माएं पैदा करते हैं, हम तो आदमी पैदा करते हैं। अध्यात्मवादी लोग आत्माएं ही पैदा करते हैं। मशीनें, गेहूं ये सब मैटीरियलिस्ट, ये सब भौतिकवादियों का काम है। ये पश्चिम के नासमझ इस तरह का काम करते हैं। हम बढ़े समझदार हैं, हम असली ची.ज पैदा करते हैं, आदमी पैदा कर दिया और सब पैदा हो गया। आदमी ही तो मेजरमेंट है, वही तो सब ची.ज का मूल है। उसको ही हम पैदा कर देते हैं। आदमी सर्वश्रेष्ठ है। दुनिया में सबसे ऊंची ची.ज वही है। हम सबसे ऊंची ची.ज पैदा करते हैं, दूसरे लोग नीची चीजें पैदा करते हैं। इसलिए हम बड़े प्रसन्न भी हैं। लेकिन यह प्रसन्नता बहुत दिन नहीं चलेगी, और ये प्रसन्नता बहुत झूठी है, खतरनाक है और महंगी पड़ रही है। और आज नहीं कल देश बड़े संकटों में गुजरता जाएगा। रोज नये संकटों में पहुंचता चला जाएगा। लेकिन अगर कोई इन संकटों के प्रति आगाह करे, तो वह आदमी बहुत बुरा मालूम पड़ता है। क्योंकि वह हमारी नींद तोड़ने की कोशिश करता है। और वो नींद हमारी लंबी है और पुरानी। और नींद हमारी बड़.ी प्राचीन और सनातन है। यह सनातन नींद को तोड़ना बहुत कठिन मालूम पड़ता है। और जब तोड़ने की लोग कोशिश भी करते हैं तो बुनियादी चीजों को तोड़ने की कोशिश नहीं करते, जिनके कारण नींद है। वह सिर्फ आदमी को समझाने की कोशिश करते हैं कि काम करो, उत्पादन करो, यह करो, वह करो। आराम हराम है, फलां-ढिकां ये सब वे कहते हैं, लेकिन बुनियादी सूत्र जिनकी वजह से आदमी हमारा आलस्य, काहिल और प्रमादी हो गया है। बुनियादी कारण, जिनके कारण आदमी हमारा श्रम करने में असमर्थ हो गया है। बुनियादी सिद्धान्त, जिनके कारण हमने मनुष्य की आत्मा को जकड़ कर गुलाम बना दिया है, बुनियादी कारण, जिनकी वजह से मनुष्य की वह चेतना, चुनौती जीवन को जीतने और बदलने की छूट गई है, टूट गई है, उनको बदलने की हम कोई बात ही नहीं करते। मैं ये तीन छोटे सूत्र आपसे कहना चाहता हूं। अगर हिंदुस्तान के भाग्य को जागना है, तो हिंदुस्तान को स्वर्ग आकाश में है, यह भ्रांति जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक देनी चाहिए। साथ ही यह भी स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि स्वर्ग मिलता नही, निर्मित करना होता है। स्वर्ग कोई व्यक्तिगत कामना नहीं है, सामूहिक अर्जन है। कोई एक आदमी स्वर्ग निर्मित नहीं कर सकता। स्वर्ग निर्मित एक सामूहिक उपाय है। एक कलैक्टिव एफर्ट है। अगर यह पूरा मुल्क श्रम करे, तो स्वर्ग बन सकता है। और प्रमाण तो साफ हैं, पूरा मुल्क श्रम कर रहा है, एक अर्थों में और मुल्क नरक बन गया है। नरक बनाना हो तो उसके लिए श्रम करना जरूरी नहीं होता। उसके लिए आलस्य करना जरूरी होता है, वही श्रम है नरक बनाने के लिए। नर्क बनाना हो तो कुछ भी न करना, पर्याप्त उपाय है। वह रामबाण औषधि है। कुछ भी मत करो, नरक अपने आप बन जाएगा। लेकिन स्वर्ग बनाना हो तो कुछ करना पड़ेगा। सम्यक दिशा में सामूहिक प्रयास से कुछ निर्मित करना पड़ेगा। पहली बात, स्वर्ग आकाश से हटा कर पृथ्वी पर लाना है। तो हम सक्रिय हो सकते हैं।
दूसरी बात, यह जगत माया और सपना नहीं है। जगत बहुत यथार्थ है। और जब तक तुम जगत के यथार्थ को उसकी रियलिटि को स्वीकार नहीं करते, तब तक हम जगत के साथ श्रमरत भी नहीं हो सकते। सपनों में कोई श्रमरत होता है? सपनों के साथ कोई मेहनत करता है? ड्रीम्स के साथ कोई उलझता है? भारत में हम सपना समझ रहे हैं जीवन को इसलिए विज्ञान और साइंस का जन्म नहीं हो सका। साइंस वहां पैदा होगी, जहां बाहर का जगत एक रियलिटी है। एक यथार्थ है। क्योंकि यथार्थ से

ही विज्ञान पैदा हो सकता है। सपनों से विज्ञान पैदा नहीं हो सकता। सपनों में सत्य कैसे खोजा जा सकता है? सपनों में सत्य कभी भी नहीं खोजा जा सकता। इसलिए जो देश बाहर के जगत को, जीवन को, प्रकृति को माया समझता हो, वह देश कभी वैज्ञानिक नहीं हो सकता। और जो देश वैज्ञानिक नहीं हो सकता, वह अपने हाथ से अपनी मौत निकट बुला रहा है। तो दूसरी बात ध्यान रखनी जरूरी है कि जीवन एक सत्य है। और जीवन को असत्य करने की कोई आवश्यकता नहीं है। और कितना ही हम चिल्लाएं कि जीवन असत्य है, जीवन असत्य नहीं हो जाता। जीवन को असत्य कहने से सिर्फ हम पंगु, नपुंसक हो जाते हैं और कुछ भी नहीं होता। हम इंपोटेंट हो जाते हैं। और भारत एक इंपोटेंसी में, एक नपुंसकता में हजारों साल से गुजर रहा है। लेकिन जितने हम दीन-हीन होते चले जाते हैं, उतना ही हम जोर-शोर से शोर मचाते हैं कि हम महान देश हैं, धार्मिक देश हैं, जगतगुरू हैं, धर्म भूमि हैं, फलां हैं, ढिकां हैं। ये सब कमजोरी के लक्षण हैं। कमजोर आदमी अपनी कमजोरी छिपाने के लिए उल्टी बातें दोहराना शुरू कर देता है।
भिखारी अक्सर सपना देखते मिलेंगे सम्राट होने का। भिखारी अक्सर कहते मिलेंगे कि मेरा बाप, मेरा बाप इंस्पेक्टर था। वह भिखारी का जो मन है, वह बापदादों की तारीफ करके किसी तरह कंसोलेशन और सांत्वना पाना चाहता है। जो कौम अपने बापदादों की बहुत बात करने लगे, समझ लेना कि उस कौम की जान निकल गई। जिस कौम में जान होती है, वो आने वाले बेटों की बात करती है। और जो कौम की जान निकल जाती है, वह मर गए बापदादों की बात करती है।
रूस के बच्चे आने वाले बेटों की बात कर रहे हैं। रूस की पीढ़ी आने वाले बच्चों पर आंख लगाए हुए है। आशाएं उनकी बढ़ी हैं, चांद-तारों पर बस्तियां बसाने के इरादे हैं और हम रामलीलाएं देखते हैं और याद करते हैं अपने बापदादों को कि कभी कोई थे, बड़े प्यारे थे राम। लेकिन रामलीला ही देखते जाना बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकता है। भविष्य आगे कुछ होने को है, वो हमारा खयाल भूल गया, क्योंकि हम इतने कमजोर हैं कि हमें कोई आशा नहीं कि हम कुछ कर सकते हैं। अतीत, अतीत हो चुका। भविष्य होना है, और जो कौम पीछे की तरफ ही देखती चली जाती है, और बाप-दादों की बात किए चले जाती है, वह कौम भविष्य को निर्माण करने का हक खो देती है, पात्रता खो देती है। जरूरत है इस बात की कि हम भूल जाएं कि हम बहुत बड़ी कौम हैं, बहुत बड़े देश हैं, हम नहीं हैं, हम हो सकते हैं, लेकिन होने के लिए कुछ करना पड़ेगा। सिर्फ नेताओं के भाषण से ये नहीं होगा। जिस देश में बहुत भाषण होने लगे, समझना चाहिए उस देश ने करने की क्षमता खो दी। जो लोग कुछ नहीं कर पाते फिर एक ही बात रह जाती है कि बातचीत करके कैसे मन को बहलाएं। फिर एक ही रास्ता रह जाता है, हम बातचीत कर लें और खुश हो लें, जब कोई प्रशंसा करता है कि महान देश है, तब हमारी छाती फूल जाती है थोड़ी देर, और हम बड़े खुश होके घर लौट जाते हैं, बड़े महान देश में हम पैदा हुए, तो हम भी बड़े महान हैं। लेकिन इस तरह की नासमझियों, इस तरह के झूठे सांत्वनाओं से देश आगे नहीं बढ़ सकता। दूसरी बात ध्यान रखनी जरूरी है कि बाहर का जो जगत है, वह उतना ही सत्य है जितना भीतर का जगत। अकेले भीतर के जगत की जो सत्य होने की बात कहेंगे, वह समाज धर्म तो पैदा कर लेगा लेकिन विज्ञान पैदा नहीं कर पाएगा। धर्म शांति दे सकता है, शक्ति नहीं। शक्ति विज्ञान देता है। विज्ञान शांति नहीं दे सकता। लेकिन निशक्त आदमी की शांति का भी कोई अर्थ नहीं होता। शांति के बाहर अगर शक्ति का साथ न हो, शांत आत्मा के पास अगर शक्तिशाली व्यक्तित्व न हो तो ये शांत आत्मा भी बहुत जल्दी गुलाम बना ली जाएगी। फिर शान्त आत्मा को जीने का हक नहीं मिल सकता।
जीवन एक विराट संघर्ष है। उसमें भीतर एक शान्ति चाहिए, जो कभी कंपती न हो, और बाहर एक शक्ति चाहिए, जो पराजित न होती हो। बाहर कोई शक्ति नहीं है, बाहर माया है, बाहर सपना है, बाहर एक झूठ है, उस झूठ में कैसे शक्ति पैदा की जा सकती है? दूसरा सूत्र हैः बाहर के यथार्थ का अंगीकार चाहिए। बाहर को यथार्थ देने की क्षमता चाहिए। बाहर के यथार्थ की स्वीकृति चाहिए। और तीसरी बात, भाग्य नहीं, भाग्य बिल्कुल नहीं है। भाग्य जैसी कोई चीज नहीं है! वह जो हमें भाग्य जैसा मालूम पड़ता है, वह हमारे सामूहिक पुरूषार्थ का

फल है। लेकिन एक-एक व्यक्ति को वह भाग्य जैसा मालूम पड़ता है। एक व्यक्ति बहुत छोटा है, समूह बहुत बड़ा है, जगत बहुत बड़ा है, उस जगत में एक-एक व्यक्ति की शक्ति बहुत छोटी है, सारे जगत के उपक्रम के बीच वह अकेला आदमी कई बार हार जाता है, नहीं सफल हो पाता। सोचता है हार गया, भाग्य विरोध में आ रहा है। भाग्य विरोध में नहीं आ रहा, विराट उपक्रम है जगत का, विराट उपक्रम में आप अकेले नहीं है कि जो आप करना चाहें, वही कर लें। बहुत बार आप नहीं भी कर पाएंगे! क्योंकि हजारो और क्रॉस करेंट्स हैं, जो आपके मार्ग से गुजर रहे हैं, उन सबको ध्यान में रख कर कुछ करना पड़ेगा। लेकिन अगर समूह तय करे, तो भाग्य को बदलना बहुत आसान है। समूह तय करे तब तो भाग्य को बदलना बहुत आसान है। लेकिन समूह कैसे तय करेगा, जब एक-एक व्यक्ति ये मानता है कि भाग्य निर्धारित है? तो फिर बहुत कठिन हो जाता है। भारत के मन से भाग्य को बिल्कुल हटा देना है, तब भारत का मन मुक्त होगा, सक्रिय होगा, कुछ काम करने में लगेगा, और हम कुछ काम करेंगे, तो हमें विश्वास आएगा कि काम से कुछ होता है। जब हम काम नहीं करेंगे तो विश्वास आता ही चला जाएगा कि भाग्य से ही कुछ होता है। हजारों साल से काम नहीं कर रहे हैं। तो भाग्य की धारणा गहरी से गहरी और मजबूत होती चली गई। एक विसीयस सर्किल है, एक दुष्ट-चक्र है, कुछ नहीं करते, फिर कुछ होता है, तो भाग्य मालूम पड़ता है। फिर कुछ करते हैं छोटा-बहुत, थोड़ा-बहुत बेमन से, नहीं होता तो भाग्य मालूम होता है। नहीं, भाग्य इसलिए है कि हम पुरूषार्थीर् नहीं हैं, हम पुरूषार्थी होंगे तो हम भाग्य को जला डालेंगे, खत्म कर देंगे। देश के मन में पुरूषार्थ की एक तीव्र आकांक्षा पैदा करनी जरूरी है। और एक-एक व्यक्ति जिम्मेवार नहीं है, हमारा पूरा समाज जिम्मेवार है। इसलिए एक-एक व्यक्ति को दोष देने से नहीं चलेगा, और एक-एक व्यक्ति को सुधार करने की बात से भी नहीं चलेगा। समझना पड़ेगा हमारे सामाजिक चिन्तन के मूल आधार गलत थे। हमारे सोचने के मूल सूत्र भ्रांत थे। और उन मूल सूत्र को बदले बिना कोई रास्ता नहीं है। अंतिम बात, यह तीनों सूत्र, जो हमने अब तक माने हैं, पलायनवादी हैं, एस्केपिस्ट हैं। ये भगाते हैं लड़ाते नहीं। ये हमें दूर हटाते हैं, संघर्ष में खड़ा नहीं करते। ये हमसे कहते हैं, भाग जाओ जंगल में। ये हमें सन्यास सिखाते हैं, संघर्ष नहीं और मैं उस सन्यासी को दो कौड़ी का कहता हूं, जो संघर्ष में नहीं है। संघर्ष में ही संन्यास के असली फूल खिलते हैं। हिंदुस्तान ने संघर्ष छोड़ दिया, संघर्ष के फूल भी नहीं खिले और संन्यासी भी मुर्दा हो गए। वहां सन्यास के फूल भी नहीं खिले। संन्यास के फूल भी संघर्ष में खिलते हैं। और संघर्ष में ही संन्यास की शिक्षा और दीक्षा भी होती है। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, वह जीवन के घनेपन में है। वहीं उपलब्ध होता है। भागकर कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। इस जगत में जो भी पाना है परमात्मा भी, तो भाग कर नहीं पाया जा सकता। आत्मा भी तो भाग कर नहीं पाई जा सकती। जो भी पाना है उसे एक चुनौती, एक चैलेंज, एक संघर्ष, एक विजय यात्रा बनाना जरूरी है। लेकिन हम सब छोड़ने, भागने वाले लोग, हम सब छोड़ते हैं और भाग जाते हैं।
वह दतरों में जो लोग बैठे हैं, वह संन्यासियों की संतान हैं। वह जो देश में नेता बैठे हैं, वह भी संन्यासियों की संतान हैं। सारा देश सन्यासियों की संतान है, कोई कुछ नहीं कर रहा। सब अपने काम से भाग रहे हैं। एक आदमी फाइल दूसरे आदमी पर छोड़ रहा है, संन्यासी है वह आदमी। दूसरा आदमी करेगा। संन्यासी भी क्या करता रहा है? संन्यासी कहता है कि मैं जंगल जाता हूं। लेकिन भोजन संन्यासी को भी जरूरी होता है, वह कोई दूसरा आदमी कमाता है, दुकान पर बैठ कर। वह पाप करता है दुकान पर बैठ कर। भोजन कमाता है। संन्यासी भोजन करता है, वह पुण्य करता है। काम दूसरे पर छोड़ दिया है, फल खुद ले रहा है। लेकिन फल लेने में कोई पाप नहीं है। काम में पाप है। और अगर यह दृष्टि आगे भी चलती है, और यह पलायनवादी रूख हमारा विकसित होता चला जाता है, तो भारत अब दुनिया में रहने की क्षमता के योग्य नहीं रह गया। हमने अपनी पात्रता खो दी है। हम अपने ही हाथ से मिट जाएंगे और नष्ट हो जाएंगे। इस पर सोचना। मैंने जो कहा, मेरी बातें मान लेनी जरूरी नहीं हैं। हिन्दुस्तान हर किसी की बात मान लेता है, ये ही कठिनाई है। मेरी कोई बात

मान लेने की जरूरत नहीं। मैंने जो कहा, उस पर सोचना, हो सकता है, मेरी सारी बातें गलत हों। यह भी हो सकता है मेरी बात में कोई चीज सच हो। सोचना, देखना अगर सच दिखाई पड़े, तो सच दिखाई पड़ने का एक ही अर्थ होता है कि उस सच पर जितना बन सके प्रयोग करना, ताकि वह सच जीवंत इकाई बन जाए। ताकि वो सच आस-पास भी खबर पहुंचाने लगे। उसकी सुगंध दूसरों तक भी पहुंचने लगे।
अगर बीस साल मुल्क तय कर ले और संकल्प कर ले, तो एक बिल्कुल ही नए समाज का, और एक नये देश का जन्म हो सकता है। लेकिन नेता यह नहीं कर सकेंगे। यह साधारण-जन को करना पड़ेगा। नेताओं की तरफ देखने से यह नहीं होगा। नेता हमारे हमसे भी ज्यादा कमजोर हैं। असल में कमजोर लोगों का नेता बनने के लिए कमजोर आदमी ही चाहिए। नहीं तो कोई उनको नेता बनाएगा नहीं। नेता अपने अनुयाइयों के भी पीछे चलते हैं। दिखाई पड़ते हैं कि आगे चल रहे हैं, लेकिन हमेशा ध्यान रखते हैं कि अनुयायी कहां चलाना चाहता है। वहीं चलते हैं, नहीं तो अनुयायी पीछा छोड़ देता है। नेता भी अनुयायी के पीछे चलते हैं और काहे के नेता हैं मुल्क के पास। मुल्क सब तरह से दीन-हीन है, उसके पास नेता भी नहीं है।
एक स्कूल में मैं गया था, वहां मुझे पता चला नेता बनने का सूत्र। एक स्कूल में मैं गया। वहां स्कूल के बच्चों ने मेरे स्वागत में परेड की। उन बच्चों की कतारें क्रम से थीं। सबसे छोटे बच्चे आगे उनसे बड़े पीछे, उनसे बड़े पीछे, सबसे बड़े सबसे पीछे थे। सब कतारें तो ठीक थीं, कोई दस कतारें थी। एक कतार में एक सबसे बड़ा बच्चा आगे था। मैंने पूछा कि इस बच्चे को आगे किया है, क्या यह तुम्हारा नेता है, सब बच्चों का? एक छोटे बच्चे ने कहा, नेता नहीं है। इसको किसी के भी पीछे करो तो यह चूंटी लेता है। तो इसको पीछे कर ही नहीं सकते। इसको आगे रखना पड़ता है। मगर वह अकड़ कर चल रहा था। मैंने कहा, यह नेता बनने का सूत्र मुझे समझ में आ गया।
इस मुल्क में जिसको नेता बनना हो, एक ही तरकीब है, पीछे मत चलो च्यूंटी लो। बस लोग आपको आगे कर देंगे। और आप एक दफा आगे हो गए झंडा लेके, झंडा ऊंचा रहे हमारा, फिर कोई नहीं पूछता कि आप क्या बेवकूफी कर रहे हो। फिर कोई नहीं पूछता कि मुल्क को कहां लिए जा रहे हो? फिर धीरे-धीरे मुल्क भी भूल जाता है कि इस आदमी को किसलिए आगे किया था? यह आदमी च्यूंटी लेता था। लेकिन जो आगे होता है, मुल्क उसके पीछे चलने लगता है। अंधे, अंधों का नेतृत्व कर रहे हों, तो बहुत आशा नहीं बंधती, लेकिन आशा छोड़ी भी नहीं जाती है। एक ही आशा है इस देश के पास। नेताओं के पास नहीं, इस देश के सामान्यजन की तरफ देखना होगा। एक-एक सामान्यजन को पुकारना होगा। उसे कहना होगा कि वह बचा सकता है, अगर थोड़ा श्रम में रत हो जाए। थोड़ा दान दे, थोड़ा सहयोग करे मुल्क को निर्मित करने में, तो यह देश निर्मित हो सकता है।

मेरी ये बातें इतने प्रेम और शांति से सुनी, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये भारत का जन्म
तीसरा प्रवचन

वैज्ञानिक चिंतन आना चाहिए

मैं तो अधिनायकशाही के पक्ष में ही नहीं हूं। वह सिर्फ मजाक में कही बात को... । कहा मैंने कुल इतना था कि जैसा लोकतंत्र चल रहा है, इस देश में इससे तो अच्छा होगा कि देश में तानाशाही हो जाए। वो तानाशाही भी इससे ज्यादा विनिवलेंट होगी। और ये सिर्फ मजाक में कहा कि इस लोकतंत्र से तो तानाशाही भी बेहतर हेगी। तानाशाही बेहतर होती है, यह मैंने कहा नहीं। लेकिन समझ यह लिया गया कि मैं तानाशाही को बेहतर मानता हूं। बिल्कुल ही नासमझी है। मुझसे ज्यादा विरोध में तानाशाही के शायद ही कोई आदमी हो। और पाकिस्तान में असफल हो गई ऐसा नहीं। सारे इतिहास में, हमेशा असफल होती रही है। और कभी भी सफल नहीं होगी।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, हां, मेरी आप बात समझे न। दुनिया में परतंत्रता सफल नहीं हो सकती है, उसका चाहे कोई भी रूप हो। परतंत्रता को असफल होना ही पड़ेगा। क्योंकि मनुष्य की आत्मा किसी तरह की परतंत्रता को स्वीकार करने को राजी नहीं है। चाहे मजबूरी में थोड़ा बहुत दिन राजी करती भी हो, तो भी उसके खिलाफ विद्रोह शुरू हो जाएगा। रूस जैसे देश में भीं तानाशाही के विरोध में बहुत काम शुरू हुआ। और स्टैलिन के मरते ही, जैसे एक नया अध्याय शुरू हो गया। कहीं भी दुनिया में, थोड़ी बहुत देर मजबूरी की हालत में, कोई देश राजी हो सकता है। लेकिन सदा के लिए राजी नहीं हो सकता। और असफलता सुनिश्चित है। क्योंकि अन्ततः स्वतंत्रता ही सफल हो सकती है।
मेरी बातों के साथ कठिनाई क्या है कि अगर आपसे कुछ बात कर रहा हूं, उसमें से कोई एक टुकड़ा निकाल कर और उसको आप व्यापक प्रचार दे दें, तो मुझे बड़ा मुश्किल हो जाता है मामला। जैसे वहीं जिन पत्रकारों से ये बात हुई थी, उन्हीं पत्रकारों में से किसी ने मुझसे यह पूछा कि अब आप इस तरह की बातें कहते रहे हैं कि अगर आपको कोई गोली मार दे, आप गांधी के खिलाफ कह रहे हैं, कोई आपको गोली मार दे, मैं सिर्फ मजाक में कहा, मैंने कहा कि तब तो बड़ा मजा हो जाएगा, गाधी से मेरा मुकाबला ही हो जाएगा। अखबारों ने खबर छापी कि मैं गांधी से मुकाबला करना चाहता हूं। तो फिर बड़ा मुश्किल मामला हो जाएगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, मेरा मतलब कुल इतना है... ।

प्रश्नः मजाक में आपने विकल्प तो तानाशाही का... ?

न, बिल्कुल भी नहीं। मेरा कुल कहना इतना है। मेरा कुल कहना इतना है कि जैसे लोकतंत्र आज है, पहली तो बात, वह लोकतंत्र नहीं है पूरा। दूसरी बात लोकतंत्र पूरा नहीं हो सकता, जब तक जब तक कि हम किसी न किसी रूप में आर्थिक समानता की कोई व्यवस्था देश को न दें। क्योंकि सिर्फ राजनैतिक समानता कभी भी लोकतंत्र को पूरा नहीं कर सकती। आर्थिक रूप से असमान लोग, राजनैतिक रूप से समान सिर्फ कहे जा सकते हैं, हो नहीं सकते। आर्थिक समानता ही जब तक न हो तब तक राजनैतिक समानता बातचीत की समानता है। और वह कुछ लोगों के हाथ का खेल होगी। इस मुल्क में लोकतंत्र है, अमेरिका जैसे मुल्क में भी लोकतंत्र है। लेकिन अमरीका का लोकतंत्र भी अधूरा है। वह लोकतंत्र भी तब तक पूरा नहीं होता, जब तक आर्थिक समानता की स्थिति पैदा नहीं होती। और मेरा कहना यह है, मेरा कहना यह है, अभी तक जो भी विकल्प दुनिया में चल रहे हैं, उनमें से कोई भी विकल्प सही अर्थों में लोकतंत्र नहीं है। तो रूस में जो विकल्प है, वह भी लोकतंत्र नहीं है। क्योंकि राजनैतिक समानता छीन ली गई है और

आर्थिक समानता दे दी गई है। वो भी आधा लोकतंत्र है। वह उसको चाहे अधिनायकशाही कहते हों, या कुछ कहते हों, इससे फर्क नहीं पड़ता। जिन मुल्कों में राजनैतिक स्वतंत्रता है, लेकिन आर्थिक समानता नहीं है, उन मुल्कों में भी आधा ही लोकतंत्र है। अभी तक दुनिया में लोकतंत्र का अवतरण ही नहीं हुआ। वह जो मैं कह रहा हूं कि यह लोकतंत्र, उससे मेरा प्रयोजन ये नहीं है कि लोकतंत्र के मुकाबले कोई अधिनायकशाही विकल्प है, इस लोकतंत्र के सामने पूर्ण लोकतंत्र ही विकल्प है। और जब तक हम आर्थिक समानता की कोई सुनियोजना नहीं करते हैं, तब तक देश में लोकतंत्र बातचीत होगी, पीछे से अर्थ का तंत्र ही जारी रहेगा। तो हमको लगता है ऊपर से कि लोकतंत्र है, लेकिन धनपति हावी है और तंत्र को चला रहा है। और चलाएगा। और स्वाभाविक है कि चलाए। क्योंकि धन के तंत्र पे जिसका हाथ होगा, ये असंभव है कि वो सत्ता को छोड़ देगा। वह सत्ता को भी हाथ में रखेगा। लोकतंत्र दुनिया में कहीं भी नहीं है। न रूस में, और न अमरीका में, और न भारत में, और न पाकिस्तान में।

प्रश्नः वॉट इ.ज योर आइडिया ऑफ इकोनॉमिक इक्वालिटी?

सीधी सी बात है, मनुष्य को जितनी भी संपदा है, राष्ट्र की समाज की, पृथ्वी पर, वो सारी की सारी संपदा में, किन्ही भी कारणों से विशेष अधिकार नहीं होने चाहिएं, पहली बात। चाहे वह जमीन की संपदा हो, चाहे किसी और तरह की संपदा हो। विशेषाधिकार सभी के सभी किसी न किसी रूप में, हिंसा के द्वारा कायम किये गए हैं। किसी भी व्यक्ति को संपत्ति पर विशेषाधिकार नहीं होना चाहिए। संपत्ति सबकी है। यह तो भौतिक बात कि संपत्ति सबकी है, वह सबकी अर्जित, सबकी इकठ्ठी क्षमता है। और इस संपत्ति पर सबका हक है, और इस संपत्ति के द्वारा सबको जीवन में समान अवसर विकास की सुविधा होनी चाहिए। विस्तार में क्या होगा, वह दूसरी बात है, यह सिर्फ मैं बात कह रहा हूं कि राष्ट्र की संपत्ति को शोषण के माध्यम से इकट्ठा करने की सुविधा, लोकतंत्र नहीं है। किसी भी माध्यम से संपत्ति इकठ्ठी हो सकती हो, तो वह तंत्र लोकतंत्र नहीं है। लोकतंत्र संपत्ति पर अधिकार और व्यक्तिगत संपत्ति को इकठ्ठा करने का मौका नहीं दे सकता। क्योंकि जैसे ही किसी व्यक्ति के पास संपत्ति इकट्ठी हो जाती है, उस व्यक्ति के वोट का मतलब एक नहीं रह जाता। उस व्यक्ति के वोट का मतलब अनेक हो जाता है। और जिसके पास संपत्ति नहीं रह जाती, उसके वोट का मतलब भी एक नहीं रह जाता। उसके वोट का मतलब दो रूपये हो जाता है। संपत्ति जब तक विषम रूप से विभाजित है, और समाज की व्यवस्था ऐसी है कि विषम रूप से संपत्ति विभाजित होती चली जाए, तब तक लोकतंत्र बातचीत होगी, और ये लोकतंत्र अधिनायकशाही का विरोध करता रहेगा, लेकिन खुद भी एक तरह की अधिनायकशाही होगी।
तो दुनिया में अब तक जितने तंत्र हैं, वह किसी न किसी मात्रा में कम या ज्यादा अधिनायकशाही के रूप हैं। कोई भी तंत्र लोकतंत्र नहीं है। मैं जो विकल्प की बात कह रहा हूं, वह विकल्प इनके बीच नहीं कि हिन्दुस्तान का तंत्र कि पाकिस्तान का तंत्र, कि रूस का तंत्र, या अमेरिका का तंत्र मैं जो कह रहा हूं, वह यह कि लोकतंत्र की एक ऐसी अवधारणा है कि हम धीरे-धीरे प्रत्येक व्यक्ति को, इतना समान बना सकें आर्थिक हैसियत से, कि वह राजनैतिक हैसियत से भी समान हो सके। और जब राजनैतिक हैसियत से सारे लोग समान हों, तो लोकतंत्र हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता। यह जो लोकतंत्र है, जो कहता है कि राजनैतिक रूप से आप स्वतंत्र हैं, और प्रत्येक व्यक्ति बराबर मूल्य का है, यह बराबर मूल्य सिर्फ विधान में होगा, यह बराबर मूल्य वास्तविक जीवन में नहीं हो सकता है। क्योंकि वास्तविक मूल्य आपका नहीं है जीवन में, वास्तविक मूल्य आपकी संपदा का है, जिसके आप मालिक हैं, तो वह जो मैं जो बात कहा था, इतने विस्तार में बात नहीं हुई थी, बात कुल इतनी हुई थी, और उतनी सी बात को, उठाकर, उस बात को, विस्तार दे दिया। न केवल विस्तार दे दिया, बल्कि किताबें भी लिख डाली उस बात पर कि जैसे मैं कोई, किसी अधिनायकशाही को इस मुल्क में लाना चाहता हूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं कोई पोलिटिकल सेटअप को में... ।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, आइडियल जरूर, आइडियल जरूर लेकिन जो मौजूद हैं, जो मौजूद हैं, वह करीब-करीब कुएं खाई जैसे विकल्प हैं। कुएं से बचिए और खाई में गिर जाइए। ये ऐसे विकल्प हैं।

प्रश्नः बुनियादी तरीके से ये जो चल रहे डेमोक्रेसी, किधर भी, या तो अमेरिका में, या तो ब्रिटेन में, या तो भारत में हुई एक प्रक्रिया है, जिसको आप बाजू रहके इसका बराबर अभ्यास करना चाहिए, और इसको क्या रूप देना चाहिए?

हां, यह बिल्कुल ठीक है ना, यह तो ठीक ही है, सारी प्रक्रियाएं विकसती हुई प्रक्रियाएं हैं, लेकिन विकास वह तब ही करती हैं, जब उनको अंतिम मान लेते हों। विकास का मतलब ही यह होता है, कि जो है वह पूर्ण नहीं है। बीकमिंग की प्रोसेस का मतलब ही यह है कि वह अभी हो नहीं गई है, हो रही है। और हो रही है, वह तभी तक होती रहेगी, जब तक हम इसको अंतिम न मान लें, जो हो गई। इसके आगे लक्ष्य हमारे सामने बना रहे कि यह होना चाहिए, तो विकास होगा। लेकिन हुआ क्या है, अमेरिका में, उनको ख्याल यह हो गया है कि डेमोक्रेसी यह है, डेमोक्रेसी विकसित हो रही है ऐसा नहीं, बल्कि डेमोक्रेसी यह है। डेमोक्रेसी विकसित होने का मतलब यह ही होगा कि अभी जो डेमोक्रेसी है, उसमें नॉन-डेमोक्रेटिक तत्व मौजूद हैं। तभी विकास होगा नहीं तो विकास नहीं होगा। और यही मेरा कहना है कि डेमोक्रेसी कहीं भी नहीं है। अमेरिका में भी वो रूक गई है, और भारत में तो वो पैदा ही नहीं हो पाई।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं समझा आपकी बात, असल बात यह है, असल बात यह है, कोई भी, कोई भी मौजूदा स्थिति को बदलने के लिए भी दो बातें जरूरी हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न-न, उससे क्या फर्क पड़ता है कि कौन गाइड करता है। यह सवाल नहीं है। सवाल यह है, सवाल यह है कि अगर गलत है, तो गलत की हवा पैदा करनी चाहिए, गाइडेंस पैदा हो जाती है। सवाल यह नहीं कि मैं गाइड करूं या आप गाइड करें, लोकतंत्र में शायद गाइड कोई भी नहीं करता है, लेकिन हम सब मिल कर एक हवा पैदा करते हैं, जो गाइड करती है। वह जो मूवमेंट भी फ्रांस में हुआ विद्यार्थियों का, वह भी कोई एक विद्यार्थी या एक नेता गाइड कर रहा है ऐसा नहीं है, समाज की पूरी चेतना तैयार होती है, सोच कर, तो उससे क्रांति पैदा होनी शुरू होती है। अब जैसे कि अमेरिका में, वह जो लोकतंत्र स्वीकृत हो गया है, वह जो स्वीकृत लोकतंत्र है जब तक न टूटे, जब तक कि कुछ युवकों के मन में, नई पीढ़ी के मन में, वह स्वीकृत लोकतंत्र अस्वीकृत न हो जाए। तब तक कोई क्रांति पैदा नहीं होगी। वह जो फ्रांस में हो सका है, वह इसलिए हो सका है कि युवकों के मन में अस्वीकार खड़ा हो गया है। तो अस्वीकार खड़ा करने की ही मेरी कोशिश है। वह मुझसे सफल होगी, यह सवाल नहीं है। वह आपसे सफल होगी यह सवाल नहीं है। मेरी कोशिश यह है कि हम जो, जो चीजें मौजूदा हमें जकड़ लेती हैं और माइंड को स्टैटिक करती हैं और रोक देती हैं, वह स्वीकृत नहीं हो जानी चाहिएं, जिंदगी निरंतर अस्वीकार से गुजरती रहनी चाहिए, ताकि वो विकासमान हो। जिन चीजों को भी हम स्वीकार कर लेते हैं, वहीं हम रूक जाते हैं।

अब जैसे भारत का ही मामला है, हम नामालूम कितनी ची.जें हजारों साल से स्वीकार किए बैठे हैं? हम अस्वीकार ही नहीं करते। वह जो फ्रांस में लड़के कर सके हैं, वह हमारे लड़के अभी शायद पांच सौ साल नहीं कर सकते। अस्वीकार का कोई बोध ही नहीं है। और अगर हम अस्वीकार भी करते हैं तो बहुत टुच्ची ची.जों को अस्वीकार करते हैं। कोई बेसिक वेल्यू.ज को अस्वीकार नहीं करते। जैसे लोकतंत्र की ही बात है, अभी तो लोकतंत्र की अवधारणा भी देश के मन में नहीं हो सकी है। क्योंकि एक हजार साल तक मुल्क गुलाम रहा हो तो उस मुल्क की कल्पना में भी लोकतंत्र का अर्थ नहीं होता। लोकतंत्र हमारे ऊपर बिल्कुल ऊपर से इंपोज्ड है। वो हमारे भीतर से कहीं से आया नहीं है। वो सारा का सारा हमारा लोकतंत्र का पूरा का पूरा विधान उधार है। वह हमने सब बाहर से इकठ्ठा करके खड़ा कर लिया है। मुल्क की आत्मा से वो कहीं जन्मा नहीं है। और वह जो ऊपर से हमने स्वीकार कर लिया है, उसे अगर हम स्वीकार करके बैठ गए, तो इस मुल्क में विकासमान धाराएं सब रूक जाएंगी, रूक गई हैं। कहीं कोई बढ़ नहीं रही हैं।
तो मेरा जो कहना है, कुल जमा यह कि विकासमान है, प्रत्येक अवस्था विकासमान रहेगी। कभी कोई ऐसी अवस्था नहीं आ जाने वाली है, जिसके आगे विकास न हो सके। इसलिए प्रत्येक अवस्था में ऐसे लोगों की जरूरत होगी, जो अस्वीकार करते रहें। ताकि विकास को गति देते रहें। अस्वीकार करने वाले लोगों की निरंतर जरूरत है। लेकिन हमारे मुल्क में क्या तकलीफ है अस्वीकार करने वाला आदमी हमें दुश्मन मालूम पड़ता है। स्वीकार करने वाला हमें मित्र मालूम पड़ता है। और स्वीकार करने वाला ही हमेशा घातक सिद्ध होता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

दो-तीन बातें खयाल में लेनी चाहिए। पहली तो बात यह कि इस तरह के संपत्ति के विनाश को मैं बिल्कुल क्रिमिनल वेस्ट कहता हूं। यह अत्यंत जघन्य अपराध है। इस तरह की संपत्ति का विनाश। और एक आदमी एक करोड़ रूपये की संपत्ति को आग लगा दे, वह उतना बड़ा अपराध नहीं है, जितना कि वो धार्मिक विधि से आग लगाए। क्योंकि एक करोड़ रूपये के मकान में अगर कोई आग लगा दे, तो वह अपने को भीतर अपराधी समझेगा। और हम सब भी उसे अपराधी समझेंगे। लेकिन धार्मिक विधि-विधान से एक करोड़ रुपये की संपत्ति को आग लगा दे, तो वह पायस क्रिमिनल है। वह समझेगा कि मैं पवित्र... । और उसको पता भी नहीं चलेगा कि मैं कोई पाप कर रहा हूं। और समाज भी उसका समर्थन देगा। तो जो करोड़ रूपये की संपत्ति को नुकसान करने वाले के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए, वही व्यवहार इस तरह के यज्ञों को प्रचलित करने और व्यवस्था देने वाले लोगों के साथ किया जाना चाहिए। लेकिन सिर्फ यज्ञ के ही एक अरब रूपया, एक करोड़ रूपया कितना ही रूपया कोई खराब कर रहा है, तब अगर हम सोचेंगे कि इसे रोका जाए, तो यह नहीं रोका जा सकता। जब तक की यज्ञ की मौलिक धारणा को हम तोड़ने की कोशिश नहीं करते। सिर्फ सम्पत्ति के लिए नहीं रूक सकता यह। अगर आप कहते हों कि यज्ञ तो ठीक है, लेकिन रूपये खराब नहीं करने चाहिएं; तो फिर यह रूकने वाला नहीं है।
तो मेरा कहना है कि पहली तो बात यह है कि यज्ञ के जैसी बात ही मूढ़तापूर्ण है। अवैज्ञानिक है, और मुल्क के भीतर जड़ता को स्थान देती है; इसकी हवा पैदा करनी चाहिए। क्योंकि यज्ञ से कुछ भी होने वाला नहीं। और जो लोग भी कहते हों कि यज्ञ से शांति आ सकती है, वर्षा हो सकती है, अकाल मिट सकता है; उनको पकड़ कर दिल्ली की लेबोरेटरी में बैठा कर प्रयोग करवाना चाहिए और अगर वह सिद्ध कर सकें, तो फिर पूरे मुल्क में यज्ञ किये जाने चाहिएं। वह सिद्ध न कर सकें, तो बिल्कुल गैर कानूनी होना चाहिए कि कहीं कोई आदमी यज्ञ नहीं कर सकेगा। करेगा तो अपराधी होगा, जैसे चोरी करने वाला होता है, हत्या करने वाला होता है। मेरा मतलब समझ रहे हैं न। एक मौका हमें देना चाहिए कि जो लोग कहते हैं यज्ञ से यह हो सकता है, वह प्रयोगात्मक रूप से करके दिखाएं कि यह कितना हो सकता है। अगर वह नहीं सफल होते हैं, तो ठीक है जो हम अपराधियों के साथ व्यवहार करते हैं, वह उनके साथ करना चाहिए। और

अभी, इसकी पूरी हवा पैदा की जानी चाहिए। जहां-जहां यज्ञ होते हैं वहां युवकों के मण्डल खड़े किये जाने चाहिएं, जो अंशन करें, लेट जाएं, यज्ञ को न होने दें, यज्ञ में कूद का मर जाएं, लेकिन घी को न जलने दें, यज्ञ में। इसकी फिक्र करनी चाहिए। और मुल्क की पूरी हवा पैदा करनी चाहिए। लेकिन हवा पैदा नहीं होगी, क्योंकि हम करते क्या हैं, हम छोटी चीजों को तो इंकार करते हैं, एक करोड़ रूपये छोटी ची.ज है! वो सवाल बड़ा नहीं है, लेकिन जब एक करोड़ जलने लगेगा, तब हम चिंतित होंगे कि एक करोड़ नहीं जलना चाहिए, लेकिन हम इससे चिंतित नहीं होंगे कि यह जो यज्ञ का कंसेप्ट है, ये मूर्खतापूर्ण है, और ये कन्सेप्ट उखड़ना चाहिए मुल्क से कि कोई व्यक्ति कहीं आग जला कर मंत्र पढ़े तो इससे जगत के वातावरण में, कुछ भी हो सकता है। यह धारणा टूटनी चाहिए। वह चाहे एक पैसा जलाता हो कि एक करोड़ यह सवाल नहीं है। और ऐसा आदमी मुल्क को अविज्ञान की तरफ ले जाता है। जिसकी हमें फिकर करनी चाहिए। लेकिन हमारा अजीब हाल है, राष्ट्रपति तक! राजेन्द्र प्रसाद तक, जाकर काशी में दो सौ ब्राह्मणों के पैर धोए। राष्ट्रपति होते हुए! और हिन्दुस्तान में कोई बगावत नहीं फैल गई कि हम राष्ट्रपति को यह जघंय अपराध नहीं करने देंगे। राष्ट्रपति की हैसियत से एक आदमी जाकर दो सौ ब्राह्मणों के, जो उसे किसी भी स्थिति में पैर छूने योग्य नहीं हैं, कोई भी ऐरे-गैरे दो सौ ब्राह्मण खडे. हैं, लेकिन वे ब्राह्मण हैं, और राष्ट्रपति उनके पैर छूता है और मुल्क में कहीं कोई विरोध नहीं होता कि राष्ट्रपति पैर छूता है, दो सौ ब्राह्मणों के जाकर, और उनके पानी को सिर से लगाता है, उनके पैर के। यह बात राष्ट्रीय अपमान है। और ऐसे आदमी को राष्ट्रपति नहीं रहने देंगे। इसको नीचे उतारेंगे क्योंकि ये क्या पागलपन है? या तो तुम सिद्ध करो कि ब्राह्मण के पैर छूने से राष्ट्र का कुछ हित होता है? मेरा मतलब आप समझ रहे हैं ना। मेरा मतलब कुल इतना है, कि हमें बेसिक वैल्यूज पर जहां हमने, जहां हमने चीजों का... ।

प्रश्नः क्या पक्का कंडीशन बीच में आएगा, राष्ट्रपति प्रमुखत्व बीच में आएगा?

न, न, अगर उसका पर्सनल है, तो उसे राजेन्द्र प्रसाद की हैसियत से जाना चाहिए। उसके लिए राष्ट्रपति का इंतजाम नहीं होना चाहिए फिर बनारस में। और उसके लिए सारी मिलिट्री नहीं लगनी चाहिए। और उसके पीछे बॉडीगार्ड नहीं होने चाहिएं। वह अपने राजेंद्र प्रसाद की हैसियत से जाकर, उसे जो भी करना हो, वह कर सकता है। लेकिन राष्ट्रपति की हैसियत से यह किया जाए और मुल्क चुपचाप देखे, तो फिर हम बेसिक वैल्यूज को नहीं बदल सकते। फिर बहुत मुश्किल मामला हो जाएगा।

प्रश्नः आप जो कहते हैं कि यह डेमोक्रेसी है, और यह वोट टेकिंग पीपल हैं, तो यह तो यह करेंगे ही, इन्हीं को तो वोट चाहिए। तो प्रजा कोई भी अगर मूर्खता भरी बात करेगी, गलती करेगी, तो यह तो जाएंगे ही। तो हम कैसे उन्हें रोकेंगे?

हां, तो लोकमानस तैयार करने की बात... । मैं भी वहीं करूंगा न, कोई भी वही करेगा। लोकमानस तैयार करने का सवाल है, कि लोकमानस तैयार किया जा सके। और लोकमानस तैयार किया जा सकता है। मैं नहीं मानता हूं कि जनता इतनी मूढ़ अब है कि हम लोकमानस तैयार करना चाहें और वो तैयार न हो सके। और आप तो हैरान होंगे, मैं छोटे, जैसा आप पूछ रहे हैं, वैसा छोटे-छोटे गांव में जाता हूं, वहां भी लोग पूछते हैं कि यह एक करोड़ रूपया खराब करने का, आपका इसके बाबत क्या ख्याल है? लोग पूछना शुरू कर रहे हैं, जब जिनके हाथ में मुल्क की, विचार को पहुंचाने की खबर पहुंचाने की एक ताकत है, वे उसकी तरफ बहुत ध्यान नहीं दे रहे हैं। हिन्दुस्तान का बुद्धिजीवी... ।

प्रश्नः ताकत किसके हाथ में, अखबारों के हाथ में?

न-न, अखबार के हाथ में हैं, बुद्धिजीवी के हाथ में है, शिक्षक के हाथ में है, प्रोफेसर के हाथ में है।

प्रश्नः ओशो, अखबार किसकी मालिकी में है?

मैं समझा आपकी बात, मैं आपकी बात समझता हूं। यह प्रश्न है कि मालिकी किसकी है? यह प्रश्न है। यह प्रश्न बिजकुल है। लेकिन मालिकी जिसकी है, वह है। जो काम कर रहे हैं, वह लोग भी हैं। और मेरी अपनी समझ यह है कि अगर काम करने वाले जो लोग हैं उनकी, थोड़ी भी बुद्धि जागृत हो तो, मालिकी बहुत कुछ करवा नहीं सकती। और बहुत मामलों में रुकावटें डाली जा सकती हैं।

प्रश्नः क्या आप ये भी मानते हैं कि बुद्धिजीवी में इतनी ताकत है?

यह आप ठीक कहते हैं। यह आप ठीक कहते हैं, यह ताकत नहीं है, जितनी होनी चाहिए। उसको पैदा करना है। उसके लिए मेहनत करनी है, उसके लिए श्रम उठाना है।

प्रश्नः हमने तो देखा है कि सबसे बड़े कमजोर बुद्धिजीवी हैं?

आप ठीक कहते हैं।

प्रश्नः यह सच है कि कोई डेली ने, न्यूज डेली ने आपका इंटरव्यू लिया था, फिर छपा नहीं?

हां, हां, यह सच है ना। यह सच है ना। दिल्ली में उन्होंने इंटरव्यू लिया। जो इंटरव्यू पत्रकार लेके गए थे, वो बहुत खुश होकर गए थे। और कह कर गए थे कि आज ही हम इसे छापते हैं। वह नहीं छप सका, तीन दिन बाद उन्होंने मुझे खबर की कि हम मुश्किल में पड़ गए हैं, हम तो दे दिए हैं लेकिन ऊपर से मुश्किल है।

प्रश्नः उनकी खुशी में सब चले गए।

हां, हां यह तो ठीक है न, यह जो स्थिति है न, यह स्थिति किसी न किसी तरह पत्रकारों को तोड़ने की हिम्मत जुटानी चाहिए।

प्रश्नः बहुत सारी बात हुई हैं, छपी क्या नहीं आपकी?

बहुत सी चीजें छापी गई हैं, लेकिन ऐसी की जैसी नहीं छापी जानी चाहिए थी। यानि जो मैं कहता हूं, उसको तोड़ कर छापा गया है। आधा कर कर छापा गया, प्रसंग के बाहर निकाल कर छापा गया। वह सब हुआ है। लेकिन मुझे पत्रकारों ने भी कहा, बम्बई के पत्रकारों ने मुझे कहा कि हम जो छापना चाहते थे, वह नहीं गया है, और जो गया है, हम क्षमा मांगते हैं आपसे। लेकिन यह तो बड़ी दुःखद बात है। फिर यह कैसे होगा? यह तो विशेष सर्किल है, वह मैं समझता हूं आपका कि धनपति वहां बैठा है। सब जगह धनपति बैठा हुआ है। और सब जगह सत्ताधिकारी बैठा हुआ है, राजनैतिज्ञ बैठा हुआ है। लेकिन कहीं से किन्हीं को इसे तोड़ने की कोशिश करनी पड़ेगी। निश्चित ही तोड़ने वाले तकलीफ में भी पड़ेंगे।

प्रश्न : ओशो, स्थापित मूल्यों को तोड़ने की आप बात करते हैं, उसके बाद विधायक कोई आपका कार्यक्रम भी होगा या नहीं? बात करके, इकोनॉमिक इक्वालिटी के लिए आप बात करें, जब तक कि वो इक्वालिटी नहीं आएगी, लोकतंत्र सफल नहीं होगा। तो उसके लिए प्रोग्राम क्या होगा? और वह विधायक पूरा करने के लिए, क्या आप चुनाव लड़ेंगे, या कोई कैंडिडेट खड़े करेंगे?

नहीं, न तो चुनाव लडूंगा और न कोई कैंडिडेट खड़ा करूंगा।

प्रश्नः... और आपके खयाल में विनोबा जी का आजकल प्रोग्राम चलता है, वह कितने... ?
प्रश्नः आर्थिक समानता के लिए, गांधी जी ने अभी जो कहा, उनके बारे में आपका क्या खयाल है?

पहली तो बात यह कि जितनी नकारात्मक बातें मैं कह रहा हूं, निगेटिव, उनमें से कोई भी नकारात्मक नहीं है। वह नकारात्मक दिखाई पड़ती है, लेकिन पीछे पॉजिटिव है। जैसे कि अगर मैं यह कह रहा हूं, कि यज्ञ अवैज्ञानिक है और यज्ञ के माध्यम से आकाश से पानी नहीं गिराया जा सकता। ये अभी निगेटिव बात है, क्योंकि यज्ञ नहीं होना चाहिए। लेकिन मेरी मान्यता यह है कि जैसे ही मुल्क के मन से यह बात खत्म हो जाए कि यज्ञ से पानी गिराया जा सकता है, वैसे ही मुल्क पूछना शुरू कर देगा कि फिर पानी कैसे गिराया जा सकता है? जब तक मुल्क सोचता है कि यज्ञ से पानी गिराया जा सकता है, जब तक यज्ञ से गिराया जा सकता है, तब तक यंत्र से गिराने की बात उसके मन में पैदा नहीं होती। यह जड़ पकड़े हुए है, तो मुल्क के मन में साइंस पैदा नहीं होती, खयाल पैदा नहीं होता कि हम पानी गिरा सकते हैं। और शायद एक करोड़ रूपये से इंतजाम किया जा सकता था, कुछ शोध की जा सकती थी, रिसर्च की जा सकती थी, जिससे हम बादल को ला सकते और पानी गिरा सकते, लेकिन वह एक करोड़ बिल्कुल फिजूल चला गया। नकारात्मक भी मूलतः तो पाजिटिव होता है, क्योंकि जब हम एक चीज छीनते हैं, तो उसकी जगह खाली जगह छूटती है, पीछे, पीछे वैक्यूम पैदा होता है, वैक्यूम से पाजिटिव पैदा होना शुरू होता है। हिन्दुस्तान के मन में इतने गलत पाजिटिव बैठे हुए हैं, कि जब तक हम उनको नहीं तोड़ देते, तब तक ठीक पाजिटिव पैदा नहीं होगा। इसलिए मेरी दृष्टि में अभी हिन्दुस्तान को कोई पंद्रह-बीस साल तो निगेशन से गुजारने की जरूरत है कि वे इतने निगेशन से गुजरे कि उसके सारे गलत खयाल टूटने शुरू हो जाएं। यह बड़े मजे. की बात है कि जैसे ही यह गलत ख्याल टूटता है, चेतना ठीक खयाल को खोजने की कोशिश शुरू कर देती है। जब तक गलत ख्याल को पकड़े रहती है, तब तक उसे ठीक खयाल का सवाल नहीं उठता, वह खयाल भी पैदा नहीं होता।
और दूसरी बात, जैसे जब मैं कहता हूं कि धर्म की स्थापित, यज्ञ की, तंत्र की, मंत्र की जो धारणा है, वह टूटनी चाहिए, तो उसके साथ ही मैं कहता हूं कि वैज्ञानिक दृष्टि मुल्क में पैदा होनी चाहिए। वो पाजि.टिव पहलू है। एक साइंटिफिक आउटलुक मुल्क में पैदा होनी चाहिए, वह बिल्कुल नहीं है। मुल्क के पास वैज्ञानिक दृष्टि ही नहीं है। हमारे सोचने का ढंग ही अवैज्ञानिक है। हम जब भी सोचते हैं, तो सोचने का ढंग अवैज्ञानिक होता है। जैसे कि मुल्क में भोजन की कमी है, तो मुल्क के प्रधानमंत्री को सूझेगा कि एक दिन सोमवार को खाना नहीं खाना चाहिए। एक दिन खाना नहीं खाने से कमी पूरी हो जाएगी! शायद कोई भी वैज्ञानिक ढंग से सोचने वाला इस तरह से नहीं सोचेगा कि उपवास कर लेना चाहिए। कि उपवास कर लेने से कोई मसला हल होगा। वह जो आदमी उपवास करेगा, वह दूध पी लेगा, फलाहार कर लेगा, और जितना वह खाने में खाता, उससे ज्यादा खर्च कर डालेगा। और कितने आदमी उपवास करेंगे? और उपवास से कितना बच जाएगा? और कितना उपवास करने से जनसंख्या रूक जाएगी, या उत्पादन बढ़ जाएगा? लेकिन हमारे सोचने के ढंग यह हमको बहुत अपील करती है यह बात कि बिल्कुल ठीक बात है। एक आदमी एक दिन उपवास कर ले तो इतना भोजन बच जाएगा, इतना सब हो जाएगा। जब तक हम इस तरह की अवैज्ञानिक चेतना को जगह देते हैं, जब तब वैज्ञानिक चेतना पैदा नहीं होती कि कैसे ज्यादा पैदा हो जाए? आदमी कैसे कम हो जाएं? अब सारी दुनिया में आदमी कम करने की व्यवस्था हो गई है। फ्रांस ने अपनी जनसंख्या रोक रखी है, वह नहीं बढ़ रही। बल्कि यह डर पैदा हो गया है फ्रांस में कि शायद उनको जनसंख्या बढ़ाने के लिए कुछ व्यापक प्रचार करना शुरू करना पड़े। कि थोड़ी जनसंख्या बढ़नी चाहिए। जापान ने अपनी जनसंख्या रोक ली। हमारा मुल्क, हमारा संयासी समझा रहा है लोगों को कि

भगवान पैदा करता है बच्चों को। वह भगवान की तरफ से तय है, वह हमारे हाथ में नहीं है। और हम उसकी बात सुन रहे हैं, समझ रहे हैं, मुल्क में बात घूमती चली जा रही है।
अवैज्ञानिक चिंतन टूटना चाहिए। तो वैज्ञानिक चिंतन अपने आप पैदा होता है। और वैज्ञानिक चिंतन आना चाहिए। धार्मिक चिंतन की जगह, वैज्ञानिक चिंतन को जगह मिलनी चाहिए। धार्मिक चिंतन शैडो थिंकिंग है। वह झूठा चिंतन है। उस चिंतन से कुछ होता नहीं, सिर्फ, मन का बहलाव होता है। मन का बहलाव करने के लिए हमने इतनी तरकीबें इजाद कर ली हैं, तीन-चार हजार वर्षों में, कि हम मन का ही बहलाव कर रहे हैं। जैसे कि गरीबी है मुल्क में, तो वैज्ञानिक चिंतक सोचेगा कि गरीबी कैसे पैदा हो जाती है? संपत्ति कुछ लोगों से खिंचके, कुछ दूसरे लोगों के पास कैसे पहुंच जाती है? धार्मिक चिंतक सोचेगा कि आदमी गरीब पैदा हुआ, तो उसका मतलब है कि उसने पिछले जन्म में कुछ बुरे कर्म किये होंगे, इसलिए वह गरीबी की तकलीफ भोग रहा है। संपत्ति के विभाजन का ख्याल उसे नहीं आता है। धार्मिक चिंतक को ख़्याल आता है कि आदमी गरीबी में दुख भोग रहा है, तो दुख भोगने के इसने कोई कर्म किये होंगे। और इसलिए भारत में तीन हजार वर्ष से हम गरीबी झेल रहे हैं, लेकिन धार्मिक चिंतक समझाता है कि गरीबी पिछले जन्मों के कर्मों का फल है। मामला खत्म हो जाता है। इसलिए कोई क्रांति का सवाल नहीं उठता, और उसको बदलने का सवाल नहीं उठता।
तो मेरा कहना यह है, एक उदाहरण के लिए मैंने कहा, इस तरह के सारे अवैज्ञानिक चिंतन तोड़े जाने चाहिए। और उनकी जगह वैज्ञानिक ढंग से सोचने की व्यवस्था ईजाद की जानी चाहिए। और वैज्ञानिक ढंग से सोचने की व्यवस्था के अंग होंगे। जैसे कि धार्मिक का एक अंग होता है कि आदमी विश्वास करे। वैज्ञानिक व्यवस्था का अंग होगा कि आदमी संदेह करे। अगर हमें स्कूलों में बच्चों को वैज्ञानिक बनाना है, तो उनको राइट डाउट्स सिखाने की पहले दिन से कोशिश करनी पड़ेगी। और बिलीफ से मुक्त करना पड़ेगा। डाउट सिखाना पड़ेगा। तो जाकर वह युनिवर्सिटी की कक्षा तक वैज्ञानिक बुद्धि उनमें पैदा हो सकती है। लेकिन अगर उनको हमने सिखाया कि श्रद्धा करो, तो उनमें कभी वैज्ञानिक बुद्धि पैदा होने वाली नहीं है। और यह जो आप कहते हैं कि मैं क्या करूंगा? क्या मैं इलेक्शन लडूंगा, या कैंडिडेट खड़े करूंगा? न तो मैं इलेक्शन लड़ूंगा, न मैं कैंडिडेट खड़े करूंगा, वह बात मुझे महत्वपूर्ण नहीं मालूम पड़ती, मुझे महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है कि मुल्क, का वातावरण चिंतन से भर जाए, तो उस चिंतनपूर्ण वातावरण से कैंडिडेट भी निकल आएंगे, इलेक्शन भी निकल आएगा। उससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं। उससे मेरा कोई सीधा संबंध नहीं है। एक बार मुल्क में चिंतन पैदा हो, और हर चीज पर सोचना शुरू हो, हर चीज पर पुराने स्थापित मूल्य के विरोध में क्रांति आ जाए, तो उस हवा से पैदा होंगे लोग। उस हवा से कैन्डिडेट भी पैदा होगा, उस हवा से इलेक्शन भी पैदा होगा, वो हवा बदलेगी। मेरा प्रयोजन हवा पैदा करने से ज्यादा नहीं है। उससे ज्यादा मेरी उत्सुकता नहीं है।

प्रश्नः आपने तो कहा है कि यह चिंतन और सोचने की बात जो है, इसे पहले आपने कहा है कि ज्ञान मिथ्या है, तो चिंतन और सोचने के बगैर ज्ञान कैसा?

हां, अब यह ही होता है, टुकड़ों में यह ही होता है। मैंने कहा है कि ज्ञान मिथ्या है, जो दूसरे से मिल जाता है। बस वह उतना हिस्सा छोड़ दिया तो बड़ा मुश्किल हो गया। जो दूसरे से मिल जाता है वह मिथ्या है, जो आपके चिंतन, मनन और सोचने से आता है वो मिथ्या नहीं है। उधार ज्ञान मिथ्या है। बोरोड नॉलिज मिथ्या है।

प्रश्नः आपने उधार ज्ञान की बात नहीं की?

मैं निरंतर कर रहा हूं, निरन्तर कर रहा हूं। कठिनाई क्या होती है, एक वाक्य आप तोड़ ले सकते हैं। मैं निरंतर जब भी कहता हूं कि ज्ञान मिथ्या है,

तब मैं ये कह रहा हूं कि उधार ज्ञान, सीखा हुआ, दूसरे की किताब से लिया हुआ, दूसरे से पकड़ लिया गया, मिथ्या है। जो ज्ञान खुद के चितन, मनन, संघर्ष से पैदा होता है, वह मिथ्या नहीं है। अगर वह मिथ्या हो जाएगा, फिर तो कोई उपाय ही नहीं रहा।

प्रश्नः अल्लशो, वह बात पूरी नहीं हुई अभी, वह चल रही है, वह खासकर के आर्थिक कार्यक्रम के बारे में?

हां, समझा मैं। दो-तीन बातें उसमें पूछी हैं। एक तो बात यह पूछी है कि गांधी जी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की बात। उससे मैं राजी नहीं हूं। उससे मैं राजी नहीं हूं। क्योंकि संपत्ति व्यक्तियों के हाथ में रहे, यह ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त मान लेता है। व्यक्तिगत संपत्ति को स्वीकार कर लेता है। फिर व्यक्तिगत संपत्ति की व्याख्या करता है। लेकिन स्वीकृति वहां है कि संपत्ति व्यक्तिगत होगी। जिस आदमी की होगी, वह आदमी ट्रस्टी की हैसियत से वह उसका उपयोग करेगा। लेकिन इंडिविजुअल प्रोपर्टी की स्वीकृति वहां है। मेरा मानना है जब तक प्रॉपर्टी की स्वीकृति व्यक्तिगत है, तब तक दुनिया में आर्थिक समानता नहीं हो सकती। संपत्ति सामूहिक ही होनी चाहिए, व्यक्तिगत नहीं। संपत्ति सामूहिक है ही, वह व्यक्तिगत है भी नहीं। किसी एक व्यक्ति के द्वारा संपत्ति पैदा नहीं होती है। संपत्ति पैदा होती है सामूहिक सहयोग के द्वारा। उसकी मालकियत भी समूह की होनी चाहिए। और जैसे ही हम यह कहते हैं कि ट्रस्टी की तरह व्यवहार करे कोई व्यक्ति, वैसे ही व्यक्ति के ऊपर बात छूट गई कि वह कैसा व्यवहार करेगा? ट्रस्टी वह कैसा हो?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

गांधी जी की मान्यता है कि व्यक्ति के ऊपर विश्वास किया जा सकता है। मेरी भी मान्यता है कि व्यक्ति पर विश्वास किया जाना चाहिए। लेकिन मेरी ये भी समझ है कि व्यक्ति समाज के बहुत बड़े यंत्र का पुर्जा है। और अगर व्यक्ति चेष्टा भी करे, पूरे समाज के यंत्र के विरोध में, ट्रस्टी होने की तो सिर्फ खुद मिट जाएगा, और कुछ भी नहीं हो सकता। और एक व्यक्ति के मिटने से कोई परिणाम नहीं होता। दूसरा व्यक्ति उसकी जगह खड़ा हो जाएगा। फिर गांधी जी ने तीस-चालीस साल मेहनत की, एक भी आदमी को वह ट्रस्टी होने के लिए राजी नहीं कर पाए। बल्कि जिन लोगों की, जिन धनपतियों के बीच गांधी जी को आशा थी, उन सारे धनपतियों ने... , गांधी जी तो उनको ट्रस्टी नहीं बना पाए, लेकिन वह व्यक्ति गांधी जी के सत्संग का खूब लाभ उठा कर भारी संपत्ति को इकट्ठा कर लिये। अकेले बिरला के पास अंदाजन तीस करोड़ की संपत्ति का संग्रह था, आजादी आई तब। आज उसके पास साढ़े तीन सौ करोड़ के ऊपर संपत्ति इकट्ठी हो गई है। गांधी जी बिरला को ट्रस्टी नहीं बना पाए लेकिन गांधी जी के नाम की क्रेडिट का फायदा बिरला ने पूरा उठाने की कोशिश की। अब यह जो गांधी जी न बना पाए ट्रस्टी, तो गांधीवादी बना पाएंगे ट्रस्टी! गांधी जी न बना पाए और मोरारजी बना पाएंगे यह असंभव मामला है। ट्रस्टी बनाए नहीं जा सकते क्योंकि व्यक्ति जो है वह बड़े भारी समूह के यंत्र का हिस्सा है, उस समूह के पूरे यंत्र में शोषण का कार्य जारी हो, तो व्यक्ति को ट्रस्टी बनाने, नहीं बनाने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन यह ट्रस्टीशिप का सिद्धांत धनपति को बहुत अपील करता है। उसे लगता है कि बहुत अच्छा सिद्धांत है। क्योंकि इसमें व्यक्तिगत संपत्ति को बचाने की फिर एक सुविधा मिल जाती है। मैं ऐसा नहीं मानता हूं कि गांधी जी की नीयत ऐसी है कि व्यक्तिगत संपत्ति बच जाए। गांधी जी की नीयत पर मुझे शक नहीं है। लेकिन गांधी जी का जो प्रस्ताव है, उससे व्यक्तिगत संपत्ति के बचने की संभावना है। और वह संभावना का फायदा पूंजीपति उठा लेना चाह सकता है। और सारी दुनिया मे पूंजीवाद गांधीजी के प्रति जो उत्सुकता दिखा रहा है, उस उत्सुकता का एक ही कारण है, पूंजीवाद तो मर चुका है, उसकी तो अरथी निकल चुकी है, अब सिर्फ लाश है। अब उसके सामने एक ही विकल्प है। और वह विकल्प है समाजवाद का। उसकी लाश

तो निकल चुकी है। अब आखिरी उपय यह है कि गांधी जैसे व्यक्तियों के सिद्धांतों का कोई सहारा मिल जाए, तो पूंजीवाद की लाश थोड़े दिन तक और जिंदा होने के भ्रम में खींची जा सकती है। तो पूंजीवाद उनमें उत्सुकता ले रहा है। वह उत्सुकता गांधीजी में नही है। वह उत्सुकता पूंजीवाद के लास्ट सेटी मेजर की तरह है। गांधी जी का सहारा आखिरी मिल जाए तो थोड़े दिन तक पूंजीवाद और खिंच सकता है। मुझे नहीं लगता कि गाधी जी के विचार से पूंजीवाद मिट सकता है। गांधी जी का विचार शुभ है, और गांधी जी की धारणा शुभ है लेकिन वह धारणा शुभ समाज की वैज्ञानिक व्यवस्था को बदलने में सार्थक नहीं हो सकती।

प्रश्नः खतरा कम्यूनिज्म में नहीं है?

खतरे हैं, खतरे बिल्कुल हैं, और खतरे कम नहीं हैं। गांधीवाद से भी ज्यादा खतरे हो सकते हैं, वो मैं बात करता हूं। खतरे नहीं है, यह सवाल नहीं है मेरा, मैं यह कह नहीं रहा हूं कि वही एक विकल्प है। और न मैं यह कह रहा हूं वही विकल्प चुन लिया जाना चाहिए। अभी मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि पूंजीवाद अपने को बचाने की अंतिम चेष्टा में गांधीवाद का सहारा ले सकता है। और हिंदुस्तान में गांधी और विनोबा का सहारा उसे मिला है। और मिल रहा है। यह जो सहारा है... , पूंजीवाद को, पूंजीपति का सवाल नहीं है, पूंजीवाद को, पूंजीशाही को, वह सहारा मिल रहा है, और इसलिए वह उत्सुक है और आनंदित भी है। और आनंदित भी है, और सारी सहायता भी देने को उनको तैयार है। क्योंकि दिखाई यह पड़ता है कि उस माध्यम से समाज में आने वाली क्रान्ति को थोड़े दिन तक विलम्बित तो किया ही जा सकता है। विनोबा जो काम कर रहे हैं, उसका लक्ष्य भी ठीक है, उनकी नजर भी ठीक है, वह जो कामना और कल्पना करते हैं, वह भी ठीक है। लेकिन समाज न कामनाओं से चलता है, न कल्पनाओं से चलता है। समाज का एक जड़यंत्र है। और उस यंत्र से समाज बहुत, बहुत दूर तक निन्यानबे प्रतिशत उस जड़यंत्र से चलता है। और उस जड़यंत्र को जब तक तोड़ने की सीधी कोई क्रांति न हो, तब तक ऊपर के सारे सुधार, मकान को बिना बदले, थोड़े बहुत मकान में रंग-रोगन करने के और दीवाल को साफ-सुथरा बनाने के, थोड़ा पलस्तर बदलने के साबित होने वाले हैं। जो आदमी भूदान में जमीन दान दे देता है, वह जमीन दान देने के बाद, शोषक नहीं रह जाता है, ऐसा नहीं है। उसका शोषक रहना जारी रहता है। वह एक तरफ.जमीन देता है दान में, एक तरफ वह कहता है कि हम भूमि का सबकी बनाने के लिए कुछ करते हैं, और दूसरी तरफ उसके शोषण का सारा काम जारी रहता है। बल्कि जितनी जमीन उसने दान में दी है, उतना दो साल के भीतर, साल भर के भीतर वह शीघ्रता से कैसे वापस खींच ले, वह उसके शोषण की प्रक्रिया जारी रहती है। शोषक नहीं बदलता भूदान से। सिर्फ शोषक थोड़ा सा दान देता है। और दान देने वाला शोषक, न दान देने वाले शोषक से ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो सकता है। क्योंकि दान देने वाला शोषक आने वाली क्रांति को बफर का काम करता है। वह लगता है नहीं कि कुछ हो रहा है। शोषक भी कुछ दे रहा है, समाज बदल रहा है। भूमि भी दी जा रही है, धन भी दिया जा रहा है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। धीरे-धीरे लोग बदल जाएंगे। और यह जो हवा पैदा होती है, वह क्रांति की क्षमता को, तीव्रता को कम करती है।
विनोबा के काम से शोषण का यंत्र नहीं टूट रहा, सिर्फ शोषण के यंत्र में ऑयलिंग हो रही है। विनोबा को पता हो या न पता हो। विनोबा जानते हों, या न जानते हों, वह सवाल नहीं है। उनकी इच्छा का और नीयत का भी सवाल नहीं है। लेकिन जो हो रहा है, वह तथ्य यह है कि उससे वह शोषण का यंत्र जो है, वह ज्यादा लुब्रीकेट, पा रहा है। और वह थोड़ा चलने में ज्यादा सक्षम हो जाएगा। मेरी दृष्टि में व्यक्ति, एक-एक व्यक्ति के हृदय परिवर्तन के द्वारा समाज की यांत्रिक व्यवस्था नहीं बदली जा सकती। एक-एक व्यक्ति के हृदय परिवर्तन के द्वारा, एक-एक व्यक्ति बदला जा सकता है, लेकिन समाज नहीं। और एक-एक व्यक्ति को बदलने के लिए बैठने का जो उपाय है, वो इतना लंबा है, और इतना अनंत है, कि उससे समाज की व्यवस्था कभी बदलेगी नहीं। समाज की व्यवस्था बदलनी हो तो समाज के चित्त का पूरा परिवेश क्रांति के लिए तैयार किया जाना

जरूरी है। और वह परिवेश क्रांति के लिए तैयार हो, उसके लिए, उसके लिए समाज के सारे स्थापित मूल्यों का खंडन, समाज की सारी प्रतिगामी व्यवस्थाओं का खंडन, समाज को पीछे की तरफ बांधने वाले सारे के सारे सूत्रों का खंडन, और समाज को आगे ले जाने वाले, समाज को विचारशील बनाने वाले, समाज को क्रांति- उन्मुखता देने वाले, सारे तत्वों की चर्चा की जानी जरूरी है। मेरी दृष्टि में, इस समय देश को क्रांति की उतनी जरूरत नहीं है, जितनी क्रांति के परिवेश की जरूरत है। क्रांति तो परिवेश से पैदा हो जाती है। वह जो फ्रांस में क्रांति हुई, वो उन लोगों ने पैदा की जो लोग किताब लिखते रहे और बातें करते रहे। वह जो रूस में क्रांति हुई, वह क्रांति उन लोगों ने की, जो ब्रिटिश म्यूजियम में बैठ कर किताबें लिखते रहे।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जरूर, इसकी संभावनाएं हैं। मैं उसकी बात करता हूं। इस बात की संभावनाएं हैं कि क्रांति खतरे में ले जाए। लेकिन इसकी संभावनाएं अब उतनी नहीं है जितनी फ्रांस की क्रांति में थी, और रूस की क्रांति में थी। क्योंकि हम आज तीन-चार क्रांतियों की असफलता देखने के बाद क्रांति में जाएंगे। तीन-चार क्रांतियां बुरी तरह असफल हुई हैं और हम जो अब क्रांति में गुजरेंगे, उन तीन-चार क्रांतियों की असफलताओं को ध्यान में रखा जा सकता है। लेकिन हिंदुस्तान के जो क्रांतिवादी हैं, कंयुनिस्ट हैं, या उस तरह के लोग हैं, वह लोग भी अत्यंत प्रतिक्रियावादी हैं, क्रांतिवादी नहीं हैं। वे भी क्रांति को ऐसे पकड़े हुए हैं, जैसे कि धार्मिक आदमी गीता को पकड़ता है। वह भी कैपिटल को इस तरह से पकड़े हुए हैं, जैसे कोई कुरान को पकड़ता है। उनके लिए भी दुनिया का विचार मार्क्स के बाद आगे नहीं गया, वहीं ठहर गया है। वह वहीं रूका हुआ है। हिंदुस्तान के खतरे दोहरे हैं। हिंदुस्तान में प्रतिगामी विचारक हैं, जो पीछे की तरफ ले जाने की बात करते हैं। हिंदुस्तान में क्रांतिवादी विचारक हैं जिनकी क्रांति भी आउट ऑफ डेट हो चुकी है। उनसे खतरा है। और इसलिए हिंदुस्तान में ठीक-ठीक क्रांतिकारी चिंतन पैदा करने की जरूरत है। उस चिंतन में क्रांतिवादी भी नाराज होगा। क्योंकि वह क्रांतिवादी भी क्रांतिवादी नहीं है। किसी का उन्नीस सौ सत्रह में रूक गया है मामला, किसी का मार्क्स के साथ रूक गया है, किसी का माओ के साथ रूक गया है। क्रांतिवादी होने का अर्थ है, जो किसी के साथ रूका नहीं है। जो आज के समय को आज की जरूरत को आज की परिस्थिति को देख कर क्रांति कैसे हो उसका विचार करता है। और क्रांतिवादी की अदभुत स्थिति है। क्रांतिवादी खुद भी चौबीस घंटे क्रांति में है, वो जो आज कहता है हो सकता है कल न कहे। जो कल कहता है वो परसो न कहे। क्रांतिवादी खुद भी चौबीस घंटे क्रांति में हैं। और जैसे ही क्रांतिवादी रूकता है, वो प्रतिवादी प्रतिगामी से भी ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

प्रश्नः आपने खंडन तो किया, बुद्ध का किया, महात्मा जी का किया, विनोबा जी का किया, मगर आपके जो विधायक रूप हैं, वह तो अभी आपने नहीं बताए?

क्योंकि मेरा मानना है कि वायलेंट रेगुलेशन हो ही नहीं सकती। वायलेंट हुई कि वह रेगुलेशन नहीं रह जाएगी। और वायलेंट होने का मलतब ही यह है, कि बहुत थोड़े से लोग राजी है, ज्यादा लोग राजी नहीं हैं। तभी किसी रेगुलेशन को वायलेंट होना पड़ता है। वायलेंट होने का मतलब है कि मायनोरिटी लाने की कोशिश कर रहे हैं, मेजोरिटी राजी नहीं है। और मेरा कहना है कि मायनोरिटी सत्य को भी लाने की कोशिश कर रही हो, और मेजोरिटी राजी न हो तो उसके सत्य का भी कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि जिस सत्य के लिए हम अधिकतम लोगों को राजी नहीं कर सकते, उस सत्य को जबरजस्ती थोपने के हम हकदार नहीं हैं। हिंसात्मक क्रांति का मतलब इतना है कि थोड़े से लोग कब्जा करके जबरजस्ती क्रांति ला दें, मैं उस पक्ष में नहीं हूं, क्रांति तो अनिवार्य रूप से अहिंसक होगी। और इसलिए क्रांति अनिवार्य रूप से वैचारिक होगी। विचार पहले पहुंच

जाएंगे, लोकमानस बदलेगा, लोक चित्त बदलेगा, और लोक चित्त की बदलाहट से आएगी।
इसलिए मैं क्रांति को अनिवार्य रूप से लोकतांत्रिक मानता हूं। जो भी क्रांति लोकतांत्रिक नहीं है, वो क्रांति महंगी सिद्ध होगी, क्योंकि जिन लोगों के हाथ में जाएगी वो खतरनाक लोग हैं। और उनका कोई भरोसा नहीं है कि वे सत्ता के पहले कैसे थे और सत्ता के बाद कैसे हो जाएंगे? यानि मैं किसी क्रांति... । क्रांति का मतलब ठीक से अगर हम समझें तो अब तक की जो क्रांतियां असफल हुई हैं, उनके असफल होने का एक कारण हिंसा भी थी। क्योंकि जैसे ही कोई आदमी हिंसा करने को राजी हो जाता है, वह आदमी क्रांतिवादी नहीं रहा। क्योंकि उसने दूसरे की स्वतंत्रता को, दूसरे के विचार को, अंगीकार करना बंद कर दिया, उसने दूसरे की महिमा की स्वीकृति बंद कर दी, वो दूसरे के दुश्मन की तरह खड़ा हो गया। जैसे ही मैं यह कहता हूं, जैसे ही मैं यह कहता हूं कि मैं छुरा मार दूंगा, अगर मेरी बात नहीं मानते, तो वैसे ही मेरी बात की जान निकल चुकी है। उसमें कोई क्रांति नहीं रही। वह मेरी बात बेकार हो चुकी है, मर चुकी है। मेरे पास दलील भी नहीं है। मेरे पास खड़े रहने का और कोई उपाय नहीं रह गया। तब मैं छुरा उठाता हूं। क्रान्ति जब भी छुरा उठाती है, समझ लेना चाहिए कि क्रांति होने के पहले ही असफल हो चुकी है। मैं नहीं मानता हूं कि क्रांति... , वह जो मिस अंडरस्टेंडिग पैदा हो गई है मेरे बाबत, वो इसीलिए हो गई मैंने कहा यह कि अगर अिंहंसा से क्रांति न आती दिखाई पड़ती हो, और अगर अहिंसा भी क्रांति को रोकने का माध्यम बन गई हो; और अगर ऐसा लगता हो कि अहिंसा भी ढाल बन गई है, क्रांति को रोकने के लिए, तो हिम्मत करनी चाहिए हिंसा करने की भी। इसका मतलब यह नहीं कि मैं कहता हूं कि हिंसा करनी चाहिए। इसका कुल मतलब यह है कि मैं यह कहता हूं कि जिसको हम अहिंसा कह रहे हैं वह अहिंसा भी नपुंसक होगी, इसलिए ढाल बन रही है क्रांति की। अन्यथा क्रांति को रोकने के लिए बाधा नहीं बन सकती अहिंसा। अहिंसा क्रांति को लाने के लिए तीव्रतम गति बन सकती है।
यह जो आप पूछते हैं कि कैसे वो क्रांति होगी? कैसे वो आर्थिक समानता होगी? मेरी दृष्टि में विचार की क्रांति पहला पॉजिटिव मामला है। पहला पाजिटिव चरण, पहला विधायक चरण है विचार की क्रांति। लोगों के चित्त से वह-वह मुद्दे तोड़ देने हैं, जिनसे क्रांति रूकती है, और वह-वह मुद्दे लोगों के चित्त तक पहुंचाने हैं, जिनसे क्रांति विकसित होती है। तो पहला विधायक कदम है, एक इनवायरमेंट, एक परिवेश विचार करने वाले लोगों का खड़ा करना। उतना ही काम हो जाए, तो शेष काम उसके पीछे आना शुरू होगा। लोकतांत्रिक ढंग से ही, अगर लोग तैयार हो जाते हैं, तो कोई भी एक क्रांति इस मुल्क में की जा सकती है। कोई भी क्रांति इस मुल्क में की जा सकती है।

प्रश्नः इस दृष्टिकोण से आपने जो कहा कि लोकतांत्रिक ढंग से होना चाहिए, तो जो आधुनिक जो लोकशाही भारत में है, तो इसमें, जो भी बेसिक वैल्यूज हैं, फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन, आप जैसे बात करते हैं, लोकशाही के लिए, इससे तो ऐसा हो जाएगा, कि ये सब बेसिक वेल्यू में से भी लोगों का विश्वास उठ जाएगा... ?

बेसिक वैल्यूज के विरोध में तो मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, क्योंकि, क्योंकि मूर्तिभंजन जो है, मूर्तिभंजन जो है वह बेसिक वैल्यूज को नहीं तोड़ता है, बल्कि उनको मजबूत करता है। क्योंकि बेसिक वेल्यूज क्या हैं? आप कहते हैं विचार की स्वतंत्रता। विचार की स्वतंत्रता, विचार की स्वतंत्रता मूर्तिभंजन से नहीं टूटती, बढ़ती है। बल्कि जिस मुल्क में मूर्तिभंजक नहीं होंगे, उस मुल्क में विचार स्वतंत्रता का कोई अर्थ ही नहीं होता है।

और दूसरी बात आप कहते हैं कि यह जो आप कहते हैं, कि पॉजिटिव, यह पॉजि.टिव का हमारा जो मोह है, अगर हम बहुत गौर करें, तो हमारा वह जो क्रांति-विरोधी चित्त है, उसका मोह है। हमेशा हम चाहते हैं कि क्या करना है उसे बताइए ठीक से। क्योंकि हम चाहते हैं जल्दी से कि कुछ करने वाली बात पकड़ी जा सके। और मेरा कहना यह कि करने वाली बातें हम बहुत पकड़े हुए हैं, न करने वाली बात एक बार इस मुल्क के चित्त से तीव्र तूफान की तरह गुजरनी जरूरी है। उससे बड़ा कोई पॉजिटिव एफर्ट नहीं हो सकता। और एक बार हजारों साल का वह जो जला हुआ चित्त है, वह एक दफा उघड़ जाए, अपरूटेड हो जाए, जरूर डर है। डर है कि अपरूटेड चित्त, कहीं हमें और गड्ढों में न पटक दे। लेकिन मेरा कहना यह है कि पुराने गड्ढे में पड़े रहने की बजाए, नये गड्ढे को चुन लेना हमेशा श्रेयस्कर है, कई कारणों से। क्योंकि जो आदमी हजारों साल के गड्ढे से निकलने की हिम्मत जुटा लेता है, वह नए गड्ढे से निकलने में उसको क्षण भर नहीं लगेगा। लेकिन जो गड्ढे से निकलने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाता जो समाज, इस डर से कि कहीं भूल न हो जाए, इस डर से कि कहीं अराजकता न हो जाए, इस डर से कि कहीं बेसिक वेल्यूज न खो जाएं, इस भय से जो क्रिपिल्ड हो जाता है, माइंड, वो समाज फिर कोई भी गति नहीं कर पाता। मेरे मन में तो इस वक्त एक अपरूटेडनेस चाहिए मुल्क को, उसके सारे चिंतन की जहां-जहां जड़ें हैं, वहां से खींच लेनी हैं, ताकि वो नई जड़ें खोजें, नई भूमि खोजे और नया आकाश खोज सके।

प्रश्नः ओशो, लैट अस कम आउट ऑफ पॉलिटिक्स, और मनु भाई ने आपके बारे में जो, आरोप लगाया है, इसके बारे में आप कुछ... ?

वह भी, पॉलिटिक्स ही है, बाहर कैसे आइएगा? वह बाहर आना नहीं है और गहरी पॉलिटिक्स में चले जाना है। वह आखिरी पॉलिटिशियन का आखिरी उपाय है। अगर मेरी बातें गलत हैं, तो मेरी बातों को गलत कहना चाहिए। मैं जो कहता हूं, वह ठीक नहीं है, तो लड़ना चाहिए कि वह ठीक नहीं हैं। लेकिन जब यह क्षमता न रह जाए, और सीधी लड़ाई न हो सके, तो फिर पीठ में पीछे से छुरा मारने के उपाय करने चाहिएं। फिर इस मुल्क में सबसे बड़ा जो उपाय है, वह यह है कि किसी के चरित्र पर कुछ लांछन लगाने की कोशिश करनी चाहिए। इस मुल्क के साधु-संयासी इतने कमजोर हैं कि चरित्र की बात कही कि वह गए। उससे ज्यादा उनका कोई मुद्दा भी नहीं है। अगर यह बता दिया गया कि फलां आदमी, फलां साधु एक स्त्री के साथ, अकेले में बैठा देखा गया तो, मामला खत्म हो गया। इस मुल्क का साधु इतना कमजोर है कि वह सिर्फ चरित्र पर खड़ा है। और इस मुल्क के सारे लोग, यह जानते हैं कि चरित्र की दीवाल नीचे से खींच लो कि आदमी गया। स्वभावतः मेरे बाबत भी वह ऐसा ही सोचते हैं। लेकिन पहली भूल तो वह यह कर जाते हैं कि मैं कोई साधु नहीं हूं। पहली भूल वह यह कर जाते हैं कि मेरा चरित्रवान होने का कोई दावा नहीं है, इसलिए तुम खींच नहीं सकोगे कुछ। यानि मैं दावा करूं चरित्रवान होने का, अगर मैं चरित्रवान होने का दावा करूं, तो मेरे चरित्र को खींचा जा सकता है। और खींचके मुझे गिराया जा सकता है। वह मेरा दावा नहीं है। वह मेरा दावा नहीं है। फिर दूसरी बात यह है, कि मैं जिंदगी के सारे मसलों में क्रांति का पक्षपाती हूं। मैं स्त्री-पुरूष के संबंधों में भी क्रांति का पक्षपाती हूं। मैं इस बात का भी पक्षपाती हूं कि स्त्री-पुरूष के बीच जो दीवालों की बहुत लंबी परंपरा है वह टूटनी चाहिए। स्त्री और पुरूष के बीच ज्यादा स्वस्थ और मानवीय संबंध होना चाहिए। आज इस मुल्क में तो यह भी हालत नहीं है, आप एक स्त्री के पति हो सकते हैं, बेटे हो सकते हैं, भाई हो सकते हैं, लेकिन इस मुल्क में किसी स्त्री के मित्र नहीं हो सकते।
एक स्त्री मेरे साथ यात्रा की। और उसने मुझसे पूछा, जिस घर में हम ठहरेंगे, वो लोग मुझसे जरूर पूछेंगे कि मैं आपकी कौन हूं? तो मैंने कहा, तू अगर मेरी कोई हो तो ही बताना और नहीं तो मत बताना। तो उसने मुझसे कहा कि अच्छा हो कि मैं आपको राखी बांध कर बहन बन जाऊं। मैंने कहा, उस पाप के लिए मैं राजी नहीं होउंगा। क्योंकि राखी बांध कर तू सिर्फ इसलिए बहन बन रही है

कि तू बता सके कि मैं बहन हूं। तू सिर्फ हिम्मत जुटाने के लिए। उसके लिए मैं राजी नहीं होउंगा। तुझे राखी बांधनी हो तो उसकी फिक्र नहीं। लेकिन तू बहन नहीं है, और बिन बहन हुए मेरे साथ यात्रा कर सकती है, इसलिए मैं राजी हूं। और जिस घर में हम ठहरेंगे, वो जरूर पूछेंगे, पहली बात वो यही पूछेंगे कि ये महिला कौन है? तो मैंने कहा कि तू अगर कोई हो तो बता देना, और न हो तो तू बता देना कि मैं कोई भी नहीं हूं। और अगर तू मेरी मित्र है तो कह देना कि मित्र हूं। और अगर समझे कि मित्र भी नहीं हूं, तो तुझे जो ठीक लगे तू कह देना। क्योंकि जो ठीक हो, वही कहना।
वह स्त्री मेरे साथ उस घर में गई। वही हुआ, पहली बात ही घर के वृद्धजन
ने पूछा, यह कौन है? मैंने कहा, यह भी रास्ते में यह ही विचार करती आई है कि यह कौन है? आप इससे पूछ लें, आप इससे पूछ लें। जहां तक मैं समझता हूं मेरा मित्र से ज्यादा किसी से कोई नाता नहीं है। न मेरा किसी से शिष्य का नाता है, न मेरा किसी से गुरू का नाता है, न मेरा किसी से अनुयाई का नाता है, मेरा सिर्फ मित्र का नाता है।
उस लड़की ने कहा कि मैं कैसे कहूं? लेकिन बस मैं मित्र हूं। वे बहुत चौंके, बहुत परेशान हो गए। अगर वह मेरी बहन होती, तो मेरे कमरे में ठहराई जा सकती थी। मेरी मां होती तो ठहराई जा सकती थी। वह मुझसे पूछने लगे कि क्या इसे आपके कमरे में ठहरने दिया जाए? मैंने कहा, आपको क्या अड़चन है? उन्होंने कहा कि नहीं, वह आपकी बहन होती तो कोई बात नहीं थी। हमारा जो चित्त है, मैं तो इस सारे चित्त के विपरीत हूं। यह ही घटना दिल्ली में फिर घट गई। मनु भाई के साथ भी वहीं घटना घट गई। उन बेचारों का कोई कसूर नहीं है। जैसा हमारा मुल्क सोचता है, वैसा वो सोचते हैं।
एक बहन आई हुई थी दिल्ली। और उसने मुझे चाहा था कि तीन दिन मैं आपके पास ही रूकूंगी, ताकि मैं पूरे वक्त साथ रह सकूं। पूरी बात सुन सकूं। कुछ मुझे बात करनी है, वह भी मैं कर सकूं। और साथ रहने का सुख भी ले सकूं। मैंने उससे कहा कि मजे से तुम आ कर रह सकती हो, मुझे कोई तकलीफ नहीं है। वह आ कर रूक गई। एक दिन कोई बात न हुई। लोगों ने कहा कि पॉलिटिक्स है। एक दिन कोई बात न हुई, एक दिन मेरे साथ थी। और मुझसे तो कोई बहन गले भी आ कर मिल जाती है तो मैं कोई एतराज नहीं करता हूं। क्योंकि मैं मानता हूं कि एतराज करने वाला आदमी, किसी न किसी तरह कामुक चित्त का है। अगर किसी को मुझसे गले मिलना है, तो मुझे एतराज नहीं। मैं अपनी तरफ से किसी से गले मिलने नहीं जाता हूं। मुझे फुर्सत भी नहीं है, और मैं कोई अर्थ भी नहीं पाता हूं कि किसी से गले मिलने का कोई अर्थ है। कि हड्डी से हड्डी लगाने से कुछ भी किसी तरह का रस है या आनंद है, मुझे नहीं मालूम पड़ता। तो मैं तो नहीं जाता हूं। लेकिन कोई आ जाए तो उसको मैं इंकार भी नहीं करता हूं। सुख लेना चाहे तो वह ले सकता है।
वह महिला जैसे ही स्टेशन पे आई, मुझसे गले मिल गई। गले मिलते ही तकलीफ शुरू हो गई होगी। फिर वह मेरे साथ रूकी। एक दिन बीत गया, दूसरे दिन वह प्रेस कांफ्रेंस हुई, जिसका आप पूछते हैं, जो कि छपी नहीं। जो कि, जो इंटरव्यू लिया था वह छपा नहीं। वह हुआ, उसको मनु भाई ने उनके मित्रों ने सुना, उस प्रेस कांफ्रेंस से घबड़ाहट शुरू हो गई। और शाम को जब मैं मीटिंग से बोल के लौटा तो, देखा कि उस स्त्री का सामान लिये, वो बाहर खड़ी रो रही है। मैंने पूछा, क्या हुआ? उसने कहा कि मैं जा रही हूं सिर्फ आपके पैर छूने के लिए रुकी हूं कि मैं आपसे विदा ले लूं। उन्होंने मुझे बाहर किया है, और कहा है कि उस कमरे में आप नहीं रुक सकती। मैंने कहा कि मेरे साथ कोई आया हो, और मुझसे बिना पूछे कमरे के बाहर कर दिया जाए, यह हद, हद अपमानजनक बात है। मैंने उनसे कहा, मुझे कहना चाहिए था। अगर इस स्त्री को इस कमरे में नहीं भी ठहरने देना है, तो मुझे कहना चाहिए, वह मेरे साथ आई है। आपको उसे नहीं निकालना था। उन्होंने कहा कि नहीं, हमने बात बढ़ानी नहीं चाही, हमने सोचा कि इसको अलग कर दें, दूसरे कमरे में ठहरा दें। मैंने कहा कि वह अब दूसरे कमरे में नहीं ठहर सकेगी। आप मुझसे कहते तो शायद, ठहरने का कोई उपाय भी हो सकता था। लेकिन अब उसको दूसरे कमरे में नहीं ठहराया जा सकता। वह इसी कमरे में ठहरेगी। और उस स्त्री ने भी कहा कि अब मैं किसी हालत में इस कमरे को

नहीं छोड़ सकती। मैंने इन लोगों से कहा कि अब उचित यह ही है कि आपको भय लगता है कि पता नहीं रात में वह स्त्री से मेरे क्या संबंध होंगे, तो आप भी यहीं आके सो जाएं। वह जाती नहीं, मैं कहता हूं, उसे जाने देना नहीं है, अब यह ही एक रास्ता है कि आप भी इसी कमरे में आ जाएं। इसके लिए राजी नहीं हुए कि हम कोई पहरेदार तो हैं नहीं। मैंने कहा आप समझते नहीं, लेकिन अच्छा यह ही होगा, यह उचित होगा कि आप भी यहां आ जाएं। बात यहां तक बढ़ गई कि वह जि.द करने लगे कि हमारी संस्था में अब यह स्त्री इस कमरे में नहीं ठहर सकती। हमारी संस्था का नियम है। तो मैंने कहा कि फिर एक ही उपाय है कि मैं यहां से चला जाऊं। क्योंकि मैं ऐसी संस्था में नहीं ठहर सकता हूं, जो इतनी अभद्रता की बातें करती हो। तो मैं वह संस्था छोड़ कर चला गया। उनसे मैंने कहा कि कल मैं पब्लिकली मीटिंग में इसकी बात कर लूंगा। क्योंकि यह बात तो पीछे उठेगी, तो अभी मैं भी मौजूद हूं, आप भी मौजूद हैं, लोग भी मौजूद हैं, वह बहन भी मौजूद है। यह सारी बात हो जाए तो अच्छा, तो मुझसे कहा कि नहीं, आप इसकी बात मत उठाइए, इसमें कोई सार नहीं है। इसमें कोई मतलब नहीं है, हो गया, जो हो गया। दूसरे दिन सब्जेक्ट रखा हुआ था सैक्स एंड लाइफ। वो सब्जैक्ट भी बदल दिया, उस दिन जब मैं आया, तो मुझसे कहा कि वो सब्जैक्ट भी बदल दिया। आप तो धर्म पर ही बोलिए। उन्होंने वह सब्जेक्ट भी बदल दिया। उन्होंने कहा कि वह सब्जेक्ट भी नहीं रखना है, शायद उन्हें भय हुआ कि उस सब्जेक्ट के अंतर्गत मैं बात न कर लूं। मुझे कोई रस नहीं था बात करने में कि पब्लिकली कोई बात की जाए। कहा था मैंने सिर्फ इसलिए कि उनको बात करनी पड़ेगी आगे-पीछे। वह भूल नहीं सकेंगे। इसलिए बात कर लेनी उचित है, उन्होंने कहा कि नहीं, कोई बात करने का मतलब ही नहीं। कोई अर्थ ही नहीं। बात खत्म हो गई। मैंने कहा, बात खत्म हो गई, ठीक है। वह खत्म नहीं हुई। दो महीने बात उन्होंने आके यहां वक्तव्य दिया। वह दो महीने बाद। दो महीने बाद यहां आ कर वक्तव्य दिया कि यह सारा मामला हुआ।
अब यह बड़े मजे की बात है, कि जिस बात को मैं वहीं कर लेना चाहता था, सबके सामने, उसको दो महीने बाद... । तो इसलिए मैं कहता हूं कि पॉलिटिक्स ही होगी। वह मामला पॉलिटिक्स का ही होगा। लेकिन मेरी जहां तक समझ है, मनु भाई का उसमें कोई कसूर नहीं है, उनकी कोई बुरी नियत भी नहीं है। जो हमारा सामान्य भारतीय मानस है, उस भारतीय मानस का उनके पास भी मानस है। उनको कठिनाई मालूम हुई होगी, वह कठिनाई उनको पीड़ा दी होगी, परेशानी हुई होगी। फिर मुझसे पूछने आए थे, वह पूछने से और परेशान हो गए। क्योंकि मुझसे उन्होंने पूछा कि अगर कोई स्त्री आपका आलिंगन करे तो? मैंने कहा, मुझे कोई तकलीफ नहीं। तो आप इसमें ऐतराज नहीं करते? मैंने कहा, मैं कोई ऐतराज नहीं करता हूं। कोई आपको चूम ले तो? मैंने कहा कि चूम ले। हाथ-मुंह धोना पड़ेगा क्योंकि थोड़े से कीटाणु लग जाते हैं, और तो कुछ होता नहीं। तो उन्होंने कहा, आप आलिंगन को और चुंबन को सैक्सुअल नहीं मानते हैं? मैंने कहा, वह हो भी सकता है, करने वाले पर निर्भर है। नहीं भी हो सकता, एक मां अपने बेटे को चूम सकती है, एक मित्र अपने मित्र को चूम सकता है। वह सेक्सुअल हो भी सकता है, वह नहीं भी हो सकता। वह करने वाले पर निर्भर है। और मैंने कहा, करने वाले ही जान सकते हैं। आप अलग खड़े होकर बिल्कुल नहीं जान पाएंगे कि वह क्या है? बहुत मुश्किल है। यह सारी बातें उन्होंने, सारी बातें उस वक्तव्य में जोड़ दीं कि मैं इसको, आलिंगन को और इसको कामुक नहीं मानता हूं।
यह सब होगा, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। लेकिन गलती उनकी सिर्फ एक है, वह अगर मुझसे ही कह देते तो मैं एक वक्तव्य दे देता। वह मुझसे कहते तो फोटो निकलवा लेने देता उनको, ताकि उनके पास प्रमाण होता और ठीक से बात होती। वह मुझसे कहते तो मैं कह देता कि मैं लिख कर दे देता हूं कि मैं चरित्रवान नहीं हूं। इसमें कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि मेरा ख्याल ही यह है कि चरित्र की चिंता सिवाय चरित्रहीनों को और कोई भी नहीं करता। सिवाये चरित्रहीनों के चरित्र की कोई चिंता नहीं करता है। चरित्र हो तो चरित्र की चिंता का सवाल ही नहीं है। वह विचारणीय भी नहीं है, वो बात खत्म हो गई। और चरित्र न हो तो ही उसकी बहुत चिंता होती है। मुझे कोई चिंता नहीं है। और फिर मेरा कहना यह है, जो मैं कह रहा हूं, उसका कोई

मेरे चरित्र से बांधके जोड़ने का संबंध भी नहीं है। अगर यह भी स्वीकार हो जाए कि मैं चरित्रहीन हूं, तब भी मैं जो कह रहा हूं वह अलग अर्थों में खड़ा रहता है। उस पर सीधी बात होनी चाहिए, इस मामले को तय ही कर लेना चाहिए अगर, यह भी तय होता हो कि यह आदमी चरित्रहीन है, तो इसको एक बार तय कर लेना चाहिए कि यह आदमी चरित्रहीन है। अब रह गई बात सीधी कि वह जो मैं कर रहा हूं चरित्रहीन आदमी भी, कोई ठीक बात कह सकता है कि नहीं कह सकता कि चरित्रवान जो कहता है, वह सभी ठीक होता है, या कि चरित्रहीनता और चरित्रवान होने से जीवन के रूपांतरण की सारी प्रक्रिया के लिए कुछ भी नहीं, कहा जा सकता या कहा हो सकता है। वह अलग ही बात है, इसलिए उसमें बहुत जद्दोजहद करने की जरूरत नहीं है। उनका उसमें कोई बहुत परेशान होने की जरूरत नहीं है। और मैं तो ऐसे ही जिया चला जाऊंगा। ऐसे ही जिये चला जाऊंगा, क्योंकि मेरा मानना यह है कि जिंदगी सहज और साफ सुथरी होनी चाहिए। और सहज ही जिंदगी साफ-सुथरी होती है। मुझे भी मैंने मनु भाई को कहा भी, वहां मित्रों को भी कहा कि जो आपको दिखाई पड़ता है, वह मुझको भी दिखाई पड़ता है। इस बहन ने जिस दिन मुझे आकर कहा कि मैं आपके पास ही रूकूंगी, मैं जानता था कि आस-पास किस तरह के लोग हैं, अगर थोड़ी भी चालाकी मेरे मन में हो, तो इसको मैं कहूंगा कि रूक तो तू दूसरे कमरे में, फिर मिलने-जुलने का दूसरा उपाय कर लेंगे। इतनी अकल मुझमें भी हो सकती है। आखिर कोई भी समझदार आदमी ऐसे ही करता है। यह मेरा जैसा काम है, वह बिल्कुल नासमझी का है। जैसे नासमझ आदमी दिक्कत में पड़ता है, और नासमझ आदमी दिक्कत में पड़ेगा, उसको दिक्कत के लिए तैयार होना चाहिए कि क्योंकि तुम नासमझी अपने हाथ से करोगे।
अब कोई स्त्री को अगर मुझे चूमना है तो उसको मुझे कहना चाहिए कि एकांत में, स्टेशन पर, भरे स्टेशन पर चूमना अच्छा मालूम पड़ता है? कि कैंप के बीच में आकर गले मिलना अच्छा मालूम पड़ता है। यह सब एकांत की बातें हैं, अच्छे लोग एकांत में, अकेले में, दरवाजा बंद करके करते हैं। यह खुलेआम करने की बातें नहीं, खुलेआम करोगे तो झंझट में पड़ोगे।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं आपको कहूं जिन मुल्कों में, जिन मुल्कों में काम की स्वतंत्रता है, उन मुल्कों में संतति-नियमन करना आसान है। जिन मुल्कों में काम की स्वतंत्रता नहीं है, उन मुल्कों में संतति नियमन करना आसान नहीं है। क्योंकि काम की स्वतंत्रता भी वैज्ञानिक बुद्धि से पैदा होती है, और संतति-नियमन भी वैज्ञानिक बुद्धि से पैदा होता है। वह दोनों एक ही बुद्धि के हिस्से हैं। हिंदुस्तान का, जितनी स्वतंत्रता होगी, सैक्सुअल फ्रीडम जितनी होगी, सैक्स उतना ही पवित्र होता चला जाता है। और जितनी फ्रीडम कम होगी, सैक्स उतना ही अपवित्र होता चला जाता है।
रूस में वेश्या समाप्त हो गई। अकेली जमीन पर एक मुल्क में वेश्या नहीं हैं। क्योंकि काम इतना उन्मुक्त हो गया कि अब वेश्या को बनाने की जरूरत नहीं है। जिन देशों में पतिव्रता स्त्रियां होंगी, उस मुल्कों में दूसरा हिस्सा वेश्या भी होगी। वो पतिव्रता हिस्सा का दूसरा हिस्सा है। वह जरूर रहेगी, क्योंकि इधर पतिव्रता स्त्री भी रखनी है, और दूसरी स्त्रियों से संबंध भी बनाना है। वह वेश्या मौजूद करनी पड़ेगी। जब तक पतिव्रता पर .जोर रहेगा, तब तक वेश्या पैदा होती रहेगी। वेश्या को जाने देना है तो पतिव्रता की मूढ़ता को भी जाने देना होगा, और स्वीकार करना होगा कि दो व्यक्तियों में प्रेम है, उसके अतिरिक्त और कोई पवित्र नहीं है। और जिस दिन प्रेम समाप्त हो गया, उसके बाद एक क्षण भी साथ होना अपराध है, और पाप है। लेकिन... और इतनी स्वतंत्रता देनी पड़ेगी, कि लोगों के शरीर संबंध भी सहजता को उपलब्ध हो जाएं। हिंदुस्तान में तो वो इतने असहज हो गए हैं, और उन असहज का परिणाम ये हुआ है कि आदमी को, एक स्त्री को प्रेम करना हो तो एसिड फेंकनी पड़ती है, एक लड़के वो किसी को प्रेम करना हो लड़की को तो पत्थर मारना पड़ता है। अजीब बात है कि प्रेम करने के लिए पत्थर मारना पड़े। प्रेम करने के लिए भीड़ में धक्का देना पड़े।

अस्पष्ट

वे तभी तक रखने होते हैं आपको, जब तक शादी बिना प्रेम के, किसी ज्योतिषी से मिलवाके कर ली गई हो। अगर शादी प्रेम से हुई हो, तो आपको दूसरे एक्स्ट्रा मैरिटल संबंध रखने की जरूरत नहीं के बराबर रह जाती है।

अस्पष्ट

मैं हूं, संभावना रह सकती है, इसलिए मैं कह रहा हूं संभावना कम रह जाती है। जिस स्त्री से आपका कोई प्रेम नहीं है, उस स्त्री से संबंधित होने के बाद संभावना आपकी ज्यादा रहती है कि दूसरी स्त्रियां आपको आकर्षित करें। और फिर मेरे कहना यह है कि जिस स्त्री के साथ प्रेम समाप्त हो जाने पर छोड़ देने की सुविधा है। उसमें आपको एक्ट्रा मेरिटल संबंध रखने की जरूरत नहीं है। आप एक स्त्री से मुक्त होकर दूसरी स्त्री से संबंधित हो सकते हैं। एक्स्ट्रा मेरिटल का उपाय हमें इसलिए खोजना दिखाई पड़ता है, कि जिससे बंध गए हैं, उसको तो छोड़ नहीं सकते, उससे तो बंधे ही रहना है, इसलिए एक्स्ट्रा मेरिटल की बात उठती है। जिस दिन दुनिया में, विवाह इतना सहज और सरल होगा, कि जिससे आपका प्रेम है, और जिसके पास आप रूकना आनंदपूर्ण समझते हैं, और तभी तक रूकना उचित है जब तक आनंदपूर्ण समझते हैं, उस दिन एक्स्ट्रा मेरिटल का क्या सवाल? आप मैरिज बदल देते हैं, आप पार्टनर बदल देते हैं।

प्रश्नः

बिल्कुल-बिल्कुल, वैस्ट में जो प्रॉब्लम है, वह क्रिएट होंगे, और जिंदा समाज प्रॉब्लम क्रियेट करता है। फिर उनको हल करने की कोशिश करता है। मुर्दा समाज प्रॉब्लम क्रियेट नहीं करता और मरा हुआ जिंदा रहता है। वैस्ट के पास प्रॉब्लम्स है। और मेरा मानना है कि सौ वर्षों में उन प्रॉब्लम्स से लड़के वे उनको हल भी करेंगे। हमारा दुर्भाग्य है, हमारे पास प्रॉब्लम्स भी नहीं हैं। हल क्या खाक करेंगे आप? आप तो मरे हुए लोग हैं, आपके पास तो प्रॉब्लम्स भी पैदा नहीं होते। वैस्ट के इन पचास वर्षों का अनुभव उनको सैक्स के संबंध में इतने गहरे विचारों पर ले गया है, जिसका कोई हिसाब नहीं है। आने वाले सौ वर्षां में वो जिंदगी की फैमिली की, परिवार की पूरी नई व्यवस्था कर लेंगे। और उस नई अवस्था में वे हमसे श्रेष्ठतर समाज सिद्ध होंगे। तकलीफ से गुजरना पड़ेगा।
बच्चे जब तक पति-पत्नी के साथ बंधे हैं, तब तक शायद, परिवार बहुत सुंदर नहीं हो सकता। अभी वे इस्राइल में प्रयोग कर रहे हैं। बच्चों को पाल रहे हैं, इकठ्ठे सामूहिक रूप से। और अदभुत परिणाम शुरू हुए हैं। जैसे ही बच्चों से मुक्त हुए पति-पत्नी, वैसे ही वो जो सैक्स की जबरजस्ती है बांधने की एक दूसरे को, वह समाप्त हो जाती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं समझा, मैं समझा, अमरीका में...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं समझा, यह वहां है, और रहेगा। उसका कारण है, उसका कारण है कि क्रिश्चयनिटी के, सैक्स का जितना सप्रेशन किया है, अमेरिका में और यूरोप में, उतना दुनिया के किसी धर्म ने सप्रेशन नहीं किया। क्रिश्चयनिटी सबसे ज्यादा सप्रेशिव रिली.जन है, सैक्स के मामले में। हिंदूधर्म उतना सप्रेशिव नहीं है। क्रिश्यचनिटी ने तो सैक्स को सिन ही मान लिया है। दो हजार वर्ष के सेक्स को सिन मानने का यह परिणाम हुआ है कि एकदम से सारी

चीजें टूट गई हैं, एक्सप्लोजन हो गया। और दूसरी एक्सट्रीम पर चले गए हैं। अमरीका में या यूरोप में, जो वैविचार, वेश्या और अनैतिक संबंधों की बाढ़ आई है, उस बाढ़ के लिए जिम्मेदार क्रिश्चयनिटी है। उस बाढ़ के लिए और कोई जिम्मेवार नहीं है। अगर हम यहां पच्चीस लोग बैठे हैं, और हमको अभी खाने के लिए कहा जाए, तो हम चुपचाप शांति से उठके खाना खाने चलेंगे। लेकिन आठ दिन हमको बैठ कर यहां उपवास करवा दिया जाए और फिर एकदम से हम दरवाजा तोड़ कर किचन में पहुंच जाएं, तो हम जो खाना जाएंगे वह खाना और ही ढंग का खाना होगा। लेकिन उसका जिम्मा आठ दिन के उपवास पर होगा, वह जो फास्टिंग और स्टारवेशन चला पीछे।
क्रिश्चयनिटी ने पश्चिम के चित्त को, माइंड को इतना दमन किया है कि उस दमन का विस्फोट हुआ है। और वह विस्फोट स्वभावतः अमरीका में सर्वाधिक हुआ है, क्योंकि अमरीका में विस्फोट होने की संभावना और स्वतंत्रता सर्वाधिक मिली है। लेकिन वह विस्फोट खत्म हो जाएगा। वह विस्फोट धीरे-धीरे खत्म हो रहा है। वो क्षीण हो रहा है। आज से दस साल पहले और दस साल की हालतों में फर्क पड़ने शुरू हुए हैं। आने वाले बीस सालों में इसकी आशा की जा सकती है, कि अमरीका में विस्फोट की जो धारा है, वो धीमी हो जाएगी। और अमरीका इस अनुभव से गुजर कर शायद परिवार की ज्यादा योग्य व्यवस्था खोज सकेगा। मेरा मानना यह है कि हमने परिवार की व्यवस्था पर तीन हजार सालों से चिंतन ही नहीं किया है। मनु महाराज जैसा परिवार छोड़ गए थे, वैसा ही परिवार हमारा आज भी है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अनसक्सेसफुल हो सकती है कोई ची.जें, हमारी कठिनाई क्या है, अनसक्सेस होती है तो हमें समझना चाहिए कि क्यों अनसक्सेसफुल हुई। हम कोई सक्सेसफुल हो गए हैं तीन हजार वर्ष में, इसको पहले सोच लेना चाहिए। सारी दुनिया में सब अनसक्सेसफुल हो गए हैं। और इस बात को सोच कर हम सोचते हैं कि हम सक्सेसफुल हो गए हैं। आप क्या सक्सेसफुल हो गए हैं? आपने कौन सा परिवार पैदा कर लिया है? कौन सा समाज पैदा कर लिया? आपने कौन सी प्रतिभा पैदा कर ली देश में? आपने कौन सी संस्कृति पैदा कर ली? लेकिन हम एक मजा लेते रहते हैं कि कहां कौन-कौन असफल हो रहा है। उससे हम सोचते हैं कि बस सब ठीक है, कुछ प्रयोग करने की जरूरत नहीं। हम ही ठीक हैं। कम से कम हम असफल तो नहीं होते। क्योंकि जो चलेगा, वह गिर सकता है, हम बैठे रहते हैं, हम चलते ही नहीं।
लेकिन मेरा कहना यह है कि दुनिया की असफलता को समझिये और ये भी समझिये, कि वह क्यों असफल हुआ है। और अपनी असफलता भी समझिए कि जमीन पर आप किस बुरी तरह असफल हो रहे हैं। और उस असफलता के कारण समझिए। और हिम्मत जुटाइए कि हम कुछ प्रयोग करें, प्रयोग में खतरा है। लेकिन खतरा उठाने की जिम्मेवारी होनी चाहिए।

प्रश्नः आपके विचार से भारत की वर्तमान लोकतंत्र प्रणाली का परिवर्तन लाना चाहिए? और विश्व में ऐसा कौन सा सबसे अच्छा देश है कि जहां अच्छी तरह से लोग... ?

नहीं इस भांति नहीं पूछा जा सकता, जिंदगी बहुत जटिल है, जिंदगी बहुत जटिल है।

प्रश्नः कौन सा परिवर्तन आप चाहते हैं प्रणाली में?

प्रश्नः आपका जो ज्ञान है वह है कि नहीं?

समझा, यह ही मजा है, यह ही मजा है। इनफॉरमेशन हमेशा बॉरोड होगी। इंफॉरमेशन हमेशा बॉरोड होगी, इनफॉरमेशन ज्ञान नहीं है। आप समझ रहे हैं

मेरा मतलब। इनफॉरमेशन और नॉलिज में कुछ फर्क मानते हैं? इनफॉरमेशन ज्ञान नहीं है। इंफॉरमेशन हमेशा बॉरोड होगी। और इनफॉरमेशन बॉरोड लेनी पड़ेगी। ताकि आप उस इनफॉरमेशन पर सोच सकें। और उस सोचने से जो पैदा होगा वह ज्ञान होगा। इनफॉरमेशन हमेशा बॉरोड होगी। मेरा मतलब समझ रहे हैं न आप। अगर मैंने आपको कह दिया कि रूस में ऐसा हो रहा है, तो वह इनफॉरमेशन है। हम उसपे सोच सकें, विचार कर सकें, चिंतन कर सकें तो जो पैदा होगा, वह ज्ञान होगा। वह कभी बॉरोड नहीं होगा। लेनिन से ज्ञान मत लेना, लेलिन से इनफॉरमेशन बराबर ले लो। मेरा आप मतलब समझे?

प्रश्नः बजट के बारे में कुछ कहिए?

नहीं, वह मोरार जी से पूछिए।

नये भारत का जन्म
चौथा प्रवचन

किनारों से जंजीर भी छूट जाना जरूरी है

और कुछ लड़के एक मौजूदा आलम में इकट्ठे हुए। आधी रात गए तक उन्होंने शराब पी, फिर बाहर गए, चांद को देख कर मन में खयाल आया कि चलें नदी तक, नौका विहार करें। वे नदी पर गए, मछुए अपनी नावें बांध कर घर जा चुके थे। उन्होंने देखा एक बड़ी नाव थी, पतवारें खोली, नाव को खेना शुरू किया, नशे में धुत थे, चांदनी रात थी, मौज में थे, गीत गाने लगे। पतवार चलाने लगे। जोर से उन्होंने पतवार चलाईं, नाव खेई। पता नहीं कितनी देर तक नाव खेते रहे, कितनी दूर तक। जब सुबह की हवाएं बहने लगीं, और नशा कुछ उतरा तो खयाल आया। न मालूम कितनी दूर निकल आए वह। अब वापस लौट चलना चाहिए।
कहा किसी एक ने कि नाव को देख लो, कि वह किस दिशा में चले आए हैं। क्योंकि नशे में थे हम, हवाओं की दिशा का कोई हिसाब नहीं, कोई ठिकाना नहीं। हम पूरब आए कि पश्चिम, हम अपने गांव से कितनी दूर हैं, कुछ पता नहीं। एक मित्र नाव से उतरा और जमीन पे खड़ा होकर हंसने लगा, दूसरे मित्रों ने पूछा हंस रहे हो क्या हुआ? तो उसने कहाः तुम भी उतरो। और वे सब एक-एक करके उतरे और वह किनारा हंसी से गूंजने लगा। क्या हो गया था? पास-पड़ोस से लोग भी जाग कर भीड़ लगा ली। पूछने लगे, क्या हो गया? पागल हो गए हो। पागल होने जैसी बात हो गई थी। नाव वहीं खड़ी थी जहां रात उन्होंने उसे पाया था। असल में नावों की जंजीर किनारों से छोड़ना वे भूल गए थे। नाव किनारे से बंधी हुई थी। पतवार को चलाने से नाव नहीं चलती है। किनारों से जंजीर भी छूट जानी जरूरी है। समाज की जंजीर अगर किनारे से बंधी है तो समाज में क्रांति नहीं हो सकती। और समाज की नाव जंजीर से बंधी है बहुत जोर से। लेकिन जंजीरें इतनी पुरानी हैं, और नाव सदा से बंधी है कि हम भूल गए हैं कि जंजीरें क्या हैं, और नाव क्या है? नाव और जंजीर एक ही, दो हिस्से मालूम पड़ने लगे हैं। जंजीर को शायद हम नाव का आभूषण समझते हैं। शायद हम नाव की सजावट समझते हैं। श्रम हम बहुत करते हैं, बहुत पतवार चलाते हैं, लेकिन समाज की जिंदगी कहीं आगे जाती मालूम नहीं पड़ती। वह जहां खड़ी है, वहीं खड़ी रहती है। हजारों साल से वहीं खड़ी है। भारत के समाज ने हजारों साल से कोई यात्रा नहीं की। लेकिन श्रम तो हमने बहुत किया है। पतवार तो हमने बहुत खेई। जंजीर किनारे से बधी है। वह कौन सी जंजीर है? अगर उसे हम न पहचान सके तो भारत के समाज की नाव किसी यात्रा पर नहीं जा सकेगी। जहां जीवन के खजाने हैं, जहां सत्य के खजाने हैं, जहां आनंद के खजाने हैं। उन अनंत क्षणों को भी भारत का समाज नहीं छू सकेगा, कभी जहां खुशी है, जहां गीत है, जहां नृत्य है। लेकिन पहले जंजीर को पहचान लेना जरूरी है। जंजीरें भी बहुत पुरानी हों तो पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है। बीमारी भी बहुत दिन चल जाए, तो आदमी उस बीमारी को स्वास्थ्य समझने लगता है।
मैंने सुना है, एक मछुआ राजधानी में मछलियां बेचने आया था। दोपहर में मछलियां बेच कर जब वह वापस लौटने लगा तो उसने सोचा कभी राजधानी में नहीं आया हूं, आज थोड़ा राजधानी घूम कर देखूं। कैसे जीते हैं, राजधानी देख लेने का मन हुआ। वह राजधानी के बड़े-बड़े राजपथों से गुजरा। फिर वह उस गली में प्रविष्ट हुआ जहां उस राजधानी के सुगंध बेचने वालों की गली थी। परयूम बेचने वाले लोगों की दुकानें थीं। उस राजधानी में दुनिया की श्रेष्ठतम सुगंधें बिकती थीं। वह जब सुगंध वाली गली में प्रविष्ट हुआ तब उसे बहुत घबड़ाहट होने लगी, बहुत दुर्गंध आने लगी, क्योंकि वह एक ही सुगन्ध जानता था, मछलियों की। और उसे किसी सुगंध का कुछ पता न था। उसे बाकी सब गंधें सदा से दुर्गंध मालूम होती रहीं।
वो बहुत हैरान हुआ कि राजधानी के लोग कैसे पागल हैं? ये क्या दुर्गंध बेचने की दुकानें खुलवा रखी हैं। वह जैसे-जैसे उस गली में भीतर प्रविष्ट हुआ, वैसे बड़ी दुकानें थी, .ज्यादा कीमती सुगंधें थी, सारी हवाएं सुगंध से डोल रहीं थी। उसने अपनी नाक पर हाथ रख लिया, उसी तरह भागने लगा, निकल जाए बस्ती से बाहर इतनी घबड़ाहट होने लगी। भागने में घबड़ाहट में, दौड़ने में

पसीना भी आया, सुगंध भी आई वो बेहोश होके जमीन पर गिर पड़ा। आस-पड़ोस के लोग इकट्ठेहो गए। दुकानदार इकट्ठे हो गए। वह दुकानदार अपनी तिजोरियों में से कीमती से कीमती सुगंधें ले आए, उसे सुंघाने लगे कि होश आ जाए। उन बेचारों को क्या पता कि वह सुगंध से ही बेहोश और परेशान है। वह उसे, सुगंधें उसकी नाक पर छिड़कने लगे, वह आदमी बेहोशी में हाथ पैर पटकने लगा, सिर पटकने लगा, उसके प्राण छटपटाने लगे। भीड़ इकट्ठी हो गई, किसी की समझ में कुछ भी नहीं आया। तब एक आदमी भीड़ को चीर के बाहर आया। वह आदमी भी मछुआ था। उसने कहा ठहर जाओ, तुम इसकी जान ले लोगे। तुम यह क्या कर रहे हो? तुम्ही उसको बेहोश कर रहे हो। मछुए की गिर गई थी टोकरी नीचे, वह कपड़ा जिस में मछलियां बांधके लाया था, उस दूसरे मछुए ने पानी छिड़का टोकरी पर, कपड़े पर उस टोकडी, कपड़े को बेहोश मछुए की नाक पर रख दिया। उसने गहरी सांस ली, आंख खोली और कहा, दिस इज रीयल परयूम। यह है असली सुगंध। ये लोग तो मेरी जान ले लेते थे। कौन आ गया मसीहा, जिसने मुझे बचा लिया?
दुर्गंध भी बहुत दिन साथ रहे तो सुगंध मालूम पड़ने लगती है। बीमारियां
भी बहुत दिन साथ रहें तो स्वास्थ्य बन जाती हैं। जंजीरें भी बहुत दिन बंधी रह जाएं तो आभूषण बन जाती हैं। भारत की नाव में एक सरकमात जंजीर बंधी है, जो आभूषण बन गई है। शास्त्र उसकी प्रशंसा करते हैं, गुरू मंदिरों में, मठों में बैठ कर उसके गुण-गान गाते हैं। नेता और समझदार जिनको कहें वो उसकी प्रशंसा करते हैं, उसी जंजीर की, जिसकी वजह से भारत की जिंदगी किनारे से बंधी रह गई है। वह जंजीर क्या है? उस जंजीर का नाम है श्रद्धा, उस जंजीर का नाम है विश्वास, उस जंजीर का नाम है बिलीफ। भारत का व्यक्तित्व क्रांतिकारी नहीं हो सकता क्योंकि भारत के व्यक्तित्व को बांध दिया हमने विश्वास की खूंटी से। क्रांति आती है विचार से। विश्वास विचार की हत्या है। क्रांति आती है विचार से, विचार है विद्रोह। विचार में छुपा है एक बंधन, जब विचार पैदा होता है तो विप्लव हो जाता है। जब विचार पैदा होता है, जिंदगी आगे बढ़ जाती है। क्यों? क्योंकि विचार अंधा नहीं होता। विचार के पास आंखें होती हैं। और विश्वास अंधा होता है। और विश्वास के पास कोई अपनी आंख नहीं होती। विश्वास दूसरे को मानता है, और जो दूसरे को मानता है वह कभी क्रांतिकारी नहीं हो सकता। विश्वास अतीत को मानता है, जो जा चुका, बीत चुका। विश्वास की श्रद्धा हमेशा अतीत में होगी। विश्वास पकड़े रहता है, बीते हुए चरणों को। विश्वास होने का अतीत उन्मुख होता है। क्रांति सदा भविष्य उन्मुख होती है। इसलिए विश्वास और क्रांति के बीच कभी कोई संबंध नहीं हो सकता। विश्वास करने वाला आदमी प्रतिगामी होता है। विश्वास करने वाला आदमी अंधे की तरह भविष्य से चिपके रहता है। विचार ले जाता है, भविष्य में, विचार ले जाता है क्रांति में। भारत में कोई क्रांति कभी नहीं हो सकी। और आगे भी नहीं हो सकेगी, अगर विश्वास का जहर ये हम अपने बच्चों को पिलाएं चले जाते हैं। विश्वास क्या कहता है? विश्वास कहता है खुद मत सोचना। विश्वास कहता है कि स्वयं सोचने की जरूरत नहीं। जो भी सोचा जाने योग्य था, वह सोचा जा चुका है। ऋषि-महाऋषि, महात्मा उस सब को सोच चुके हैं। अब सबको कोई श्रम करने की जरूरत नहीं। जो उन्होंने कहा है, चुपचाप उन्हें स्वीकार कर लेना। और अगर कोई संदेह आता हो ध्यान रहे भटक जाओगे अगर संदेह किया। संदेह किया तो नर्क जाओगे। संदेह किया तो जिंदगी खो दोगे। संदेह मत करना। और आपको पता है, जो कभी संदेह नहीं करता, वो कभी विचार भी नहीं करता। संदेह विचार की पहली सीढ़ी है। डाउट, संदेह, विचार का पहला कदम है। जो आदमी संदेह करता है, वह विचार करता है। क्योंकि संदेह करने वाले को विचार करना ही पड़ता है। विश्वास करने वाले को विचार करने की क्या जरूरत।
मैंने सुना है, एक छोटे से गांव में एक, सुबह एक बड़ी अद्भुत घटना घट गई। हो सकता है आप भी उस गांव में रहे हों। क्योंकि उस गांव के सब आदमी इसी गांव में रहते हैं। उस गांव में एक छोटा सा विचारक था। वह विचारक सुबह-सुबह गांव के तेली की दुकान पर तेल खरीदने गया। तेली के सामने जाकर उसने बर्तन रख दिया कि मुझे तेल दे दो। तेली तेल तौलने लगा। उस विचारक ने देखा की तेली की पीठ के पीछे कोल्हू चल रहा है। कोल्हू को एक बैल चला रहा है। लेकिन वह बैल को चलाने वाला, हांकने वाला कोई भी नहीं है। वह विचारक बहुत

हैरान हुआ, उसने कहा कि महाशय! दुकानदार से कहा, महाशय! यह इतना धार्मिक बैल आप कहां से पा गए हैं? बिना किसी चलाने वाले के चल रहा है। ऐसा चमत्कार तो हिंदुस्तान में बिल्कुल नहीं होता। चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक जब तक पीछे कोई हांकने वाला न हो कोई चलता ही नहीं। यह बैल कहां मिल गया? किस नस्ल का बैल? इतना धार्मिक बैल पा कहां गए इस हिन्दुस्तान में। यह बिना चलाने वाले के चल रहा है। वह तेली हंसने लगा। उसने कहा, बैल यह नहीं चल रहा है, बैल का मालिक चला रहा है। तो उस विचारक ने कहा, आप तो बैठे हुए हैं। उसने कहा, मालिक को चलाने के लिए, मौजूद होना जरूरी नहीं। इस तरह का तंत्र बनाया जा सकता है कि बैल चलते रहें और मालिक अपना काम करता रहे। उस विचारक ने कहा, वह तंत्र मुझे दिखाई नहीं पड़ता। कोई चलाता हुआ मालूम नहीं पड़ता है। उस तेली ने कहा जरा बुद्धि से काम लो, देखते नहीं, बैल की आंख पर हमने पट्टियां बांध दी हैं। बैल की आंख पर पट्टियां बंधी और तेली ने कहा, बैल की आंख पर पट्टियां और उसे पता नहीं चलता कि कोई चलाने वाला पीछे है या नहीं। उस तेली ने कहा कि ध्यान रहे, जिसका सोचना बंद करना हो पहले उसकी आंख पर पट्टी बांध लेना जरूरी होता है।
उस विचारक ने कहा, बात तो तुम पते की कहते हो। मैंने भी बहुत से आंख पर पट्टी बंधे हुए लोग देखे हैं। और मैं समझ गया कि जरूर कुछ लोग शोषण कर रहे होंगे कि आंख पर पट्टियां बांधी। लेकिन मैं यह पूछना चाहता हूं, बैल कभी खड़ा होकर भी तो पता लगा सकता है कि कोई है या नहीं। तो उस तेली ने कहा महाशय! अगर बैल में इतनी बुद्धि होती तो, हम कोल्हू चलाते, बैल तेल बेचता। आप सुन नहीं रहे हैं, देख नहीं रहे हैं, हमने बैल के गले में घंटियां बांध रखी हैं, जब तक बैल चलता रहता है, घंटी बजती रहती है। हम जानते हैं कि बैल चल रहा है, जैसे ही घंटी रूकती है बैल खड़ा हुआ, हमने छलांग लगाई, पीछे गए और बैल को हांका। बैल को पता भी नहीं चल पाता कि पीछे कोई मौजूद नहीं था। घंटी बंद होते ही हम हांकने को मौजूद हो जाते हैं। विचारक भी जिद्दी था, और विचारक जिद्दी होते हैं। उस विचारक ने कहा, घंटी हमें सुनाई पड़ रही है, लेकिन बैल कभी खड़े होकर सिर नहीं हिला सकता है कि घंटी बजती रहे। तो उस तेली ने कहा, महाराज! थोड़े धीरे बोलो, बैल ने अगर सुन लिया तो हमारी जान पर बन आएगी। और आगे कृपया तेल और कहीं से ले लें। और ऐसे आदमियों का आना-जाना ठीक नहीं, सौबत का असर पड़ता है।
मैंने जब यह कहानी सुनी थी तो मैं हैरान हो गया। मैंने कहा उस तेली के पास बड़ा अद्भुत बैल था। क्योंकि भारत में जो आदमी हैं, उसके कानों के पास ढोल पीटकर बजाओ, वह नहीं सुनता, बैल कैसे सुन सकता है? आदमी नहीं सुनता इस मुल्क में बैल कैसे सुन सकता है? आदमी की आंख पर भी विश्वास की पट्टियां हैं। और आदमी की जिंदगी पर भी विश्वास का शोषण यंत्र है। न धर्मगुरू चाहते हैं, न गॉड नेता चाहते हैं कि आदमी सोचे। दुनिया का कोई भी शोषक नहीं चाहता कि आदमी विचार करे। क्योंकि जैसे ही आदमी विचार करेगा, शोषण के सारे यंत्र तत्क्षण नष्ट कर दिये जाएंगे। जैसे ही आदमी विचार करेगा, समाज की हजारों साल से चलती हुई रूढ़ियां तोड़ी जाएंगी, जैसे ही आदमी विचार करेगा, वैसे ही आदमी को गुलामी में रखना असंभव है। आदमी को गुलाम रखना हो, आदमी को आत्मा को काराग्रह में रखना हो, तो सबसे बड़ी जरूरत की बात है कि उसकी विचारक की आंख मत खुलने देना। उसे विश्वास दिलाना, विश्वास में बांधना और विश्वास में बड़ा करना। छोटे से बच्चे को हम विश्वास दिलाना शुरू कर देते हैं। निरीह बच्चों के साथ जो अत्याचार किया जाता है, विश्वास देकर, उसका हिसाब लगाना कठिन है। क्योंकि जब उनके भीतर विचार की आत्मा ही नहीं चलती, तभी उन लोगों के भीतर विचार-विश्वास की जंजीरें थोपना शुरू कर देते हैं। हिन्दू बाप बेटे को हिंदू बनाना शुरू कर देता है, मुसलमान बाप बेटे को मुसलमान बनाना शुरू कर देता है। ईसाई बाप बेटे को ईसाई बनाने लगता है। इससे पहले कि उसमें विचार जगें, विश्वास भर देना जरूरी है। अगर विश्वास जग गया, तो फिर किसी बच्चे को हिन्दू, मुसलमान और ईसाई बनाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि इस तरह की बीमारियां विचार स्वीकार करने को राजी नहीं हो सकता। इसीलिए विचार आए उसके पहले ही निर्बोध-अबोध बच्चों में भर देना विश्वास, इसलिए सारे लोग उत्सुक रहते हैं कि बच्चों को धार्मिक शिक्षा दी जानी

चाहिए। ताकि बच्चे हिंदु बन जाएं, मुसलमान बन जाएं, इसाई बन जाएं, इन बीमारियों से पृथ्वी परेशान हो गई है। लेकिन इन बीमारियों को जारी रखने की तकलीफ अब भी जारी है, वो बंद नहीं होती। कोई बच्चा हिन्दू की तरह पैदा नहीं होता, कोई बच्चा मुसलमान की तरह पैदा नहीं होता। लेकिन इसके पहले कि बच्चे को होश आए, उसे जंजीरें थमा दी जाती हैं। और वह जिंदगी भर ये कहेगा कि मैं हिन्दू हूं, गौरव के साथ। इसलिए मैं कह रहा हूं कि जंजीरों को हम आभूषण समझ रहे हैं। जो आदमी कहता है गौरव के साथ मैं हिन्दू हूं, वह आदमी पागल, जो आदमी कहता है मैं मुसलमान हूं, जैन हूं वह आदमी पागल है। क्योंकि उसे पता नहीं वह क्या कह रहा है? चैनों की गुलामी को गौरव समझ रहा है। मनुष्य सिर्फ मनुष्य है। और मनुष्य को बांधने वाली सारी जंजीरें खतरनाक हैं। लेकिन जंजीरें तब तक बांधी जाती हैं, हिंदुस्तान में भी और रूस में भी, और अमेरिका में भी। हिन्दुस्तान में हिन्दू होने की जंजीर बांधी जाती है, रूस में कंयूनिस्ट होने की जंजीर बांधी जाती है, लेकिन बचपन से बांध दी जाती हैं, कि उसे होश आ जाए और आदमी बिगड़ न जाए।
मेरे एक मित्र रूस गए उन्नीस सौ छत्तीस में। एक छोटे से बच्चे से स्कूल में उन्होंने पूछा, ईश्वर है? तो उसने कहा, है। था, अब है कहां? उन्नीस सौ सत्रह के पहले हुआ करता था। क्रांति के बाद गांव ईश्वर है अब। अब ईश्वर नहीं है। छोटे बच्चों को सिखाया जा रहा है कि ईश्वर नहीं है। नास्तिकता है। छोटे से बच्चों को जहर वहां भी डाला जा रहा है। वो नास्तिकता का जहर है। हम यहां जहर डालते हैं आस्तिकता का, हिंदू का, मुसलमान का, जैनी का। यह सवाल नहीं है। बच्चे को बिना उसकी समझ को विकसित किए जो भी हम उसके भीतर भर देते हैं, वह सब उसको आंख पर पट्टी बांधने वाला सिद्ध होता है। आस्तिक भी हो, नास्तिक भी हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप क्या दिखाते हैं, ईश्वर का होना या ईश्वर का ना होना, यह सवाल नहीं है, आप बच्चे को जो भी विश्वास की भांति सिखाते हैं, जिसे बच्चे के विचार भी मिल जाते, जो निस्पंद नहीं होता। जो बच्चे के विचार और तर्क से सिद्ध नहीं होता, जो बच्चे की चेतना का साक्षात नहीं बनता, तो जो भी आप सिखाते हैं वह उसकी आंख पर पट्टी बांधने वाला सिद्ध होता है। और पट्टियां इतनी अदभुत हैं कि बांध दी जाएं तो बिल्कुल दिखाई नहीं पड़तीं। यह खयाल ही नहीं आता। एक आदमी कपड़े के टुकड़ों को डंडे पर लगाए हुए है और कहता है कि यह हमारा राष्ट्रीय झंडा है। अगर यह नीचे झुक गया, हम अपनी जान भी दे देंगे। आदमी पागल है कि कपड़े के टुकड़ों के लिए जान दे सकता है। कपड़ों के टुकड़ों के लिए, चिथड़ों के लिए। कौमें मर सकती हैं, हजारों लोगों की हत्याएं हो सकती हैं, क्योंकि किसी का झंडा नीचा हो गया। आदमी को देख कर शक होता है कि आदमी में बुद्धिमानी नाम की कोई चीज है, कि नहीं है? कपड़ों के टुकड़ों के लिए, आदमी की जान लेने का विचार है। लेकिन नहीं, बचपन से अगर सिखा दिया जाए, यह जहर कि यह राष्ट्रीय झंडा है, इसका ऊंचा होना सब कुछ है, यह कहीं नीचा न हो जाए। तो यह जहर दिमाग में बैठ जाएगा और आदमी को कभी पता भी न चलेगा कि सिर्फ कपड़े का टुकड़ा है और कुछ भी नहीं। लेकिन अगर विचार दुनिया में पैदा होगा तो एक बात कि झंडा नहीं टिक सकता। कपड़े के टुकड़े रह जाएंगे, और अगर विचार दुनिया में पैदा होगा तो न भारत हो सकता है, न चीन, न पाकिस्तान क्योंकि जमीन कहीं की भी बटी नहीं है। सिवाय राजनीतिज्ञों की शरारत के जमीन को बांटने का कोई भी कारण नहीं है। जमीन को खंड-खंड टुकड़ों में बाटा हुआ है। क्यों? क्योंकि जब तक जमीन खंड-खंड टुकड़ों में बंटी रहेगी तभी तक जमीन के झगड़े कर सकते हैं आप, और जब तक झगड़े कर सकते हैं तब तक राजनीतिज्ञ की पूजा हो सकती है। जिस दिन झगड़े बंद हो जाएंगे, राजनीतिज्ञ की मृत्यु हो जाएगी। दुनिया में जब तक युद्ध है, तब तक पालिटीशियन रहेगा, जिस दिन दुनिया में युद्ध खत्म उस दिन पॉलिटीशियन भी गया। क्योंकि पॉलिटिक्स सिवाय युद्ध के खेल के और कुछ भी नहीं।
लेकिन ये युद्ध चलेगा क्योंकि जमीन को टुकड़ों में बांटा गया है। उन्नीस सौ सैंतालीस से पहले करांची में जो बच्चा पैदा होता था, वो हमारा भाई था। अब भी वह वहां पैदा होता है, लेकिन वह हमारा दुश्मन है। कराची वही है, अहमदाबाद भी वही है। जमीन कहीं भी बंट नहीं गई। लेकिन अब अहमदाबाद में

बच्चे पैदा होंगे, वे कराची के बच्चों की हत्या करेंगे। और कराची में बच्चे पैदा होंगे वे अहमदाबाद के बच्चों की हत्या करेंगे। यह क्या पागलपन है, यह कौन सिखा रहा है? भारत और पाकिस्तान, और चीन और जापान। ये सीमाएं कहां हैं? यह सीमाएं सब विश्वास में हैं। मनुष्य का विचार जगेगा, ये सीमाएं विलीन हो जाएंगी। हजारों सीमाएं, हजारों झूठी बातें, जिनकी कोई सच्चाई नहीं है, वह आदमी को सिखा दी जाती हैं। और आदमी सीमाओं में बंध के जी लेता है। और जब पूरा समाज इस तरह की जंजीरों से बंध जाता है, तो क्रांति कैसे होगी? शोषक नहीं चाहता कि विचार हो। इसलिए मैं दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं, विश्वास नहीं, चाहिए विचार। विश्वास नहीं, चाहिए संदेह। विश्वास नहीं, चाहिए अथक चिंतन, क्षमता, अथक तर्क। चाहिए जिंदगी को पूछने, खोजने, अनिवेचन करने का साहस। और एक भी ऐसी चीज मानना मनुष्यता का अपमान है, जो आपके विचार, और आपके तर्क, और आपकी बुद्धि के योग्य नहीं। जो आपके तर्क, आपकी बुद्धि की कसौटी पर कसी नहीं जाती है। हिन्दुस्तान में इसीलिए क्रांति नहीं हो सकी कि विचार पैदा नहीं हुआ, और इसीलिए विज्ञान पैदा नहीं हो सका, क्योंकि विज्ञान भी विचार से पैदा होता है। पांच हजार वर्षां में हमने कोई विज्ञान पैदा नहीं किया, कोई साइंस पैदा नहीं की। साइंस पैदा होती है विचार से, साइंस विश्वास से पैदा नहीं होती। विश्वास करने वाले लोग न कोई अविष्कार करते हैं, न कुछ खोज करते हैं, न छिपे हुए जीवन के राज खोलते हैं। वे तो आँख बंद करके विश्वास किये चले जाते हैं, आंख बंद करके जीते हैं और मर जाते हैं। उन्हें जिंदगी एक खोज नहीं है, उन्हें जिंदगी एक अंधापन है। एक अंधेरा है। हम विश्वास करने के लिए इस भांति तैयार हो गए हैं। इसलिए विज्ञान पैदा नहीं हो सका, आज भी। आज भी हम विज्ञान की शिक्षा ले रहे हैं। हमारे बच्चे विज्ञान पढ़ रहे हैं, डॉक्टर और इंजीनियर बन रहे हैं, लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं उनमें भी वैज्ञानिक बुद्धि पैदा नहीं हुई। साइंटिफिक माइंड पैदा नहीं हुआ। भीतर बड़े विश्वास करने वाला आदमी बैठा है।
बी एससी में पढ़ता है एक लड़का और परीक्षा के वक्त हनुमान जी के मंदिर
के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाता है, आश्चर्य, इस लड़के को बी एससी कक्षाओं में असली चूक गया।
सुना है एक डाक्टर के घर कलकत्ते में मेहमान थे, वे डाक्टर हैं। पश्चिम से शिक्षा लेके लौटे बड़े कीर्ति प्राप्त सर्जन, सांझ को मुझे मीटिंग में लेकर निकलते थे कि उनकी लड़की को छींक आ गई। मुझसे कहा कि रूक जाइए। एक-दो मिनट रूक जाइए। मैंने उनसे कहा, महाशय! आप तो भलीभांति जानते होंगे कि छींक क्यों आती है? आप तो डाक्टर हैं। और आपकी लड़की के छींक आने से तीन कालों में भी मेरा कोई संबंध नहीं है। और अगर तुम्हारी लड़की के छींक आने से मुझे रूक जाना चाहिए तो सारी दुनिया को रूक जाना चाहिए। क्योंकि छींक आ गई इस दुनिया में। चांद-तारों को ठहर जाना चाहिए। सब ठहर जाना चाहिए। तब तो एक मिनट काम करना मुश्किल होगा, क्योंकि किसी न किसी को छींक आ रही है। वह कहने लगे कि मैं समझता हूं कि छींक क्यों आती है? लेकिन फिर भी रूकने में हर्ज क्या है? यह वैज्ञानिक चित्त कैसे पैदा होगा? वह कहते हैं, सोचता हूं, लेकिन रूकने में हर्ज क्या है? एक-दो मिनट रूक गया। यह भीतर बैठा है वही अंधविश्वासी भारतीय। वही अंधविश्वासी समाज का टुकड़ा। ऊपर से यह के एक आदमी को डाक्टर बना दिया है, पर भीतर यह आदमी वही का वही।
अभी मैं जालंधर में एक मकान का उदघाटन करने गया। एक बड़े इंजीनियर ने
एक बड़ी कोठी बनाई है। शायद उतनी सुंदर कोठी जालंधर में दूसरी नहीं होगी। उनके मकान का फीता काट रहा था कि देखा कि मकान के सामने एक हंडी लटकी है, आदमी का चेहरा बना है। बड़े-बड़े बाल लटके हुए हैं। मैंने पूछा कि यह क्या है? वह कहने लगे कि कहीं मकान को नजर न लग जाए। इसलिए हंडी लटका दी है। सिर्फ संदेह का मन होता है। इस देश में क्या विचार कभी पैदा नहीं हुआ होगा। क्या इस देश के विचार की क्षमता बिल्कुल ही मर गई है?
पश्चिम से एक आदमी आया भारत, बिन्नी.ज नाम का। डाक्टर था। उसने स्वामी शिफानंद की एक किताब पढ़ी थी। उस किताब में स्वामी शिफानन्द ने लिखा हुआ

है, कि ओउम का पाठ करने से सब तरह की बीमारियां दूर हो जाती हैं। यही नहीं, ओउम का पाठ अगर परिपूर्ण एकाग्रता और परिपूर्ण संकल्प से किया जाए तो मनुष्य मृत्यु को भी जीत सकता है। स्वामी शिफानंद ने ही ऐसा लिखा है, ऐसा नहीं, और बहुत किताबें हैं, जिनमें इस तरह की बातें लिखी हैं। वह कोई कटु बात नहीं है। हमारे मुल्क में मौलिक भूल कोई कर नहीं सकता, कटु कोई नहीं करता। भूलें भी दूसरे करते हैं और उनको हम दोहराते हैं।
बिन्नीज ने किताब पढ़ी तो उसको पता चला कि स्वामी शिफानंद तो पहले खुद
भी डाक्टर रह चुके हैं। तो जब डाक्टर रहने वाला यह आदमी लिखता है, तो जरूर कुछ सच्चाई की बात लिखता होगा। और सत्य की बात लिखता होगा। वह बेचारा भागा हुआ ऋषिकेश पहुंचा कि जब यह सूत्र खोज लिया गया कि ओउम के पाठ से बीमारी दूर हो सकती है, अगर इतनी बड़ी तरकीब खोज ली गई है तो फिर सारी दुनिया को सिखाना चाहिए। और सब मैडिकल कॉलेज वगैरह बंद कर देना चाहिए। छोटा सा नुस्खा सारा काम कर देगा। और हद की बात यह है कि लिखा है कि इसको जाप करने से मृत्यु तक को जीता जा सकता है। तब तो दुनिया के सामने एक महान अविष्कार हो गया। इस मनु को अब तक नोबल प्राइ.ज क्यों नहीं दी गई।
वह बेचारा भागा हुआ ऋषिकेश पहुंचा। जाके उसने, एकदम से जाके सर्वेन्ट
को कहा कि मैं स्वामी जी के दर्शन करना चाहता हूं, इसी वक्त। सरवेंट ने कहा अभी आप नहीं मिल सकते, स्वामी जी बीमार हैं और डाक्टर उनकी परीक्षा कर रहा है। उस आदमी पर क्या गुजरी होगी उस समय? उसकी समझ के बाहर हो गया, उसने कहा यह हो नहीं सकता कि स्वामी जी कभी बीमार पड़ जाएं। स्वामी जी ने तो लिखा है ओउम के पाठ से सब बीमारियां दूर हो जाती हैं। असंभव है यह। बाद में उसने लिखा कि पीछे मुझे पता चला, भारत के लोगों को तथ्यों के विचार से कोई संबंध नहीं है। वह कुछ भी कह सकते हैं, कुछ भी लिख सकते हैं। और हमारे मुल्क में किसी आदमी ने ऐतराज नहीं उठाया होगा इस बात पर, कोई नहीं गया होगा, आपको पता चालीस... ऋषिकेश की खबर करने, कि यह जो बात लिखी है, यह हो सकती है? और अगर हम जाते भी, और स्वामी जी बीमार दिखाई पड़ जाते, तो हम कहते कि स्वामी जी लीला दिखा रहे हैं। स्वामी जी कभी बीमार पड़ सकते हैं, सब लीला कर रहे हैं ताकि भक्तों की परीक्षा हो सके कि कौन विश्वास करने लगा है? कौन संदेह करने लगा है? यह हमारी चित्त की दशा हो गई है।
हमने सोचना ही बंद कर दिया है। हम तथ्यों को कोई ध्यान ही नहीं देते। हमने जिंदगी से तर्क करने का संघर्ष बंद कर दिया है। हम बस बैठ गए हैं। हम गोबर के पुतलों की तरह बैठे रह गए हैं। कैसे क्रांति होगी? क्रांति के लिए चाहिए तीव्र चिंतन, तीव्र विचार, तथ्यों में विचार, थिंकिंग इन फैक्ट्स। तथ्यों की खोज, तथ्यों का देखना, परखना, पहचानना, जानना और बंधी हुई धारणाओं के आधार पर स्वीकार नहीं कर लेना। जब तक कि तथ्यों की खोज पड़ताल से नई धारणा का, समृद्ध धारणा का जन्म न हो जाए, विचार न बने तो विज्ञान पैदा नहीं हुआ। विचार न करने से जिंदगी को बदला जा सकता है। यह खयाल ही हमारा हो गया है। और जब हमने विचार नहीं किया, विश्वास किया तो उसका स्वाभाविक परिणाम हुआ, भारतीयता का। जो समाज विश्वास करता है, वो समाज भाग्यवादी हो हो जाता है। क्योंकि विश्वास करने वाले आदमी को खुद तो कुछ करना नहीं पड़ता, जो विचार ही नहीं करता वह और क्या करेगा? फिर सब चीजें घटती हैं, स्वीकार कर लेना पड़ता है कि भाग्य जो कुछ कर रहा है, हो रहा है। देश गुलाम हो जाए तो भाग्य, देश दरिद्र हो जाए तो भाग्य, देश मरे तो भाग्य, जो भी हो, वह भाग्य है। भगवान कर रहा है, और हमारा काम सिर्फ बैठ कर देखते रहना है। जो हो रहा है, उसे हम देख रहे हैं। जिंदगी का कारवां, इतिहास का रथ निकलता जाए, हम किनारे बैठे दूर उसकी ओर देखते रहेंगे कि जो हो रहा है, उसे हम देखते रहेंगें। हम किनारे बैठ गए हैं रास्ते पर इतिहास के। रास्ते से उठकर वापस खड़ा होना है। और खड़े होने के लिए दूसरा सूत्र है, विश्वास को जहर समझो। विश्वास को छोड़ दो बिल्कुल, भूल से भी कभी विश्वास मत करना। खोजना, संदेह करना, संदेह करना, यकीन मत करना। लेकिन जो आदमी संदेह करता है, लेकिन जो आदमी संदेह करता है, एक दिन संदेह गिर जाता है, और सत्य का जन्म होता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं कभी अपने गांव जाता हूं, जिन शिक्षकों ने बचपन में मुझे पढ़ाया था,
जब गांव जाता हूं जब गांव जाता हूं तो उनके पास भी जाता हूं। जब मैं इस बार गांव गया तो शिक्षक के पास गया। दूसरे दिन उन्होंने चिट्ठी भेजी अपने लड़के के हाथ, कि अब कल से मेरे घर मत आना।

नये भारत का जन्म
पांचवां प्रवचन

अहंकारी समाज सदा पीछे देखता है

एक काफिला रास्ता भटक गया था। आधी रात गए, एक रेगिस्तानी सराय में, उस काफिले को शरण मिली। बड़ा था काफिला, बहुत सौदागर थे। सौ ऊंटों पर लदा हुआ सामान था। थक गए थे, रात थक गए थे। शीघ्र उन्होंने खूटियां गाड़ कर ऊंटों को बांधा, विश्राम करने की तैयारी करने लगे, तभी पता चला कि एक ऊंट की खूंटी और रस्सी कहीं रास्ते में गिर गई। निन्यानबे ऊंट बंध गए, एक ऊंट अनबंधा रह गया। ऊंट को अनबंधा छोड़ना खतरनाक था। रात कहीं भटक सकता था। उन्होंने सराय के बूढ़े मालिक को जाकर काफिले के सरदार ने कहा, अगर एक खूंटी और रस्सी मिल जाए, तो बड़ी कृपा हो, हमारा एक ऊंट अनबंधा रह गया है। उस सराय के बूढ़े मालिक ने कहा, खूंटी और रस्सी की क्या जरूरत है, तुम तो खूंटी गाड़ दो और रस्सी बांध दो। वे लोग बहुत हैरान हुए, उन्होंने कहा, खूंटी हमारे पास होती तो, हम खुद ही गाड़ देते, कौन सी खूंटी दें? उस बूढ़े ने कहा झूठी खूंंटी गाड़ दो और झूठी रस्सी बांध दो। वह लोग कहने लगे आप भी पागलपन की बातें कर रहे हैं, झूठी खूंटी से कहीं ऊंट बांधे गए हैं? झूठी रस्सी से कभी ऊंट बंधे हैं? उस बूढ़े ने कहा कि मैंने आदमियों और सबको झूठी खूंटियों से बंधा देखा है, ऊंट का क्या हिसाब है। तुम तो बांध दो। लोग हैरान हो गए, लेकिन फिर सोचा कि देख लें, कोई और रास्ता भी नहीं था। अंधेरे में उन्होंने झूठी खूंटियां गाड़ी, खूंटियां नहीं थी, लेकिन गाड़ने का उपक्रम किया, हथौड़ों से आवाज की। ऊंट खड़ा था, वह बैठ गया, उसने समझा कि खूंटी गाड़ दी गई है। तब उन्हें थोड़ा विश्वास बढ़ा, उन्होंने उसके गले पर रस्सियां बांधी, जैसे कि रस्सियां होती और बांधते। झूंठे हाथ ही फिराये। और फिर रस्सियां बांध दी और जाकर सो गए। ऊंट भी सो गया।
सुबह जब उठे शीघ्र ही उन्हें यात्रा पर निकल जाना था, उन्होंने निन्यानबे ऊंटों की खूंटियां निकाल ली, रस्सियां खोल दीं, सौवें ऊंट की कोई खूंटी न थी, इसलिए खोलने का कोई सवाल न था, निन्यानवें ऊंट चलने को तैयार हो गए, लेकिन सौवें ऊंट ने उठने से मना कर दिया। वे बहुत जोर देने लगे, चाबुक चलाने लगे, लेकिन ऊंट है कि उठता नहीं, तब उन्हें शक हुआ कि उस बूढ़े ने कोई जादू तो नहीं कर दिया। रात भी शक हुआ था कि झूठी खूंटी से ऊंट बंध गया, कुछ मंत्र तो नहीं कर दिया। और जब सुबह ऊंट उठा ही नहीं, तब शक और पक्का हो गया। उन्होंने उस बूढ़े को जाके कहा कि क्या कर दिया है तुमने? ऊंट उठता नहीं। उस बूढ़े ने कहा पागलों, पहले खूंटी उखाड़ो और रस्सी खोलो। तो वह कहने लगे, खूंटी है नहीं, रस्सी है नहीं, उस बूढ़े ने कहा, जब बांधते वक्त थी, तो अभी भी है। मजबूरी थी, बड़ा पागलपन मालूम हुआ सुबह, सूर्य के प्रकाश में। भीड़ इकट्ठी हो गई। उस खूंटी को उखाड़ा भी नहीं, उस रस्सी को खोला भी नहीं कि ऊंट उठकर खड़ा हो गया। चलने को तैयार है। वह उस बूढ़े को धन्यवाद देने लगे और कहने लगे तुम्हें ऊंटो का बड़ा अनुभव मालूम होता है। उस बूढ़े ने कहा ऊंट मैंने पहली दफा देखे, मैंने तो आदमियों के अनुभव के आधार पर कह दिया।
आदमी बहुत सी झूठी खूंटियों में बंधा है, बहुत सी झूठी रस्सियों में; जिनका कोई अस्तित्व नहीं है। सिर्फ कल्पना में ही उनका अस्तित्व है। एक-एक व्यक्ति भी झूठी खूंटियों से बंधता है। समाज भी राष्ट्र भी, पूरी की पूरी सभ्यता भी और संस्कृति भी झूठी खूंटियों से बंधी हो सकती है।
आज तीसरे सूत्र में झूठी खूंटी की बुनियादी बात को समझ लेना जरूरी है। क्योंकि जब तक हम झूठी खूंटियों से मुक्त न हो जाएं, तब तक समाज में कोई क्रांति नहीं हो सकती। और पहली झूठी खूंटी, हमारी बुनियादी झूठी खूंटी क्या है? एक-एक आदमी भी उसी बुनियादी झूठी खूंटी से बंधता है। समाज भी, राष्ट्र भी, सभ्यताएं और संस्कृतियां भी। वो झूठी खूंटी है अहंकार की। एक ओर एक-एक आदमी को तो अक्सर हम कहते हैं कि अहंकारी मत बनो, लेकिन जब पूरा समाज अहंकार करता है तो कोई भी नहीं कहता। क्योंकि समाज के अहंकार में सबके अहंकार की तृप्ति होती है। जब पूरा राष्ट्र अहंकार से बंधता है तो

कोई भी नहीं कहता, क्योंकि पूरे राष्ट्र में सभी के अहंकार की तृप्ति होती है। अगर मैं अहंकार करूं तो पड़ोसी को चोट पहुंचती है, वो कहता है कि अहंकार बुरी चीज है। लेकिन अगर पूरा राष्ट्र अहंकार करे तो राष्ट्र में किसी को पता नहीं चलता कि राष्ट्र का अहंकार और भी खतरनाक चीज है। अगर एक-एक आदमी का अहंकार खतरनाक है, तो पूरे-के-पूरे समाज, समूह और संस्कृति का अहंकार और भी खतरनाक है। क्योंकि एक आदमी का अहंकार छोटा सा अहंकार है, संस्कृति और समाजों के अहंकार बहुत मजबूत। और एक आदमी का अहंकार एक जिंदगी में खत्म हो जाएगा, धूल में मिल जाएगा। लेकिन संस्कृतियों के अहंकार धूल में नहीं मिलते, वह जारी रहते हैं, हजारों, लाखों वर्ष तब चलते रहते हैं। इतने मजबूत होते हैं कि उन्हें पकड़ना बहुत मुश्किल होता है।
भारत बहुत अहंकारी समाज है। हम हजारों साल से यह धारणा बनाए बैठे हैं
कि हम जगतगुरू हैं। कोई कहे या न कहे, हम अपने मुंह से सारी दुनिया में प्रचार करते रहते हैं कि हम जगतगुरू हैं। शर्म भी हमें नहीं आती, संकोच भी नहीं होता। और यह भी नहीं लगता कि अपने मुंह मियां-मिट्ठू बनना, बहुत दीनता का लक्षण है। ध्यान रहे जो समाज जितना हीन होता है, उतना वो अहंकार पोषता है। हीनता अहंकार की जननी है। जितना इनयूरिटि कॉम्पलैक्स होती है किसी आदमी में, जितनी हीनता की वृद्धि होती है उतना ही दम, घोषणा करता है वह। और जो समाज जितना हीन होता है, उतने ही अहंकार का पोषण करता है। भारत इतना अहंकार का पोषण करता है, उसका एक ही कारण है कि समाज बहुत भीतर से हीन, आत्मा को खो चुका है। भीतर से सड़ चुका है, भीतर से खोखला है। बाहर अहंकार की घोषणाएं और अंदर हम गुरू हैं। कौन कहता है जगतगुरू? पूरा मुल्क ही जगतगुरू है, और गांव-गांव में भी जगतगुरू बैठे हुए हैं, जगत एक है और जगत गुरू बहुत। कोई पूछता नहीं कि एक जगत के इतने गुरू कैसे हो जाते हैं? और बड़ा मजा यह है कि यह जगतगुरू जगत से बिना पूछे जगतगुरू हो जाते हैं। जगत से उन्होंने कभी नहीं पूछा, हमें गुरू मानते हो?
मैं एक गांव गया, तो वहां भी एक जगतगुरू थे। मैंने पूछा जगतगुरू यहां भी, इस छोटे से गांव में भी? कितने शिष्य हैं इनके? जो लोग उनके पास मिलने आए थे, उन्होंने कहा कि शिष्यों की अगर पूछते हैं तो शिष्य तो सिर्फ एक है, वह भी वैतनिक है। उसको तनख्वाह देते हैं। वह जमाने गए कि मुत में शिष्य मिल जाते थे। शिष्यों को भी खरीदना पड़ता है। खरीदने के सिक्के तो भी हो सकते हैं दूसरी बात है, लेकिन शिष्य भी खरीदने पड़ते हैं। और गुरूओं और धर्मों के बीच जो झगड़ा है वह झगड़ा सत्य का नहीं है, न परमात्मा का है, सिर्फ शिष्यों को खरीदने का झगड़ा और कोई झगड़ा नहीं है। दुकानदारी में ग्राहकों को खरीदने के झगड़े, गुरूओं के अड़्डे, मस्जिद-मंदिरों और ग्राहकों को खरीदने के झगड़े, धर्मों के नाम पर सारे झगड़े शिष्यों को खरीदने के झगड़े और कोई झगड़ा नहीं है।
एक ही शिष्य वह भी वैतनिक, फिर यह जगतगुरू कैसे हो गए? गांव वाले हंसने लगे। वह कहने लगे कि वह हैं जगतगुरू, उन्होंने बड़ी ऊंची तरकीब निकाली है, और उनके ऊपर कोई वैधानिक आरोप भी नहीं उठा सकता है। उनका जगतगुरू होना बिल्कुल कॉन्सटिट्यूशनल है। वैज्ञानिक ढंग से उनका एक शिष्य उसका नाम उन्होंने जगत रख लिया, वह जगतगुरू हो गए। गांव-गांव जगतगुरू है, और पूरा मुल्क भी जगतगुरू है, हजारों साल से ये एक ही बात दोहराए चले जा रहे हैं। और कोई हमरे बीच यह नहीं सोचता कि यह थोथा दंभ किसलिए, बोलते हो? कभी खबर है इस बात की, कभी सोचा यह कि भिखमंगे सिर्फ सम्राट होने का सपना देखते हैं, सम्राट नहीं। जो कौमें हार जाती हैं, वह विदेशी कथाओं को याद करती हैं। जो कौमें मर चुकी होती हैं, वह अतीत के स्वर्ण युगों की बात करती हैं। और जिनके पास कुछ भी नहीं होता, वह कुछ भी घोषणाएं करके मन को कॉन्सोलेशन और सांत्वनाएँ देते रहते हैं। सपने वो वही देखते हैं, जो हमारे पास नहीं होता है, जो हमारी मांग होती है।
मैंने सुना है, एक झाड़ के नीचे बैठके एक बिल्ली नींद ले रही थी और सपना देख रही थी। एक कुत्ता वहां से गुजरता था, उसने कहा, देवी! बड़ा आनंद ले रही हो। सपने में भी लार टपकी जा रही तुम्हारी। आंखें तो खोलो, क्या देख रही हो? तो वो बिल्ली बोली कि व्यर्थ मेरी नींद खराब कर दी, मैं एक बहुत

खूबसूरत सपना देख रही थी। आकाश से चूंहे टपक रहे थे, एकदम मूसलाधार थी वर्षा। उस कुत्ते ने कहा नासमझ! नादान बिल्ली, मूर्ख बिल्ली तुझे ये भी पता नहीं कि आज तक हमारे किसी भी शास्त्र में यह नहीं लिखा है कि चूहों की वर्षा होती है। शास्त्रों में यह लिखा है कि कभी-कभी जब भगवान की कृपा होती है, तो हड्डियों की वर्षा होती है, चूहों की वर्षा कभी मैंने नहीं सुनी।
हमने भी सपने देखे हैं, झूठ सपना देख रहे हैं। हम जब भी सपना देखते हैं, हड्डियां ही बरसती हुई दिखती हैं। ठीक है कुत्ते सपना देखेंगे तो हड्डियां बरसेंगी। और बिल्लियां सपना देखेंगी तो चूहों की मूसलाधार वर्षा होगी। गरीब सपना देखेगा तो सम्राट हो जाएगा। और जो कुछ भी नहीं हैं, वह सपना देखेंगे तो जगतगुरू मालूम पड़ेंगे। यह सपने हैं, झूठी खोजें हैं। इन झूठी खोजों में रहेंगे तो देश पिछड़ता चला जाएगा। नहीं, जीवन को तथ्यों और देखने से जीता जाता है। सपनों को देखने से नहीं। भारत को अपनी वस्तुस्थिति देखने की हिम्मत जुटानी चाहिए, वह हम आज तक नहीं जुटा पाए कि हमारी वस्तुस्थिति क्या है? हम क्या हैं, असलियत में। हम सिर्फ कल्पनाएं और सपनों के जाल की घोषणाएं करते हैं, और मालूम होते हैं कि वह हम हैं। इस भांति हम किसको धोखा दे रहे हैं? किसी को भी नहीं, सिर्फ अपने को। सिर्फ स्वयं को धोखा दे देते हैं, सैल्फ डिसेप्शन है। और इसी तरह के अहंकार कि भारत एक धार्मिक देश है। इससे झूठी कोई बात हो सकती है कि भारत एक धार्मिक देश है। क्या मतलब होता है धार्मिक होने का कि आदमी चोटियां बढ़ाएं रखे तो धार्मिक हो गया, कि आदमी रंगीन कपड़े लपेट ले तो वह धार्मिक हो गया। कि आदमी रोज सुबह उठके मंदिर हो आया तो वह धार्मिक हो गया। अगर मंदिरों में जाने से कोई धार्मिक होता हो तो, चोटियां बढ़ाने से कोई धार्मिक होता हो तो दुनिया कभी की धार्मिक हो गई होती। इतना सस्ता नहीं है धार्मिक हो जाना। किसको धोखा देते हैं धार्मिक होकर। जिंदगी अधार्मिक है, बिल्कुल निपट अधार्मिक, लेकिन नहीं, हम कहेंगे, कैसे अधार्मिक? हम गंगा स्नान करते हैं। गंगा स्नान करने से धर्म का क्या संबंध। लेकिन हम कहेंगे, गंगा स्नान करने से पाप सब बह जाते हैं। बेईमानों ने इजाद की होगी ये बात, कि गंगा में स्नान करने से पाप बह जाते हैं। पापियों ने इजाद की होगी ये बात, जो पाप भी करना चाहते हैं, और पाप से छूटना भी नहीं चाहते हैं। नदियों में स्नान करके मन को समझा देते हैं कि पाप बह जाते हैं। नदियों में स्नान करने से पाप बहता तो दुनिया कभी की पवित्र हो गई होती।
रामकृष्ण के पास एक दिन एक आदमी गया और कहा कि मुझे आशीर्वाद दें कि मैं गंगा स्नान करने जा रहा हूं। रामकृष्ण ने कहा, पागल हो गए हो, गंगा स्नान किसलिए जा रहे हो? उस आदमी ने कहा कि पाप डूब जाते हैं गंगा में, गंगा का पवित्र पानी है, इसलिए जा रहा हूं। आशीर्वाद दें। तो रामकृष्ण बहुत सरल-सीधे आदमी थे, उन्होंने कहा, जाता है तो जा, लेकिन एक बात ध्यान रखना, गंगा के किनारे बड़े-बड़े दरख्त देखे हैं किसलिए? उस आदमी ने कहा किसलिए? मुझे कुछ पता नहीं। गंगा का महत्व तो पढ़ा है, लेकिन दरख्तों का भी कोई महत्व होगा, जो किनारे खड़े हैं, जो किताब में लिखा नहीं। रामकृष्ण ने कहा, वह मैं तुझे बताये देता हूं। जब तू पानी में डूबेगा, तो गंगा के प्रभाव से पाप अलग हो जाएंगे, दरख्तों पर चढ़कर बैठ जाएंगे। जब तू वापस लौटेगा तो तेरे ऊपर फिर से सवार हो जाएंगे। हां, अगर पाप से बचना हो तो गंगा में डूबे तो फिर निकलना मत, डूबे ही रहना। तो बच सकता है। क्योंकि गंगा तभी तक तो पवित्र कर सकती होगी, जब तक डूबे हुए होंगे। बाहर निकलोगे तो फिर वही न हो जाओगे जो थे। और मजे की बात है कि गंगा में डूबने से गंगा के भीतर भी मर सकते हो, लेकिन पाप से कैसे मुक्त हो सकते हो? क्या संबंध है उसमें, क्या संबंध है। कौन सा तर्क है? हम इस तरह की बातों को धार्मिक होना समझते हैं।
एक आदमी है और धार्मिक हो जाता है। और चारों तरफ देखता जाता है मंदिर जाते वक्त कि लोग देख रहे हैं कि नहीं, मैं मंदिर जा रहा हूं। उतना ही मजा है मंदिर जाने का, रिस्पेक्टिबिलिटि, थोड़ा सा आदर चारों तरफ के नासमझ देते हैं, उसे अतिरिक्त कोई और अर्थ नहीं। मंदिर बना लेता है एक आदमी और सोचता

है कि धार्मिक हो गया हूं। कोई आदमी यज्ञ करवा लेता है और सोचता है कि धार्मिक हो गया। धार्मिक होना इतनी आसान बात है, धार्मिक आदमी होता है चेतना के रूपांतरण से। धार्मिक होता है आत्मा के परिवर्तन से, धार्मिक आदमी होता है प्रभु के मंदिर में प्रवेश से। आदमियों के बनाए हुए मंदिर में प्रवेश से कोई धार्मिक नहीं होता। न हो सकता है। आदमी बना ही कैसे सकता है प्रभु के मन्दिर को कभी, यह सोचा? आदमी बना कैसे सकता है प्रभु की मूर्ति को? सब खिलौने हैं अपने हाथ से बनाए हुए। भगवान को आदमी कैसे बना सकता है? अपनी ही मूर्तियां बनाके रखी हुई हैं मंदिरों में, उनकी पूजा करो, अपनी ही मूर्तियों के सामने हाथ जोड़के बैठे हुए हो। भगवान अगर कहीं है तो आदमियों की बनाई हुई मूर्ति में नहीं। और जिनको चारों तरफ जीवित जगत में भगवान दिखाई नहीं पड़ता, उन पागलों को पत्थर की मूर्ति में दिख जाएगा, वो बड़ा आश्चर्यजनक है। नहीं, ये सब धर्म नहीं है, लेकिन इसी सब को मानकर हम लोग धार्मिक हो गए हैं।
मेरे एक मित्र स्वीडन गए हुए थे। वह पटना यूनीवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। बड़े तथाकथित धार्मिक हैं। शंकर जी की पिंडी अपने पास रखते हैं, छाती के पास दबा कर कि कहीं कोई बुराई न हो जाए। अब यह बेचारी शंकर जी की पिंडी क्या करेगी? तुम्हें बुराई करने से रोक लेगी। तुम्हारे साथ वह अपवित्र हो जाएगी, तुम उसके साथ पवित्र नहीं हो सकते हो।
गए थे स्वीडन। शाकाहारी हैं। एक शाकाहारी होटल खोज-खाज के पहुंचे होंगे। और वहां जाके उन्होंने कहा होगा मुझे शुद्ध दूध चाहिए। प्योर मिल्क चाहिए। उस बैरा ने कहा, प्योर मिल्क? कभी सुना नहीं। कंडल्स मिल्क सुना है। पेश्चोराइ.ज्ड मिल्क सुना है। प्योर मिल्क क्या बला है? उन्होंने कहा तुम समझते नहीं, अपने मैनेजर को बुला लो। मैनेजर भी घबराया हुआ आया और कहा कि महाशय! क्षमा करिए, हम बड़े दुःखी हैं कि आपकी सेवा करने में असमर्थ हैं। हमारे मेन्यु में प्योर मिल्क जैसी कोई चीज नहीं। मिल्क मिल सकता है, और तरह के मिल्क मिल सकते हैं। लेकिन प्योर मिल्क से क्या मतलब है आपका? उन्होंने कहा, मतलब साफ है कि जिस दूध में पानी न मिला हो, उसको हम शुद्ध दूध कहते हैं। उस मुल्क के अंदर कोई देश ऐसा भी है, जहां लोग दूध में पानी मिलाते हों? दूध में पानी कोई किसलिए मिलायेगा? हमारा दिमा.ग खराब है? हम दूध में पानी किसलिए मिलायेंगे? तब उस मित्र को होश आया कि वो धार्मिक देश से आए हैं। और कहने लगे कि क्षमा करना, हमारे देश में तो बहुत मुश्किल है ऐसा दूध मिलना, जिसमें पानी न मिला हो।
मुझे लौटके बता रहे थे, मैंने कहा कि तुम्हें अभी पूरी हालतें पता नहीं हैं। वह जमाना गया, जब दूध में हिन्दुस्तान में पानी मिलाया जाता था। अब पानी में दूध मिलाया जा रहा है। वह पिछले जमाने की बातें कर रहे हो, अब धार्मिक हिन्दुस्तान और भी आगे बढ़ गया। और भी धार्मिक हो गया है। धार्मिकता होती है व्यक्तित्व की सुगंध में, धार्मिकता क्रिया में नहीं होती। धार्मिकता एक सुगंध है जो पूरे जीवन के आचरण में, पूरे जीवन की गंध, पूरे जीवन के व्यक्तित्व के खिलने से प्रकट हेती है। लेकिन यहां यही समझाया जाता रहा है कि इस तरह के थोथे काम कर लो, और धार्मिक हो जाओ। और बाकी जिंदगी में पूरी तरह अधर्म करो, उसका कोई डर नहीं है, क्योंकि सप्ताह में एक दिन सत्यनारायण की कथा करवा लेंगे। या कभी वर्ष में एक बार तीर्थ हो आएंगे। या मरते वक्त भगवान का नाम ले लेंगे। हद हो गई, जिस आदमी ने जिंदगी भर भगवान से कोई संबंध नहीं जोड़ा, वह भी सोचता है कि मरते वक्त नाम ले लेंगे। ऐसे कहिए और शोषण करने वालों ने... ।
एक आदमी मर रहा था उसके बेटे का नाम नारायण था, मरते वक्त उसने अपने बेटे को बुलाया नारायण, और आकाश वाला नारायण धोखे में आ गया और समझा कि मुझे बुला रहा है, वह फौरन चल दिया। तुम तो बुद्धू हो ही, आकाश में नारायण को भी बुद्धू बनाने की सोच रहे हो। वह अपने बेटे को बुला रहे थे। और नारायण धोखे में आ गए। अगर इतना सस्ता हो मोक्ष में चले जाना, तो कोई आदमी धार्मिक होने की कोशिश क्यों करे? मरते वक्त एक दफा नाम ले लेंगे, और अगर स्वयं की जबान बंद हो जाए, तो एक ब्राह्मण को किराए पर रख लेंगे। वह नाम कान में बोलता रहेगा, नारायण, नारायण। जिंदगी अखंड है, ऐसा नहीं होता कि जिंदगी भर

एक आदमी अधार्मिक रहा हो और मरते वक्त भगवान का नाम ले ले। पहला तो मजा यह कि भगवान का नाम नहीं है कोई। भगवान का कोई नाम नहीं है। आदमी का भी कोई नाम नहीं है। आदमी बिना नाम के पैदा होता है, नाम हम देते हैं। नाम कहीं भी नहीं है, नाम मनुष्य की इजाद है। भगवान का तो कोई भी नाम नहीं। नाम पुकारेंगे कैसे? लाख चिल्लाओं राम-राम, रहीम-रहीम, खाली आकाश में व्यर्थ चिल्ला रहे हो, उसका कोई नाम नहीं है जिसको तुम बुला रहे हो। उसको बुलाना हो तो उसका बुलाना बंद कर देना पड़ता है। चुप हो जाना पड़ता है, मौन हो जाना पड़ता है। मानों शब्द ही खो जाता है, विचार भी खो जाता है, सब खो जाता है। शास्त्र भी खो जाता है, सोया हुआ भी खो जाता है। वहां परिपूर्ण मौन है, टोटल साइलैंस है, वहां उसकी पुकार होती है। और जो राम-राम, राम-राम कर रहा है, उस आदमी का दिमाग खराब है और कुछ भी नहीं। अगर एक आदमी बैठके कुर्सी- कुर्सी, कुर्सी-कुर्सी करे तो हम उसका इलाज करवाएंगे। और एक को हम समझ रहे हैं कि धार्मिक, बड़े महात्मा उनको हम हाथ जोड़ रहे हैं। सब दिमाग विकृत है। शब्दों की पूजा पागलपन का, लक्षण है। शब्द का छूट जाना धार्मिक होने का लक्षण है। यह राम-राम का जो चक्कर चला रहा है, एक आदमी का मस्तिष्क, कोल्हू का बैल हो गया है। चक्करों के भीतर घूम रहा है, इसको हम कहते हैं कि धार्मिक है। जिंदगी एक अखंड धारा, गंगा निकलती है गंगोत्री से।
जिंदगी भर पूछता था, तिजोरी की चाबी, यह, वह, यह सब बातें पूछता था। अंतिम क्षणों में पूछा अपने बेटे को, किसी ने कहा निश्चिंत रहो, बेटा मौजूद है, उस आदमी ने और घबराकर पूछा कि नम्बर दो का बेटा कहां है? उसकी पत्नी ने कहा, सब यहीं है, नम्बर दो का भी मौजूद है। नंबर तीन? वह भी है, वह आदमी हाथ उठा कर उठने लगा। उसकी पत्नी ने कहा, आप लेटे रहें, आप उठें मत। तो उसने कहा नम्बर चार, पत्नी ने कहा, आप घबराते क्यों हैं? हम सब यहीं मौजूद हैं। नंबर चार भी यहीं मौजूद है। वह आदमी उठकर बैठ गया, नम्बर पांच कहां हैं? वह आपके पैर के पास बैठा है, आप घबराते क्यों हैं? उस आदमी ने कहा घबराऊं क्यों नहीं, फिर दुकान कौन चला रहा है? जब सब यहीं पर बैठे हैं। दुकान पर कौन है?
वह पत्नी भूल में थी कि प्रेम की याद आ रही है। जिंदगी भर जिसको पैसे
की याद आई हो, उसे मरते वक्त प्रेम की याद कैसे आ सकती है? असंभव है, इम्पॉसिबिलिटि है। चित्त के भी तो नियम हैं कुछ। चित्त में भी तो कोई स्थापत्य है। चित्त की भी तो कोई धारा है। चित्त जैसा निर्मित हुआ है, वही होगा आखिरी क्षण में। इसलिए धार्मिक होना कुछ ऐसा नहीं है कि आप आखिरी वक्त में धार्मिक हो जाएंगे, और न ही धार्मिक होना कुछ ऐसा है, कि तेईस घंटे आप धार्मिक रहें और एक घंटे आप धार्मिक हो जाएं। यह भी नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि तेईस घंटे सांस न लें और एक घंटे सुबह सिर्फ सांस लें? यह हो सकता है कि एक घंटे सांस लेंगे और तेईस घंटे सांस नहीं लेंगे। तो फिर दोबारा घंटा नहीं आयेगा, वह सांस लेने वाला। सांस एक सतत धारा है, चेतना भी सांस की तरह एक धारा है, आप एक घंटे के लिए धार्मिक नहीं हो सकते, हां, धार्मिक होने का धोखा दे सकते हैं, लेकिन किसको? सिवाय अपने के और किसी को भी नहीं। एक घंटे के लिए आदमी धार्मिक होने का सिर्फ धोखा दे सकता है। क्योंकि कोई आदमी अगर एक घंटे के लिए धार्मिक हो जाए, तो सारी जिंदगी धार्मिक होने की यात्रा में संलग्न हो जाएगी। तो धार्मिक होना इतनी बड़ी बात है। धार्मिक होना इतना बड़ा ट्रांसफोर्मेशन है। सारी चेतना का बदल जाना, और नया हो जाना। तो धार्मिक होने का भ्रम है लेकिन देश को, और इस भ्रम के कारण देश धार्मिक नहीं हो पाता है। धार्मिक होने की झूठी खूंटी गाड़ रखी है। और उस खूंटी को जगतगुरू, शंकराचार्य, और फलाने गुरू, और ढिकाने गुरू, सबके सब खूंटी को गाड़ते चले जाते हैं, ठोकते चले जाते हैं, ठोकते चले जाते हैं।
अभी मैंने पढ़ा, कल्याण में एक लेख देखा। देखके मैं हैरान रह गया, एक बीसवीं सदी में, एक भारत में ऐसी दुर्भाग्य की घटनाएं भी घटती हैं। शंकराचार्य दिल्ली में ठहरे हुए हैं कि मठ के, और एक आदमी उनके पास आया, और उसने हाथ जोड़के प्रार्थना की, मैं, हम लोग की एक छोटी सी मंडली है। हम चाहते हैं कि आप हमें ब्रह्मज्ञान पर चलकर उपदेश दें। शंकराचार्य ने नीचे

से ऊपर तक उस आदमी को देखा और कहा ब्रह्मज्ञान? कोट-पतलून पहन कर ब्रह्मज्ञान पाना चाहते हो। तो ऋषि-मुनि नासमझ थे, नहीं तो वह भी कोट-पतलून पहन लेते। कोट-पतलून पहनकर कभी किसी को ब्रह्मज्ञान हुआ है? बता सकते हो। वह आदमी घबरा गया होगा। वह बेचारा ब्रह्मज्ञान के संबंध में सुनने गया था, उसे पता नहीं था कि ब्रह्मज्ञानी की जगह एक दर्जी बैठा हुआ है। जिसका हिसाब कपड़े-लत्तों का है। अगर चमारों के पास जाओ तो सिवाय जूते के उनको कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। दर्जी के पास जाओ सिवाय कपड़े के उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। एक सन्यासी के पास हम आशा नहीं करते हैं कि कपड़े दिखाई पड़ेंगे उसको, वह तो कुछ और दिखना चाहिए, कपड़ों के पास। उसे कुछ और दिखना पड़ना चाहिए, जहां शरीर भी नहीं दिखाई पड़ता। और उन्हें कपड़े दिखाई पड़ रहे हैं। और यह जगतगुरू हैं, यह संयासी हैं, यह मुल्क को धार्मिक बना रहे हैं। यह सब धोखाधड़ी चलेगी तो यह मुल्क मरेगा, इस मुल्क में कभी क्रांति नहीं हो सकती। यहीं बात नहीं दब गई यह। आस-पास दस-पच्चीस लोग बैठे होंगे वहां। वह सब सराहने लगे कि महाराज, कितनी ऊंची बात कह दी। इन दोस्तों से पीछा नहीं छूटता महाराजों का। वह वहम पैदा करते रहते हैं कि बड़ी ऊंची बात कही जा रही है, महाराज का जोश और बढ़ गया होगा। महाराज का जोश उतना ही बढ़ता है, जितने अनुयायी नासमझ हों। उन्होंने कहा चोटी है? चोटी है कि नहीं? चोटी निकाल कर दिखाओ अपनी। नहीं थी चोटी। वह आदमी कैसा घबरा गया होगा? उस बेचारे का कैसा अपना हुआ है? ब्रह्मज्ञान पूछने गया था। और यहीं बात खत्म नहीं हो गई, जाहिलपन की हद हो गई। आखिरी जो बात उन्होंने कही हैरानी होती है। उस आदमी से पूछा कि खड़े होकर पेशाब करते हो कि बैठकर? क्योंकि खड़े होकर पेशाब करने वाले लोगों को ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता। यह मुझे पहली दफा पता चला कि ब्रह्मज्ञान का भी पेशाब करने के ढंग से संबंध है। इस स्टुपिडिटि का नाम धर्म है, इस मूर्छा का नाम धर्म है? इसको चलाएंगे इस देश में और आगे? इसको एक दिन चलाने की जरूरत नहीं है। एक क्षण चलाने की जरूरत नहीं है। वो झूठी खूंटी उखाड़ फेंक देने लायक है।
तकलीफ होगी जरूर बहुत। तकलीफ यह होगी कि हमारा अहंकार जुड़ गया है, इस बात से कि हम धार्मिक लोग हैं। और अहंकार बड़ी तकलीफ देता है, जब टूटता है। अहंकार जब खिसकता है तो प्राणों को बड़ा कष्ट होता है। मन होता है कि अपने अहंकार को संभाले रहो। आंख बंद रखो, मत देखो, उसकी तरफ, जो अहंकार को चोट पहुंचती है। और अहंकार बुनियादी कमजोरी है, बेसिक वीकनैस है। चाहे आदमी में हो, व्यक्ति में हो, चाहे राष्ट्र में हो।
मैंने सुना है एक दिन सुबह, एक सम्राट अपने घोड़े पर, एक छोटे से झोपड़े
के सामने रूका है। थका हुआ है, शायद रात भटक गया होगा, शायद शिकार पे निकला होगा, और रास्ता भूल गया, राजमहल नहीं पहुंच पाया। झोपड़े का मालिक एक गरीब बूढ़ा अपने दरवाजे पर बैठा उसको नमस्कार करता है। वह सम्राट कहता है, मैं बहुत भूखा हूं, दो-चार अंडे मिल सकते हैं। बूढ़े ने कहा निश्चित ही, स्वागत है। वह भागा हुआ भीतर गया और दो-चार अंडे लेकर आया, थोड़ा दूध लेकर आया। सम्राट ने नाश्ता किया, और चलते वक्त उससे कहा कि कितने पैसे हुए? उस बूढ़े ने कहा ज्यादा नहीं महाराज! सिर्फ सौ रूपये? सम्राट ने कहा सौ रूपये? चार अंडों, के सौ रूपये? बहुत महंगी चीजें मैंने जिंदगी में खरीदीं, लेकिन इतने महंगे अंडे यहाँ? आर एग्स सो रियर हियर? इतना मुश्किल है अंडे का मिलना क्या यहां? उस आदमी ने कहा, नहीं महाराज! एग्स आर नॉट रियर, बट किंग्स आर। अंडों का मिलना तो बहुत मुश्किल नहीं है, लेकिन राजाओं का मिलना बहुत मुश्किल है। उस सम्राट ने सौ रूपये निकाल के एकदम से दे दिये। उस बूढ़े की औरत बड़ी हैरान हुई। चार पैसे के अंडे नहीं थे, सम्राट के घोड़े की टाप सड़क पर बढ़ी तो उस बूढ़ी ने अपने पति से पूछा, आश्चर्य, कैसे लूट लिया तुमने उस आदमी को? सौ रूपये? चार अंडों के? क्या हो गया, क्या तरकीब थी? उस आदमी ने कहा, तुझे तरकीब पता नहीं। आदमी के भीतर एक कमजोरी है, जिसके भी भीतर हो, उसको लूटा जा सकता है। उसने कहा कौन सी कमजोरी? उस आदमी ने कहा, मैं तुझे एक कहानी बताता हूं अपनी जवानी की जिंदगी की। जब मैंने यह तरकीब सीखी। शायद तुझे समझ में आ जाए।

जब मैं जवान था, बहुत गरीब, बहुत परेशान था, तो एक गुरू से मैंने पूछा, कैसे रूपया कमाऊं। उसने कहा, रूपये हैं तुम्हारे पास? क्योंकि रूपये हो तो, रूपये-रूपये को खींच लाते हैं। रूपये नहीं थे। तो फिर उसने कहा तुम्हें तरकीब सीखनी पड़ेगी। ऐसी तरकीबें हैं कि बिना रूपये के भी रूपया खिंच आता है। वह क्या तरकीब है? उसने कान में मंत्र दिया, उसका मंत्र लेकर मैं बाजार गया। मैंने चार रूपये की पगड़ी खरीदी उधार, रूपये तो नहीं थे। रंगीन और चमकदार पगड़ी सर पर रखी और सम्राट के दरबार में पहुंच गया। इतनी चमकदार पगड़ी थी कि जिसकी भी नजर जाए और वह पगड़ी दिखाई पड़े। सब सस्ती चीजें चमकदार होती हैं। और चमकदार चीजों से सावधान रहना चाहिए। क्योंकि असली चीज कभी भी चमकदार नहीं होती है। असली चीज को चमकदार होने की जरूरत नहीं होती। नकली चीज को चमकदार होने के सिवाय कोई रास्ता नहीं होता। चमक में वह उसकी जिंदगी होती है, वह जो बाहर दिखाई पड़ती है, वही वह है, भीतर तो कुछ भी नहीं है। सम्राट को भी एकदम पगड़ी दिखाई पड़ी, बड़ी रंगीन, बड़ी चमकदार ऐसी पगड़ी उसने भी कभी नहीं देखी थी। उसने पूछा, पगड़ी कहां से ले लाए हो? तो उसे बूढ़े ने कहा, मैंने उस सम्राट को कहा कि महाराज बहुत महंगी चीज है। आपके बस के बाहर है। उसने कहा, क्या कहते हो? कितनी महंगी है? तो उसके गुरू ने उसे बताया था कि बता देना पांच हजार। उसने कहा, पांच हजार रूपये की है महाराज, विश्वास आता है? सम्राट ने कहा, हैरान कर दिया। और तभी वजीर जो बगल में बैठा था, वो झुका और सम्राट के कान में कुछ बोला। उस बूढ़े ने कहा कि मैं समझ गया, वजीर क्या बोल रहा है। क्योंकि जो आदमी किसी को लूटता रहता है, वह दूसरे को नहीं लूटने देना चाहता। मैं समझ गया वह क्या कह रहा होगा? सम्राट ने कहा कि पागल हो गए हो, लूटना चाहते हो, बेईमान कहीं के। कारागृह में डलवा दूंगा। तो उस बूढ़े ने कहा कि मैं हंसने लगा, मैंने कहा कि ठीक है वही सुनने को मिला, जो सुना था, खबर मिली थी। तो मैं जाऊं। क्षमा करें, गलती जगह आ गया। सम्राट ने पूछा, तेरा मतलब क्या है? तो मैंने कहा कि मुझे कहा है, इस पगड़ी के मालिक ने कि.जमीन पर एक ही ऐसा सम्राट है, एक ही इस पूरी पृथ्वी पर, जो इस पगड़ी को पांच हजार रूपये में खरीद सकता है। मैं उसी की खोज में निकला हूं, क्षमा करें महाराज, गलत जगह आ गया। उस सम्राट ने कहा, पगड़ी खरीदो, पगड़ी इसी वक्त खरीदो। वह पगड़ी पांच हजार रूपये में खरीदी गई।
ह्यूमन वीकनैस। आदमी की एक ही कमजोरी है, अहंकार। एक-एक आदमी की कमजोरियों में बदलाव होता है। और जब कोई पूरा समाज इस कमजोरी में पड़ जाता है तो, उसकी बर्बादी निश्चित हो जाती है। भारत अहंकार की वजह से बर्बाद हुआ है। और भारत आज भी अहंकार को ही लेकर जी रहा है। और कितने आश्चर्य की बात है कि अहंकार गिरने के कितने मौके आए, लेकिन हमने संभाल लिया। हजार साल गुलाम रहे लेकिन अहंकार को नहीं गिरने दिया। लातें खाइंर्ं, न जाने किन-किन कौमों की। जो भी कौम आई उसने लातों से गिरा दिया। लेकिन हम सब तरह से गिर गए लेकिन अहंकार को ऊंचा रखा, उसको नहीं गिरने दिया। दीन हुए, दरिद्र हुए, सब खो दिया। बाहर की संपदा खो दी, भीतर की आत्मा खो दी, सब खो दिया। लेकिन एक बात बचाए रखे, वो अहंकार, वो इगो कि हम, हम कुछ हैं। जगतगुरू हैं, धर्मनिष्ठ है, आध्यात्मिक हैं, यह बातें हमने बचाए रखीं। इन झूठी खूंटियों पर देश अटका है, अगर क्रांति चाहिए तो इस अहंकार को जाने दो। कष्ट होगा लेकिन इस कष्ट को झेल लेना जरूरी है। जैसे मां प्रसव की पीड़ा को झेलती है, नए जन्म के पूर्व। अगर इस समाज को नया जन्म चाहिए, तो इसे अहंकार को मिटाने की प्रसव पीड़ा से गुजरना ही पड़ेगा।
क्यों इतना जोर से मैं कहता हूं कि अहंकार को छोड़ना जरूरी हो गया? यह इसलिए कहता हूं कि जब तक अहंकार होता है, तब तक हम अतीत से बंधे रहते हैं। ध्यान रहे अहंकार हमेशा पास्ट का होता है, अतीत का होता है। भविष्य को हम जानते नहीं, उसका कोई अहंकार नहीं होता। अहंकार हमेशा पास्ट हैरिटेज का होता है। अतीत का होता है। वह जो पीछे हो चुका है, उसको संग्रहीत करके हम अहंकर को बनाते हैं। अहंकार जिस समाज में होता है, वह समाज अतीतोन्मुख होता है। वो समाज हमेशा पीछे की तरफ देखता है, वह समाज आगे की तरफ कभी नहीं देखता। और जो समाज आगे की तरफ नहीं देखता वह कैसे निर्धारण करेगा, वह कैसे भविष्य के अंजान रास्तों पे चलेगा? वह कैसे नए समाज को बनाएगा? वह कैसे नई

जिंदगी को पैदा करेगा? वह कैसे नए पथ पर चरण रखेगा? वह कैसे नये इतिहास, वह कैसे नये दिन, नई रातें, नये सूरज पैदा करेगा? तो सिर्फ पीछे देखता है, वह आगे कैसे देख सकता है?
अहंकारी समाज सदा पीछे देखता है। अहंकारी आदमी भी सदा पीछे देखता है। अहंकारी आदमी कहता है, हमें याद है, पदम भूषण की पदवी मिली थी। भारत रत्न हो गया था, जेल गया था 1942 में। वो पीछे देख रहा है। वह जो मर चुका है, उसका संग्रह किये बैठा है। अहंकार मरे हुए का संग्रह है। अहंकार डेड, जो जा चुका है, उसका संग्रह है। अहंकार हमेशा मृत संग्रह है। जीवित आदमी के पास अहंकार नहीं होता, क्योंकि जीवित आदमी जीता है वर्तमान में, भविष्य उन्मुख, आगे की तरफ देखता हुआ। आगे तो अभी कुछ किया नहीं है, इसलिए उससे अहंकार निर्मित नहीं होता। पीछे कुछ हो चुका है, उससे अहंकार निर्मित होता है। अहंकारी समाज पीछे की तरफ देखता है। अहंकारी समाज अतीत से जुड़ा रह जाता है। वह कहता है राम-राज्य, राम-राज्य चाहिए। जो हो चुका, वही चाहिए उसे फिर से। कुछ और नया बनाने की हिम्मत नहीं, कूबत नहीं। और राम-राज्य में क्या था? जिसकी वजह से चाहिए। क्या है राम-राज्य में? एक तानाशाही की व्यवस्था। जहां राजा की पत्नी के भी बचाए रखने का कोई भरोसा नहीं। एक समाज, जहां आदमी बिकता है गुलाम। आदमी बिकते थे, राम-राज्य के वक्त, बाजार में। दासता की दुनिया। एक ऐसा समाज, जहां राम जैसा अच्छा आदमी भी, एक गरीब शूद्र के कानों में सीसा पिघला कर डाल देता है, क्योंकि उसने वेद का मंत्र सुन लिया है। ऐसे बेहूदे समाज को फिर से ला देना चाहते हैं। ऐसे समाज को फिर से लाने की बात सोचते हैं। जिंदगी को पीछे ले जाना चाहते हैं। लेकिन जिन समाजों का अहंकार है, वो आगे की तरफ देखते ही नहीं, उनकी मजबूरी है। उनकी आंखे जो हैं, वो आगे की तरफ देखती नहीं है, उनका चेहरा पीछे की तरफ मुड़ा हुआ है। गर्दन जकड़ गई हैं। और गर्दन पैरालाइ.ज्ड हो गई है। उनकी हालत ऐसी है जैसे हम कोई कार बनाएं और पीछे की तरफ लाइट लगा दें, गाड़ी आगे की तरफ चले। और लाइट पीछे की तरफ पड़े, उल्टी, पीछे की उड़ती हुई धूल दिखाई पड़े, रास्ता दिखाई पड़े, तो दुर्घटना होनी निश्चित है। भारत के इतिहास में दुर्घटनाओं का मूल कारण भारत का सदा पीछे देखना है।
भारत का पूरा इतिहास दुर्घटनाओं का इतिहास है, कल भी दुर्घटनाएं होंगी, परसों भी होंगी, जिंदगी और नई दुर्घटनाएं लाएगी। अभी जिंदगी खत्म नहीं हो गई। और दुर्घटनाएं भारत में होती ही रहेंगी। क्योंकि भारत अभी भी पीछे ही देखता है, वह आगे की तरफ नहीं देखता। अहंकार पीछे की तरफ झुकाता है, अहंकार खो जाता है तो आदमी आगे की तरफ देखता है। कभी आपने ख्याल किया कि छोटे बच्चे कभी पीछे की तरफ नहीं देखते। छोटे बच्चे सदा आगे की तरफ देखते हैं। छोटे बच्चे भविष्य के सपने देखते हैं। उनका कोई अतीत होता नहीं है, देखेंगे भी तो क्या देखेंगे? कुछ पीछे होता ही नहीं है। पीछे क्या है? लेकिन बूढ़ा आदमी आपको पता है, कभी आगे की तरफ नहीं देखता। सदा पीछे की तरफ देखता रहता है। क्योंकि बूढ़े के आगे कुछ नहीं होता सिवाय मौत के। वहां एक अंधेरा पर्दा है, मौत का, वहां देखने से फायदा क्या है? वहां देखने से डर लगता है, वह पीछे लौटके देखता रहता है। वह कहता है, आहा, बचपन के दिन, जवानी की बातें, वह गीत, वह सपने, वह प्रेम, वह सब उसी में खोया रहता है। बूढ़ा आदमी जवानी में खोया रहता है, जितने जवान भी जवानी में नहीं होते। और इसलिए बूढ़ा आदमी जवानों से बड़ी ईर्ष्या करता है। वह ईर्ष्या जवानी की याददाश्त के कारण है, अन्यथा कोई कारण नहीं है। बूढ़ा पीछे देख रहा है, पीछे देख रहा है। और जो बूढ़ा आदमी पीछे नहीं देखता, वह बूढ़ा आदमी मरते वक्त तक बच्चा होता है। उसकी जिंदगी में कभी बुढ़ापा नहीं आता। बुढ़ापा उम्र की बात नहीं है, देखने के ढंग की बात है। अगर बच्चा भी पीछे की तरफ देखने लगे तो बूढ़ा हो गया। अगर बूढ़ा आदमी मरते क्षण तक भी पीछे की तरफ न देखे, और आगे की तरफ देखे तो वह आदमी सदा जवान है, और ऐसा आदमी अमरत्व को उपलब्ध हो जाता है। ऐसे आदमी को मृत्यु छू भी नहीं पाती। क्योंकि ऐसा आदमी मृत्यु के क्षण में भी, जो मृत्यु के आगे उसको देख लेता है, वह रौनक। सुकरात मर रहा है, उसको जहर दिया जा रहा है। बाहर जहर घोटा जा रहा है।
वह जो आदमी जहर घोट रहा है, वह धीरे-धीरे घोट रहा है, ताकि सुकरात जैसा

अच्छा आदमी थोड़ी देर और जी ले। लेकिन सुकरात बार-बार दरवाजे पर उठकर पहुंच जाता है, कहता है, मित्र बड़ी देर लगा रहे हो, जल्दी करो, समय हुआ जाता है। वह आदमी अपने सिर पह हाथ फेर लेता है। वह कहता है, पागल हो गए हो सुकरात? मैं तुम्हारी वजह से धीरे-धीरे हाथ चला रहा हूं। मेरे आंसू टपक रहे हैं, मेरा हृदय कंप रहा है, कि आज मैं इतने अच्छे, इतने प्यारे आदमी को जहर दे रहा हूं। जल्लादों का हृदय कंप जाता है, प्यारे आदमियों को सूली देते वक्त। लेकिन पुरोहितों, पण्डितों, नेताओं का दिल नहीं कंपता। जल्लाद भी रोते हैं, लेकिन जिनको हम सज्जन कहते हैं, वो नहीं रोते। आज तक दुनिया में अच्छे लोगों को सज्जनों ने सूली दी है। प्यारे लोगों को, जीसस को लेकिन सुकरात कहता है कि जल्दी करो, मित्र। वह पूछता है, तुम पागल हो गए हो, इतनी जल्दी क्या है मरने की? सुकरात कहता है, जल्दी बहुत है, क्योंकि मैं देखना चाहता हूं, मृत्यु के आगे क्या है?
नहीं याद कर रहा है बचपन को, नहीं याद कर रहा है उन दिनों को, जो बीत गए। मरते क्षण में भी नहीं ख्याल कर रहा है वह जो बीत चुका। बीत चुका वह बीत चुका, उसके अब क्या ख्याल की जरूरत है। अभी जो आने को है, दी अननॉन, वह जो अज्ञात द्वार पर खड़ा है, वह उसको झांक लेने की तबियत है। तड़प रहा है, मित्र रोते हैं और कहते हैं, सुकरात मत करो जल्दी। सुकरात कहता है, जिंदगी तो बहुत देख ली, मौत नहीं देखी। अनजान, अपरिचित, नई उसे देखने का मन कर रहा है।
ये आदमी जवान है, यह आदमी कभी बूढ़ा नहीं हो सकता। यह हजारों वर्ष जिंदा रहे, बूढ़ा नहीं हो सकता। यह मर जाए तो भी यह आदमी मरता नहीं, क्योंकि यह आदमी जो भविष्य के प्रति इतना उन्मुख है, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है। चाहे व्यक्ति हो, चाहे समाज। जो समाज भविष्य के प्रति सतत उन्मुख है, वो समाज कभी नहीं मरता, वह समाज सदा जवान रहता है। भारत मर गया, वह अतीत की तरफ उन्मुख है, भारत जवान नहीं रहा। और भारत को जवान बनाना जरूरी है, तो भारत में क्रांति हो सकती है, जवानी क्रांति करती है, बुढ़ापा क्रांति कैसे कर सकता है? पूरे देश की आत्मा बूढ़ी हो गई है, क्यों? पीछे देखने की वजह से। देख रहे हैं, रामलीलाएं। बैठे हैं हर वर्ष, अभी जाओ रास्ते से निकला हूं, होली जल रही है। आग लगा के बैठे हुए हैं लोग। अहमदाबाद में बीसवीं सदी में आने वाले बच्चे क्या सोचेंगे, कि कौन लोग रहते थे? आग जलाते थे एक दिन बैठ कर। दिमाग दुरुस्त था कि खराब था? क्या प्रयोजन था, क्यूं यह सब पागलपन जारी है? और कोई कारण नहीं, पीछे का जो कुछ बच गया है वो, बंध गया, छोड़ने की हिम्मत नहीं। आग जलाना भी नहीं छोड़ सकते और क्या खाक छोड़ा जा सकता है। यह बूढ़ा चित्त, यह मरा हुआ चित्त, यह पीछे की तरफ देखने वाला अहंकारी चित्त, जाना चाहिए। इसलिए तीसरा सूत्र कहता हूं, समाज के अतीत से निर्मित अहंकार का त्याग। बिल्कुल पूरी तरह त्याग, ताकि चित्त नया हो जाए। फ्रेश माइंड पैदा हो जाए, और मुल्क के पास ताजा दिमाग पैदा हो जाए। जो पीछे के बोझ से घिरा हुआ नहीं है। जो आगे की तरफ देखता है। चांद-तारों की तरफ, जो दूर हैं। क्यों? आगे की तरफ देखने के लिए इतना आग्रह क्यों करता हूं? इसलिए कहता हूं कि जो आगे की तरफ देखता है, वह क्रियेटिव हो जाता है। सृजनात्मक हो जाता है। क्योंकि आगे की तरफ सिर्फ देखा नहीं जा सकता, आगे को निर्मित करना पड़ता है। आगे चलना है, जीना है, तो उसको निर्मित करना पड़ता है। पीछे सिर्फ देखा जा सकता है, पीछे कुछ निर्मित नहीं करना है आपको। सिर्फ देखना है। पीछे सिर्फ तमाशबीन हुआ जा सकता है, पीछे सिर्फ नाटक देखना है और कुछ भी नहीं करना है। आगे, आगे कुछ करना है। आगे कुछ करना पड़ेगा। आगे जिंदगी को पैदा होना है, निर्मित होना है। तो जो समाज आगे देखने लगता है, वो सृजनात्मक हो जाता है। हम कहां देखते हैं, इस पर बहुत कुछ निर्भर है। मैंने सुना है, यूनान में एक बहुत बड़ा ज्योतिषी था। वो ज्योतिषी एक दिन सांझ को निकल रहा है, तारों को देखता हुआ। एक गड्ढे में गिर पड़ा, भूल से। चिल्लाया बहुत, कोई नहीं था पास। एक बूढ़ी का झोपड़ा था, वो बुढ़िया आई। बमुश्किल उस बूढ़ी औरत ने उस ज्योतिषी को बाहर निकाला, उसके दोनों पैर टूट गए थे। उस ज्योतिषी ने उसे बहुत धन्यवाद दिया। और उस बूढ़ी औरत से कहा कि शायद तुझे पता नहीं कि मैं एक बहुत बड़ा ज्योतिषी हूं। मेरा नाम कभी सुना?

चांद-तारों के संबंध में मुझसे ज्यादा जानने वाला कोई आदमी नहीं। अगर तुझे कभी ज्योतिष के संबंध में कुछ पूछना हो तो मेरे पास आ जाना, सम्राटों को भी मैं बिना फीस लिये, नहीं कुछ कहता हूं। तुझसे बिना फीस लिये, कुछ कहूंगा। उस बूढ़ी औरत ने कहा, पागल बेटे, मैं कभी नहीं आऊंगी। उसने कहा, क्यों? तो उसने कहा, जिसे जमीन के गड्ढे ही नहीं दिखाई पड़ते, उसे चांद-तारों क्या भरोसा, उसके चांद-तारों के ज्ञान का, जिसको जमीन का आगे का एक कदम गड्ढा नहीं दिखाई पड़ता, वह उतना दूर, उतने आगे के तारों को देखता होगा, यह भरोसे की बात नहीं बेटा, मैं कभी नहीं आऊंगी। उस ज्योतिषी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उसी दिन मेरा ज्योतिष पूरा हो गया। मेरी हिम्मत टूट गई। उस बूढ़ी ने ठीक कहा था।
मोक्ष को देखता है भारत। स्वर्ग को देखता है, नरक को देखता है। आगे का इंच भर पहले का गड्ढा दिखाई नहीं पड़ता। अहमदाबाद की ज्योग्राफी पता नहीं होगी। लेकिन नर्क का नक्शा लिये बैठे, बता सकता है आदमी कि नरक में फलां- फलां जगह, यह-यह। स्वर्ग में यह-यह। बैठे हैं मंदिरों में लोग, पूछ रहे हैं, महाराज देवताओं की कितनी योनियां होती हैं? और महाराज बता रहे हैं। पूछने तक तो ठीक था, पूछने वाले नासमझ हो सकते हैं। लेकिन बताने वालों के साथ --। मैंने सुना है एक दिन एक स्कूल में बड़ी अजीब घटना घटी। एक छोटा सा स्कूल है। बहुत स्कूल घबराया हुआ था। सारे स्कूल के बच्चे बहुत चिंतित थे। एक इंस्पेक्टर आने वाला है, निरीक्षण के लिए, और खबर आ गई कि उसका दिमाग खराब है। और वो ऐसे प्रश्न पूछता है, जिनके उत्तर हो ही नहीं सकते। और फिर रिपोर्ट खराब कर देता है। तो ना मालूम किस-किस तरह के प्रश्न बच्चों को सिखाए जा रहे हैं। तैयार बच्चे किये गए हैं, इंस्पेक्टर आ गया। वो दिन आ गया। इंस्पेक्टर भीतर आया। एक कक्षा विशेष रूप से तैयार की गई है। सब बुद्धिमान बच्चे इकट्ठे कर लिये गए हैं। हेडमास्टर खड़ा, मास्टर खड़े है, सब खड़े हैं। उस इंस्पेक्टर ने कहा कि बेटों, एक सवाल पूछता हूं, और यह सवाल मैं बहुत जगह पूछा, इसका जवाब अब तक कोई नहीं दे पाया। अगर तुमने इसका जवाब दे दिया तो फिर मैं दूसरा सवाल नहीं पूछूंगा। क्योकि मेरा नियम यह है चावल का एक दाना हंडी से निकाल कर देख लेना काफी होता है। और अगर इसका जवाब तुम नहीं दे सके तो फिर मैं हूं और तुम हो, और आज का दिन है। इसलिए इसको बहुत सोच के जवाब दे देना। सब सांसे रूक गई। उसने प्रश्न पूछा, बड़ा सरल प्रश्न पूछा। और प्रश्न ये पूछा कि "हवाई जहाज दिल्ली से उड़ा कलकत्ते की तरफ, दो सौ मील प्रति घंटा की रतार से, तो तुम बता सकते हो कि मेरी उम्र क्या है? बच्चे रह गये, उनका प्रधान अध्यापक रह गया कि हो गया खत्म काम। क्योंकि हवाईजहाज किसी रतार से उड़े, और दिल्ली से उड़े कि पेचिंग से उड़े, और कहीं भी जाए, इससे किसी इंस्पैक्टर की उम्र का क्या संबंध? लेकिन आश्चर्य इस पर नहीं हुआ, क्योंकि इंस्पैक्टर तो पागल था। एक लड़का जोर-जोर से हाथ हिलाने लगा। शिक्षक घबरा गए, कि यह तो पागल है, यह क्या उत्तर देगा? क्योंकि इसका कोई भी उत्तर गलत होगा। क्योंकि प्रश्न ही गलत, बेईमानी, एब्सर्ड है। लेकिन उस बच्चे को पीछे से इशारा किया अध्यापकों ने, लेकिन वह तो जोर से हाथ हिला रहा है। वह किसी को नहीं देख रहा। इंस्पैक्टर तो खुश हो गया, और उसने कहा यह बच्चा हिम्मतवर है, यह पहला मौका है कि इस प्रश्न के उत्तर को देने की किसी ने हिम्मत की। कोई फिक्र नहीं, गलत भी हो तो, तुम बेटे खड़े हो जाओ। मैं बहुत खुश हूँ, तुमने हिम्मत तो की। उस लड़के ने कहा हिम्मत का सवाल नहीं, मेरे सिवाय इस पृथ्वी पर इसका उत्तर कोई दे नहीं सकता। आपकी उम्र चवालिस वर्ष है। इंस्पैक्टर हैरान रह गया, उसकी उम्र चवालिस वर्ष थी। उसने कहा, बेटा तुमने किस विधि से पता लगाया? उसने कहा विधि बहुत आसान है, मेरा बड़ा भाई है उसकी उम्र बाईस वर्ष है, वह आधा पागल है। आपकी उम्र चवालिस वर्ष होनी ही चाहिए।
यह सब पागलों की जमात है। इस मुल्क में बहुत भारी है। जिंदगी का एक कदम आगे का दिखाई नहीं पड़ता। स्वर्ग-नर्क का ठेका समझाने वाले लोग बैठे हैं। वह कहते हैं कि हम चिट्ठी लिख देंगे। चिट्ठी हम भगवान को लिख देंगे। मैं अभी सूरत में था, कुछ दिन पहले। वहां मैं उनसे कह रहा था, सूरत में,
कि कोकले में यूरोप में टिकटें बेची लोगों के लिए। एक-एक लाख रूपये की

टिकिट थी। जो टिकिट ले लेगा उसको ही स्वर्ग में प्रवेश मिलेगा। और हजारों लोगों ने टिकिटें खरीदीं। टिकिट उनको दे दी गई। और कब्र मिट्टी के ऊपर उनको लिटा दिया गया। पता नहीं उनको कहीं जाना, प्रवेश वगैरह मिला कि नहीं मिला। वह टिकिटें मान्य हुई कि नही हुई। वह कुछ पता नहीं। मैं यह कह रहा था, एक आदमी ने मुझे आकर कहा, आप कह रहे हैं मध्ययुग की, सूरत में मुसलमानों का एक समाज अभी भी, अभी भी, और उनका नेता, अभी भी चिट्ठी लिख देता है, रूपये लेकर भगवान के नाम। और वह चिट्ठी रख देते हैं, कब्र में, वह चिट्ठी दिखा देना। मैंने कहा, एक-आध कब्र तो उखाड़ के देखों पागलो, चिट्ठी वहीं मिलेगी। यह सब क्या हो रहा है? यह सब क्या है? यह कैसा है हमारा समाज? यह कैसा
है देश? यह कैसी है संस्कृति? कैसा है चित्त? नहीं, हम असल में तथ्य को, जो है, उसको, जो आ रहा है तथ्य उसको, देखने से बचने के लिए कल्पनाओं में, स्वर्गों में, और मोक्षों में भटकते हैं। यह बचने की तरकीब है, यह एस्केप है। जिंदगी सामने खड़ी है, उससे बचने के लिए स्वर्ग और मोझ में चले जा रहे हैं। ताकि उनकी बातों में उलझ जाएं और हमें जिंदगी को फेस न करना पड़े, जिंदगी का मुकाबला न करना पड़े। हिन्दुस्तान हजारों सालों से जिंदगी का मुकाबला नहीं कर रहा है। कैसे क्रांति होगी? क्रांति होती है एनकाउंटर से। क्रांति होती है जिंदगी का मुकाबला करने से। जिंदगी सवाल लाती है, जिंदगी बड़े कठिन सवाल लाती है। जिंदगी ऐसे सवाल लाती है कि जिनका कोई उत्तर शास्त्रों में नहीं है। उस जिंदगी से मुकाबला करना जरूरी है। लेकिन कौन करेगा मुकाबला, पीछे देखने वाले लोग? कौन करेगा मुकाबला, वे लोग जिनको ये ख्याल है कि सब अज्ञेय, सब ज्ञान उनको मिल चुका है? कौन करेगा मुकाबला, अहंकार से भरे हुए लोग, नपुंसक लोग? जिनके पास सिवाय अहंकार के और कुछ भी नहीं है। और अहंकार से.ज्यादा इंपोटेंट दुनिया में कुछ भी नहीं है। वो बिल्कुल पौच, उसके भीतर कुछ भी नहीं है, खाली खोल। कौन करेगा जिंदगी का मुकाबला? इसलिए तीसरा सूत्र आपसे कहता हूं कि जाने दें अहंकार को। छोड़ दें वो खूंटी झूठी जिससे हम बंधे हैं। उखाड़ें उसको, उखाड़नी पड़ेगी। क्योंकि उसको गाड़ी। वो ऊंट के साथ ही नहीं, वह हमारे साथ भी यही हुआ है। है नहीं खूंटी, लेकिन क्योंकि गाड़ी है ऋषि-मुनियों ने बहुत जोर से, उसे उखाड़ना पड़ेगा, उस खूंटी को उखाड़ कर फेंकना पड़ेगा। लेकिन वह ऋषि-मुनि बड़ी कोशिश करेंगे कि खूंटी न उखाड़ी जा सके।
आज ही किसी सज्जन ने, किसी स्वामी ने चुनौती दी है कि मुझे जवाब देंगे वो। मुझे जवाब देने की जरूरत, महत्वपूर्ण नहीं है। मैं कहता नहीं कि मेरी बातें मान लो। मैं सिर्फ इतना कहता हूं कि जो मैं कहता हूं अगर उससे आपका चिन्तन भी शुरू हो जाए तो भगवान की बड़ी कृपा। मानने का कोई सवाल नहीं, इसलिए जवाब का कोई सवाल नहीं है। मैं किसी को मानने के लिए नहीं घूम रहा हूं कि जो मैं कह रहा हूं, सत्य है। मैं तो सिर्फ यह कह रहा हूं कि तुम्हारे माने हुए सत्य संदिग्ध हैं। उन पर फिर से सोच लो एक बार, अगर जिंदगी को आगे बढ़ाना है। मानके मत बैठ जाओ, उनको फिर से सोचो, इसलिए जवाब का सवाल नहीं है, चुनौती का सवाल नहीं है। यह चुनौती किसी स्वामी, किसी संयासी, को, किसी मठाधीश के लिए नहीं दी जा रही है। यह चुनौती इस मुल्क के आने वाली युवा पीढ़ी के लिए है। मठ के चारे को क्या करना है? उनसे क्या प्रयोजन है? बस वो अपने मंदिरों में राम-राम जपो, तुम्हें जो करना है करो। तुमसे हम कोई बात नहीं कर रहे। हम इस योग्य नहीं मानते कि कोई बात करने का कोई फायदा है, कोई अर्थ है? जिंदा आदमी चाहिए जिससे कुछ बात हो सके। तुम्हारे पास बंधे हुए उत्तर हैं, तुम उन्हीं को दोहराए चले जाओगे।
अभी वहां एक बैठक हुई छोटी-मोटी। एक मित्र ने लाकर मुझे खबर दी है, उस बैठक में उन्होंने कहा क्योंकि मैंने कहा प्रेस कॉन्फ्रेंस में कि जो आदमी यज्ञ में एक करोड़ रूपये जलवाता है, वह आदमी क्रिमिनल है। वह आदमी अपराधी है। वह आदमी देश का दुश्मन है। देश गरीब है, भूखा मर रहा है, उसका एक करोड़ रूपया तुम आग में जलाओगे। और साधारण आदमी, अगर कोई आदमी एक करोड़ रूपये में आग लगा दे, तो वह साधारण जुर्म नहीं है। लेकिन जो आदमी धर्मिक क्रियादान के नाम से आग लगाता है वह ज्यादा खतरनाक है। वह पायस क्रिमिनल है। वह धार्मिक अपराधी है, इसलिए ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि उसका अपराध

उसको लगता है कि धार्मिक कार्य कर रहा है। और जब अपराध धार्मिक मालूम पड़े, तो बहुत खतरा है। क्योंकि फिर अपराध से बचने का उपाय नहीं रह जाता।
तो मैंने यह कहा कि जो लोग कहते हैं कि हमारे यज्ञ के द्वारा वियतनाम में क्रांति हो जाएगी, फलां जगह यह हो जाएगा, पानी गिर जाएगा, गरीबी मिट जाएगी। वह पहले से तय करके यज्ञ करें, कि इस यज्ञ का यह परिणाम होगा, और अगर वह परिणाम हो जाए, तो हम मानेंगे कि यह बात ठीक है। लेकिन यज्ञ तुम कर लेते हो, दुनिया में बहुत परिणाम रोज हो रहे हैं, तुम कह देना हमारे यज्ञ से यह परिणाम हो रहे हैं, फलाने घर में बच्चा पैदा हुआ, वह हमारे यज्ञ से हो रहा है। और फलां आदमी की हवेली बड़ी हो गई, वह हमारे यज्ञ से बड़ी हो गई। कोई दुनिया में विज्ञान का भी अर्थ है, तर्क का भी कोई अर्थ है कि नहीं? उन्होंने आज जवाब दिया है मुझे कि जो घी हम जलाते हैं, वह बेकार नहीं जाता। वह घी से बादल बनते हैं, और बादलों से वर्षा होती है। पागल हो, घी जला कर वर्षा करनी पड़ेगी। घी से वर्षा कर रहे हैं जला कर वह। कितनी वर्षा करियेगा, कितना घी जला कर। एक-आध प्रयोग सालों में, थोड़ा-बहुत पानी बरसा के घी से दिखला दो, यह बातचीत करने से नहीं चलेगा अब। यह मुल्क तैयार हो रहा है, इसके जवान तैयार हो रहे हैं, गर्दन पकड़ लेंगे, इस तरह की झूठी बातें की तो। प्रयोगशालाएं हैं हमारे पास, अब यह मुल्क कोई दो हजार साल पहले का नहीं है। हमारे पास प्रयोगशालाएं हैं कि पानी कैसे बनता है? हम जानते हैं। पानी कैसे निर्मित होता है? यह हम जानते हैं। भाप कैसे बनती है? यह हमें पता है। अब मंत्र पढ़ कर और घी जला कर तुम हमको धोखा नहीं दे सकते हो। जवाब मुझे नहीं देना पड़ेगा, जवाब तुम्हें देना पड़ेगा, कल इस पूरे मुल्क के सामने। यह पूरे मुल्क की अदालत में एक-एक जुर्मी की तरह खड़े किये जाओगे। उसके पहले की खड़े किये जाओ, जवाब-सवाल देना छोड़ो, समझने की कोशिश करो। यह चुनौती मैं, यह चुनौती पूरे मुल्क की चेतना के लिए है, पूरा मुल्क कैसा सोया हुआ है? एक आदमी इकट्ठा कर लेगा करोड़ रूपये, और कर लेगा इसमें कोई शक नहीं है। अभी शायद छत्तीस लाख जला दिये। छत्तीस लाख जल सकते हैं तो उसकी हिम्मत और बढ़ गई। जब एक करोड़ जलवा सकते हैं हम। और छत्तीस लाख जलाने से उसकी इज्जत बहुत बढ़ गई। नामालूम कितने नासमझ पैर छूने लगे होंगे? नाजाने कितने नासमझ महात्मा कहने लगे होंगे? अपराधियों को महात्मा कब तक कहोगे? यह कब तक चलेगा, यह दुःख? यह पीड़ा और दुर्भाग्य कब तक खींचना है? यह जवाब तो पूरे मुल्क को देंगे, जवाब मुझे देने का सवाल नहीं है। अब यह सोचना पड़ेगा लेकिन। और मेरा कहना यह है, मैं यह कहता हूं कि जो लोग यज्ञ करते हों, वह प्रयोगशाला में प्रमाणित कर दे कि हमारे यज्ञ से यह-यह फायदा होता है। और अगर फायदा सिद्ध हो जाएगा, तो हम ही क्यों, सारी दुनिया यज्ञ करेगी। फिर हम यज्ञ ही करेंगे और कुछ भी नहीं करेगे। जब उसी से सब कुछ हो सकता है। हम सारी दुनिया को, मैं अपनी तरफ से दुनिया को समझाने निकलूंगा कि यज्ञ करो। लेकिन यज्ञ तुम्हारी बातों से थोड़ी सिद्ध होता है।
हम इस बात को भूल ही नहीं पा रहे हैं, हजारों सालों से, हम सिर्फ शब्दों पर जीते हैं। सिर्फ शब्दों पर जीते हैं। किताब में लिखा है, बस काफी है। किताब में लिखे हुए से कोई चीज सत्य हो जाती है। छपा हुआ अक्षर, सच हो जाता है? छप गया और सच हो गया। किसने लिख दिया है? उस आदमी का कितना बल है? कितनी प्रामाणिकता है, क्या आथेन्टिसिटि है। उस आदमी का कितना विज्ञान है? साइकिल का पंचर जोड़ना नहीं बना सकते जो, वह यज्ञ करके दुनिया में शांति करवा देंगे। कुछ, कुछ भी साइंटिफिक होने का तमी.ज, कोई वैज्ञानिक बुद्धि का थोड़ा बहुत सबूत दो, यह उत्तर, सवाल-जवाब देने का नहीं है। कोई मैं वेद के मंत्रों से निर्णय नहीं ले रहा हूं कि इसका क्या अर्थ है? इधर जिंदगी के असली सवाल हैं, उधर ऋग्वेद के मंत्रों को बीच में बैठकर चलते-चलते करना शास्त्रार्थ। यहां जिंदगी के मामले में नहीं चलेगा ये। यहां जिंदगी तथ्य मांगती है, तथ्य मांगती है, सत्य मांगती है। मैं आपसे कहूंगा कि जिस समाज में, जिस गांव में, जिस राज्य में, जिस देश में इस तरह की नासमझी चलती है, अगर आप खड़े होकर देखते हो तो आप भी जिम्मेदार हो। आप भी इस अपराध के भागीदार हो। क्योंकि खड़े होकर देखना भी जुर्म है। उसके लिए जिस आदमी में थोड़ी बुद्धि है, उसे निश्चित कुछ किया जाना चाहिए। इस देश

में एक यज्ञ न हो, इसकी फिक्र की जानी चाहिए। और अगर उनको बहुत उत्सुकता है तो एक करोड़ रूपया इकट्ठा करें, एक रिसर्च संक्षिप्त तय करें, कुछ वैज्ञानिक मिल कर प्रयोग करके देखें, उस एक करोड़ रूपये से कि यज्ञ से क्या हो सकता है? तो समझे में आने वाली बात होगी, उससे निर्णय होगा। मेरे जवाब से, और मुझे जवाब देने से, कहीं मंडली में बैठके कुछ होने वाला नहीं है। वह पुराने समाज, वह पुराने लोग सब झूठी कीली को ठोकने की कोशिश करेंगे। वह हर तरह से कोशिश करेंगे, और अगर उन्हें ऐसा लगा कि मेरी बातों का वह जवाब नहीं दे सकते हैं, तो वह पीछे से छुरी भोंकने की कोशिश करेंगे। वह कहेंगे इस आदमी का चरित्र गड़बड़ है। यह आदमी एक स्त्री के साथ बात करता देखा गया। वह फिर यह करेंगे। यह कमजोरी की आखिरी सीमा है। जब कोई जवाब देने को नहीं बचता तो कमजोर आदमी आखिरी में यह कहते हैं कि वह पीछे से कुछ उल्टी-सीधी शुरू करो। कौन है वह स्त्री, आज एक अखबार में, किसी ने एक वक्तव्य दिया है। और उस सज्जन ने कहा है कि वह मेरे एक्स-डिसाइकिल है। मैं हैरान हो गया, मेरा कोई डिसाइकिल ही नही तो एक्स-डिसाइकिल कैसे हो सकता है? मैंने एक शिष्य नहीं बनाया, मैं किसी आदमी को इतना मूर्ख नहीं समझता कि उसको शिष्य बनाऊं। हर आदमी की अपनी प्रज्ञा जागृत होनी चाहिए। मेरा को शिष्य नहीं तो भूतपूर्व शिष्य कैसे हो सकता है?
उन्होंने वक्तव्य दिया है, कोई दो लड़कियों को उन्होंने भीतर जाते देखा। और जब वे बाहर निकली तो बहुत घबराई हुई थीं। अब यह वक्तव्य दे दिया, वह कौन दो लड़कियां हैं? वह क्यों घबराई हुई थी? वे लड़कियां भी बाद उसके आ गईं। और उन्होंने मुझसे आज आकर कहा, कि हम हैरान हैं। एक लड़की उनमें से मेरे आकर रोके गई थी। क्योंकि उसकी िंजंदगी में कोई तकलीफ थी, कोई पीड़ा थी। आकर रोने लगी, उसके आंसू बह गए, उसका मन हल्का हो गया, वह रोकर बाहर निकली। वह लड़की भी यहां मौजूद है। वह रोकर बाहर निकली, फिर उस सज्जन ने वक्तव्य दे दिया कि वह घबरा के गई। वह घबराती उनको दिखाई पड़ी होगी। वह रोकर गई थी। लेकिन इससे क्या सिद्ध हो जाता है? इससे वह सिद्ध कर रहे हैं कि मेरे चरित्र में कोई खामी है। इसलिए वह लड़की घबराकर, रोती हुई, बाहर निकली।

इसकी फिकर छोड़ दो मेरे चरित्र की। क्योंकि न मुझे गुरू बनना है, न मुझे कोई महामंडलेश्वर बनना है, न कोई जगतगुरू बनना है। मेरे चरित्र की फिक्र ही मत करो। मुझे किसी से चरित्र के लिए सर्टिफिकेट नहीं चाहिए। क्योंकि मुझे किसी तरह के आदर की, सम्मान की, श्रद्धा की कोई भूख नहीं है। मैं जो कहता हूं, उसका उत्तर दो। यह भी समझ लो कि एक चरित्रहीन आदमी कह रहा है, तो भी मेरी बात इसलिए गलत नहीं हो जएगी कि मैं चरित्रहीन हूं। यह भी समझ लो कि चरित्रहीन आदमी है, क्योंकि इससे कोई फर्क ही नहीं है। चरित्र का विचार सिवाय चरित्रहीनों के और कोई भी नहीं करता। बीमार आदमी होता है तो चौबीस घंटे स्वास्थ्य का विचार करता है। स्वस्थ आदमी कभी स्वास्थ्य का विचार नहीं करता। चरित्र जिसके पास है, वो चरित्र-वरित्र की बातों में नहीं पड़ता, जिनके पास चरित्र नहीं होता, वह इन्हीं टुच्ची बातों में जीवन खराब करते हैं। और इसकी फिक्र छोड़ दो, यह भी मान लो कि एक आदमी चरित्रहीन है, और मैं चरित्रहीन हूं, और मैं कहता हूं कि यज्ञ में घी जलाना पगलपन है। तो क्या मेरी यह बात इसलिए गलत हो जाएगी कि चरित्रहीन आदमी ने कहा है? कि उससे एक औरत मिलने जा रही थी, वह रोती हुई बाहर निकली? इसलिए गलत हो जाएगी यह बात। तब तो फिर बड़े अदभुत लोग हो, तब तो फिर उसे इंस्पैक्टर से तुम्हें मिलना चाहिए। और सबकी अपनी-अपनी उम्र चवालिस साल लिखवा देने का सर्टिफिकेट मिलना चाहिए।
लेकिन जब जिंदगी सवाल उठा देती है, और जवाब नहीं सूझते, तो नासमझों को, कमजोरों को इसी तरह की बातें सूझती हैं। इन बातों के पीछे भी आंख हैं। जिन लोगों के आलोचना में मैं कुछ कह रहा हूं वह गांधीवादियों की एक जमात है, वह एक नया मठ है महामंडलेश्वरों का। वह नया मठ खड़ा हो रहा है। पुराने मठों से छुटकारा नहीं हो रहा है और नए मठ खड़े होते जा रहे हैं। पुराने संयासियों से हम मरे जा रहे हैं और नये संयासी खड़े हुए चले जा रहे हैं। उनका धंधा पुराने संयासियों का धंधा भजन-कीर्तन था, इन नये संयासियों का धंधा सेवा

इत्यादि है। और वो सेवा ही उनका धंधा है। वही आजीविका। वही उनका काम है और उनको, उनको तकलीफ होती है, जवाब दें मेरी बातों का। चाहे पुराने मठ के लोग हों, चाहे नए मठ के लोग हों। मैं जवाब चाहता हूं। मेरी बाबत फिक्र छोड़ दें। और यह मैं कह देना चाहता हूं। इस तरह की झूठी बातें करने से, लोगों को धोखे में नहीं डाला जा सकता। और डर मुझे सदा यह लगता है, कि कहीं लोग क्रोधित न हो जाएं, इस तरह की झूठी बातों से, न मालूम कितने लोगों ने मुझसे कहा कि इस आदमी को हम जाके अभी देखते हैं। मैंने कहा उस बेचारे को छोड़ो गरीब आदमी है, कहीं नौकरी खोज रहा होगा किसी विद्यातीर्थ में, ऊपर चढ़ने की कोशिश कर रहा होगा, मेरे खिलाफ लिखता उसे कुछ फायदा हो रहा होगा, भगवान उसके बाल-बच्चों को बनाए रखे, उसकी नौकरी में तरक्की मिले, मिलती रहना चाहिए। उसको परेशान मत करना, उसे ज्यादा कुछ कहने की जरूरत नहीं है। एक गरीब आदमी अपनी रोटी- रोजी खोज रहा है। लेकिन यह सारे-के-सारे मिल कर कोशिश करेंगे कि वह पुरानी खूंटी गड़ी रहे, मजबूती से। अब वो देखना है कि मुल्क में ऐसे लोग हैं या नहीं। अगर लोग मुल्क में प्रभुत्व हुए तो हम झूठी खूंटी को उखाड़ कर फेंक देंगे। और एक वक्त आ गया है मनुष्य की चेतना में कि क्रांति हो। एक वक्त आ गया है कि आमूल क्रांति हो। जीवन के सारे अर्थ बदले जाएं। जिंदगी पर सारी पुरानी राख झाड़ी जाए। जिंदगी पर सारी जंग झाड़ी जाए। जिंदगी को नई चमक, नई रौनक, नये प्राण दिये जाएं। जिंदगी में नए बी.ज बोये जाएं। नये फूल खिलें। और आखिरी बात आपसे मैं कहना चाहता हूं, अगर भारत ये हिम्मत जुटा ले, नए होने की, तो दुनिया में कोई देश इस देश का मुकाबला करने में समर्थ नहीं हो सकता है। क्यों? क्योंकि इस देश का मानस, दो हजार साल से अनकल्टीवेटिड, बंजर पड़ा हुआ है। एक खेत अगर दो हजार साल तक पड़ा रहे, जिसमें बुआई न हो, बीज न डाले जाएं, और पड़ोस के खेत में बीज बोये जाते रहें, तो अब दो हजार साल बाद उस बंजर पड़े खेत में बीज डाले जाएं, तो जो फसल होगी उसका मुकाबला किसके खेत कर सकते हैं? सारी दुनिया का मस्तिष्क काम करता रहा, भारत का मस्तिष्क दो हजार साल से बिना काम किये पड़ा है, अगर इस मस्तिष्क में क्रांति आ जाए, तो मैं आपसे कहता हूं कि आने वाली सदी हमारी है। आने वाले पचास वर्षों में हम दुनिया की चेतना के सामने एक नये प्रतीक, एक नये अर्थ, एक नये स्वप्न की भांति खड़े हो जाएंगे, एक स्वर्ण युग हम पैदा कर सकते हैं।

नये भारत का जन्म
छठवां प्रवचन

क्रांति का आधार सूत्र हैः विचार

हजारों लोग उस आदमी के पीछे थे। औरंगजेब ने अपने महल की खिड़की से झांक
कर देखा और पूछा कौन मर गया? नीचे से लोगों ने कहा कौन पूछते हैं, भलीभांति पता होगा आपको, संगीत की मृत्यु हो गई। औरंगजेब हंसा और उसने कहाः बहुत अच्छा हुआ कि संगीत की मृत्यु हो गई। अब जरा मरे हुए संगीत को गहराई से गाड़ देना, ताकि वह वापस न निकल आए। यह घटना आपने सुनी होगी। आज ऐसा लगता है कि फिर दिल्ली में अर्थी निकालनी चाहिए और जब आज के औरंगजेब पूछे बाहर झांक कर, तो कहना चाहिए कि विचार की मृत्यु हो गई। पक्का है कि आज के औरंगजेब भी यहीं कहेंगे कि थोड़ा ठीक से गाड़ देना, यह विचार कहीं निकल न आएं।
विचार की हत्या के प्रयास बहुत पुराने हैं। और इस देश में, इस देश में
तो विचार को ठीक से जन्म ही नहीं मिल पाया। और जिस देश में विचार का जन्म न हो, उस देश में क्रांति की कोई भी उम्मीद नहीं है। क्योंकि क्रांति का मौलिक सूत्र है विचार। क्रांति का आधार सूत्र है विचार। विचार के खिलाफ क्यों हैं औरंगजेब? चाहे किसी जमाने के हों। और ऐसा ही नहीं है कि इस दुनिया के औरंगजेब ही, सारी दुनिया के औरंगजेब विचार के क्योंखिलाफ हैं? फिर चाहे वे चीन के औरंगजेब हों, चाहे रूस के, और चाहे भारत के, और चाहे अमेरिका के। औरंगजेब हमेशा ही विचार के खिलाफ क्यों है? सत्ताधिकारी विचार का शत्रु क्यों हैं? धर्म गुरू, नेता, शोषक सभी विचार के दुश्मन क्यों हैं? कुछ कारण है। विचार में विद्रोह के बीज, विचार में क्रांति की शुरूआत है। इसलिए आज तक सदा यह कोशिश की गई है कि मनुष्य बिना विचार के हो। विचार खतरनाक है, इसलिए मनुष्य में और सब हो, विचार न हो। न आदमी सोचे, न आदमी समझे, न आदमी पूछे आदमी सिर्फ माने। जो मानता है वह अच्छा आदमी है। जो पूछता है, वह आदमी अच्छा नहीं है, वह संदिग्ध है।
यह जो स्थिति हजारों साल से चल रही है, दूसरे देशों ने तो इस स्थिति को तोड़ना शुरू कर दिया है, लेकिन इस देश में वह स्थिति अभी भी है। दूसरे देशों ने तो विचार करना शुरू कर दिया है, इस देश ने विचार करना अभी भी शुरू नहीं किया। हम आजाद भी हुए तो भी हम हमारे गुलाम हैं। मन हमारे सोचते ही नहीं। और जो सोचता नहीं है, उसकी स्वतन्त्रता का क्या अर्थ हो सकता है? दूसरे मुल्कों ने तोड़ी है हालत और इसलिए दूसरे मुल्कों के समाज में रूपान्तरण शुरू हुआ है। हजारों वर्ष की बंधी हुई समाज की धारा वहां बदली है, उसने मोड़ लिये हैं, जरूरी नहीं है कि वह मोड़ शुभ की ही दिशा में हों, लेकिन जब अशुभ की दिशा में भी मोड़ लेने की सामर्थ्य आ जाती है, तो बहुत दूर नहीं है वह दिन जब शुभ की दिशा में मोड़ लिये जा सकें। लेकिन जो मोड़ ले ही नहीं सकते, जो बदल ही नहीं सकते, उनके जीवन में तो शुभ की कोई आशा नहीं हो सकती। विचार को रोकने की तरकीबें, क्या हैं, अगर हम यह समझ लें तो विचार को जन्म भी मिल सकता है। और यह भी समझ लेना जरूरी है कि क्यों, आखिर ये विचार को रोकने की इतनी चेष्टा क्यों चलती है? गांधीवाद हो तो विचार को रोकने की कोशिश चलेगी, मार्क्सवाद हो तो विचार को रोकने की कोशिश चलेगी, माओवाद हो तो विचार को रोकने की कोशिश चलेगी। सभी वाद विचार से डरते हैं। क्योंकि जहां विचार होगा तीव्र, वहां वाद नहीं बस सकता। वाद मरे हुए विचार का नाम है, वाद उस विचार का नाम है, जो कभी उपयुक्त था, परिस्थितियां बदल गईं, अब वो अनुपयुक्त हो गया है। लेकिन वह मरने से इंकार करता है, वह कहता है हम जिंदा रहेंगे। सभी विचार किसी परिस्थिति में अर्थपूर्ण होते हैं, फिर परिस्थिति बदल जाती है, परिस्थिति रोज बदल जाती है। परिस्थिति एक क्षण नहीं ठहरती। लेकिन वाद, वाद ठहर जाते हैं। वो बढ़ना बंद कर देते हैं। महावीर ने जो बात कही थी वो पच्चीस सौ साल पहले रूक गई थी। और पच्चीस सौ साल से महावीर के वाद को मानने वाले वहीं ठहरे हुए हैं, इंच भर वहां से आगे नहीं बढ़े। पच्चीस सौ साल में इतिहास नहीं रूका, समय नहीं रूका। पच्चीस सौ साल में जिंदगी नहीं रूकी, जिंदगी एक क्षण नहीं रूकती है, जिंदगी किसी की फिक्र नहीं करती कि तुम कहां रूके हो। जिंदगी आगे बढ़ती चली जाती है। जो

रूके हैं, वो मुर्दा हो जाते हैं। जिंदगी उनके लिए नहीं रूकती। जिंदगी आगे बढ़ती चली जाती है। जो मोहम्मद के साथ रूक गए, मोहम्मद का वाद बनाकर, चौदह सौ साल पहले रूक गए हैं। जो जीसस के साथ रूक गए, वे दो हजार साल पहले रूक गए हैं। हमेशा दुनिया में जो लोग सोचते हैं, वो कोई उत्तर देते हैं। लेकिन वो उत्तर उस परिस्थिति के लिए होता है, फिर परिस्थिति बदल जाती है। उत्तर छाती पर पत्थर बन के बैठ जाता है। वाद का मतलब है उत्तर जो कभी सार्थक थे और कभी के व्यर्थ हो गए। वह मनुष्य की गर्दन से लटक जाते हैं। जो आदमी भी किसी बात को मानता है, वो आदमी अपनी आत्मा को नहीं मानता। जो आदमी भी किसी वाद से बंधा हुआ आदमी है, उसने अपने विचार का गला घोंट दिया है। जो आदमी भी कहता है मैं वादी हूं, हिन्दू हूं, मुसलमान हूं, जैन हूं, कम्युनिस्ट हूं, गांधीस्ट हूं जो किसी भीइ.ज्म और वाद और संप्रदाय का नाम लेता है, उस आदमी ने सोचना बंद कर दिया है। शायद उसने कभी सोचा ही नहीं। दूसरों ने सोचा है, दूसरी परिस्थितियों में, वह उन्हीं उत्तरों को पकड़ कर रूक गया है। ध्यान रहे, जिंदगी रोज नए सवाल खड़े करती है। और हमारे सब पुराने होते हैं। पुराने उत्तर नए सवालों का जवाब नहीं बनते, बल्कि ये सवाल को समझने में भी बाधा डालते हैं।
एक छोटी सी कहानी कहूं। वह कहानी जरूर सुनी होगी, छोटे-छोटे बच्चे भी उसे पढ़ते हैं। बूढ़े बाप जरूर कहते होंगे कि बच्चे उनको पढ़ें। लेकिन वह कहानी जैसी बताई जाती है, अधूरी है और आधी है, और आधे सत्य झूठ से भी खतरनाक होते हैं। आधा सत्य, असत्य से भी बदतर होता है। क्योंकि असत्य को पहचाना जा सकता है, आधे सत्य को पहचानना भी मुश्किल हो जाता है।
सुनी होगी जरूर ये कहानी कि एक सौदागर था, टोपियां बेचता था। बाजार से लौटता था, कुछ टोपियां बची थी उसकी टोकरी में, सो गया है एक वृक्ष के नीचे, खुली नींद तो देखा कि बंदर उसकी टोपियां ले गए हैं, बहुत चिंतित हुआ, लेकिन फिर उसे एक ख्याल आया, कि बंदर तो नकलची होते हैं, अपनी टोपी उसने निकाल कर सड़क पे फेंक दी, सभी बंदरों ने टोपियां फेंक दीं, उसने टोपियां इकट्ठी की, अपने घर चला गया। इतनी ही कहानी सुनी होगी, यह कहानी आधी है। और आधी कहानी खतरनाक है। आधी कहानी और मैं आपको बताना चाहता हूं। वह सौदागर मरा। उसका लड़का बड़ा हुआ। लड़के ने भी वही काम किया, जो उसका बाप किया करता था। सभी नासमझ लड़के वही करते हैं, जो उनके बाप करते हैं। बेटे में थोड़ी समझ हो तो बाप से आगे जाता है। बेटे में समझ न हो तो, बाप की सीमा को लक्ष्मण रेखा समझ लेता है। और वहीं रूक जाता है। बुद्धिहीन बेटों के कारण दुनिया रूकती है। बुद्धिमान बेटों के कारण दुनिया बढ़ती है। लेकिन बाप कभी भी बुद्धिमान बेटों को पसंद नहीं करते, बाप हमेशा बुद्धिहीन बेटों को पसंद करते हैं। क्योंकि बुद्धिमान बेटा बाप के अहंकार को चोट पहुंचाता है। बुद्धिमान बेटा कहता है हम आगे बढ़ेंगे। बुद्धिहीन बेटा कहता है, पिता तुम्हारी जो सीमा है वही विकास की सीमा है, उससे आगे कोई कैसे बढ़ सकता है। तुम्हीं अंतिम हो, तुम्हीं परम हो। तुम्हीं चरम हो। जो बेटा कहलाने के योग्य भी नहीं। दुनिया में बहुत कम बुद्धिमान पिता हैं, जो बुद्धिमान हैं पिता, वो उन बेटों को आदर करेगा जो, पिता को पीछे छोड़ देते हैं। वह उस बेटे को आदर करेगा, जिसके समझ पिता भूल जाए। वह उस बेटे को सम्मान देगा, जिसके कारण दुनिया कहे कि अब, जहां पिता ने छोड़ा था उससे बहुत आगे ले गया, उसका बेटा। पिता पिछड़ जाए यही सच्चे पिता की कामना हो सकती है। लेकिन नहीं, अहंकार बहुत मजबूत है। उस बाप ने भी यही चाहा था कि मेरा बेटा भी टोपी बेचे, क्योंकि उसने कहा था कि मेरे बाप भी टोपी बेचते थे। उनके बाप भी टोपी बेचते थे। उनके बाप भी टोपी बेचते थे। हम सदा से टोपी बेचते हैं। हम दूसरा काम कभी नहीं किया, हमारे बाप-दादों ने नहीं किया तो तुम कैसे करोगे? जो बाप ने किया है, वही करना नियम है, वही धर्म है वही शास्त्र है।
बेटे ने भी टोपियां बेची। वह भी गया, उसी झाड़ के नीचे रूका, जसके नीचे बाप रूका था। क्योंकि दूसरे झाड़के नीचे रूकना ठीक नहीं था, पता नहीं पुरखे नाराज हो जाएं। पुरखे नाराज हो जाएं और कहने लगें, कैसे नालायक हो? जहां बाप रूका था, वहां नहीं रूकते। उसी झाड़ के नीचे उसी जगह उसने अपनी टोकरी रखी। और सो गया, जहां बाप ने रखी थी। बंदर उतरे, बन्दरों के बाप भी मर चुके

होंगे। उनके बेटे थे, जो उनके बाप ने किया वही उनको भी करना था। वह उतरे और उन्होंने टोपियां लगाई और झाड़ पे चढ़ गए। बेटे की नींद खुली, याद आई कहानी, बाप ने बताया। बंदर नकलची होते हैं। उसे याद नही रहा कि बंदर ही नकलची नहीं होते, वह खुद भी नकलची था। उसने अपनी टोपी निकाल कर सड़क पर फेंक दी, लेकिन चमत्कार हुआ। एक बंदर नीचे उतरा, उस टोपी को भी लेकर झाड़ पर चढ़ गया। आदमी नहीं बदला था, बंदर अब तक बदल चुके थे। और बंदरों ने समझ लिया कि नकल करना खतरनाक है। और समझ गए थे, सीख गए थे तरकीब कि आदमी टोपी फेंकता है, तब टोपी नहीं फेंकनी चाहिए। हमारे बाप-दादों ने भूल की थी, अब हम ये भूल नहीं करेंगे। बन्दर वादी नहीं थे। बेटा वादी था।
हिन्दुस्तान हजारों साल से वादों से परेशान और पीड़ित है। पुराने वाद
ही बहुत महंगे पड़ रहे हैं। और ये गांधी का नया वाद भी खड़ा हो गया। गांधी बहुत प्यारे हैं। गांधीवाद जरा भी नहीं। गांधी बहुत अदभुत हैं, गांधीवाद जरा भी नहीं। महावीर बहुत प्यारे हैं, महावीरकावाद जरा भी नहीं। जीसस अद्भुत हैं, लेकिन क्रिश्चयनिटि नहीं होनी चाहिए दुनिया में।
आदमी पैदा होते हैं जमीन पर सुगंध से भरे हुए, वह तो विदा हो जाते हैं, लेकिन उसने आस-पास नकलचियों का, बंदरों का गिरोह इकट्ठा हो जाता है। और वह एकवाद, एक रेखाबद्ध रूपरेखा, जकड़ी हुई पैटर्न, एक बंधा हुआ ढांचा खड़ा करते हैं, और कहते हैं बस अब ऐसा ही होना चाहिए। अब ऐसा ही किया जाना चाहिए। अब यही उत्तर है, प्रमाणित, ओथोरिटेटिव, यही, बाकी सब गलत। लेकिन जिंंदगी किसी वाद के लिए ठहरी। जिंदगी रोज नये सवाल खड़े कर देती है। जो सवाल गांधी के समय में जिंदगी ने पूछे थे, वह हमारे समय में जिंदगी नहीं पूछ रही है। जो हमारे सामने पूछेगी, जिंदगी सवाल, वह आने वाले बच्चों के सामने नहीं पूछेगी। लेकिन भूल के अपने बेटों को प्रेम तो देना, लेकिन अपने बेटों को अपने सिद्धान्त मत देना। प्रेम तो ठीक है, सिद्धान्त खतरनाक है। क्योंकि प्रेम तो मुक्त करता है, सिद्धान्त बाध लेते हैं। बाप से कहना चाहता हूं बेटों को प्रेम देना, सिद्धान्त मत देना। बेटों को कहना चाहता हूं, बाप को आदर देना, लेकिन जो बाप ने किया, जैसा बाप था, जो बाप था, उसको अपने जीवन की लक्ष्मण रेखा मत बना देना। बाप बेटे को प्रेम दे, ये समझ में आता है, बेटे
बाप को आदर दें यह समझ में आता है, लेकिन बाप बेटों को बांधने का कारण बने,
और बेटे बाप से बंध जाएं, तो समाज में कभी कोई क्रांति कभी कोई विकास नहीं होता। समाज अवरूद्ध हो जाता है, रूक जाता है। ठहर जाता है। भारत का समाज रूका हुआ समाज है, जैसे कोई डबरा बन गया हो। नदी नहीं है, भारत का समाज। उसमें बहाव नहीं है, उसमें गति नहीं। वह किसी अज्ञात सागर की खोज में प्रवाह नहींहै। फर्क देखा है, नदी में और तालाब में, तालाब बंधा हुआ डबरा होता है। वह कहीं जाता नहीं। जहां उसका बाप था, वह वहीं रहता है। जहां उसके और बाप-दादे रहे, वह वहीं रहता है। डबरा एक ही जगह ठहरा हुआ है। नदी भागती है, आगे की तरफ, अंजान रास्तों पर, अपरिचित मार्गों पर। अंजाने, अनपहचाने, ना मालूम
किस सागर की तरफ? अज्ञात, अननॉन, नदी उस तरफ भागती है, इसलिए नदी जिंदा है। क्योंकि नदी, अपरिचित का आलिंगन करने को तत्पर है। जो परिचित के साथ रूकता है, वह मर गया। जो अपरिचित के साथ आगे बढ़ता है, वह जिंदा है। अपरिचित, अननॉन, इंसिक्योरिटि जहां है, असुरक्षा जहां है। जहां हमें पता नहीं कि क्या है रास्ता, क्या है मार्ग, क्या है नक्शा? अनचार्टर, जहां कोई हिसाब नहीं, कोई रेखा नहीं, कोई मार्ग के चिह्न नहीं, कोई रास्ता बंधा हुआ नहीं, वहां, वहां जो बढ़ते हैं, वह जीवित है। और जो कहते हैं, हम बंधी हुई लीक पर चलेंगे, हम राज पथ पर चलेंगे, हम उसी रास्ते पर चलेंगे, जिसपे हमेशा चले हैं, वे कहीं जाते नहीं, वे गोल-गोल चक्करों में घूमते रहते हैं। तालाब की तरह, अपने ही भीतर चक्कर लगा लेते हैं। सड़ते हैं, गलते हैं, नष्ट होते हैं, और उनकी जिंदगी में न कोई सुबास होती है, न ताजगी होती है, न स्वच्छता होती है।
भारत एक डबरा है। डबरा किसने बनाया? ये डबरा कैसे बन गया? यह वाद के आग्रह ने भारत को डबरा बनाया। क्योंकि वाद आते हैं अतीत से और, जिंदगी जाती है भविष्य की तरफ, यह कभी ख्याल किया है? सिद्धांत आते हैं पीछे से, जीवन जाता है आगे। जिंदगी कभी पीछे नहीं लौटती, और सिद्धान्त सब पीछे से

आते हैं। वेद पीछे से आता है। गीता पीछे से आती है। कुरान पीछे से आती है, बाइबिल पीछे से आती है। सब पीछे से आते हैं सिद्धान्त। और जिंदगी, जिंदगी पीछे की तरफ कभी नहीं जाती। जिंदगी सदा आगे, सदा आगे, और आगे, जिंदगी जाती है आगे की तरफ, और हमारे चित्त बंधे होते हैं पीछे की तरफ, तो एक कश्मकश, एक कॉन्फेक्ट, समाज की चेतना में एक द्वंद्व पैदा हो जाता है। उस द्वंद्व के कारण टूट पैदा होती है, गति नहीं होती। जिस समाज का चित्त आपस में ही खंडित, टूटा हुआ होता है, उसकी हालत ऐसी है, जैसे हमने एक ही बैलगाड़ी में दोनों तरफ बैल जोत दिये हों। दोनों तरफ बैल जुते हैं, बैल दोनों तरफ बैल गाड़ी को खींचते हैं। बैलगाड़ी कहीं जाती नहीं। जाअ भी नहीं सकती, जाएगी कैसे? लेकिन बैल गाड़ी के अस्थि-पंजर टूटने लगते हैं। दोनों तरफ बैल खींचते हैं तो क्या होगा? कैसे चलेगी बैलगाड़ी? वहीं घसीटेगी, एक ही जगह पर रहेगी, वहीं टूटेगी और नष्ट होगी। भारत की जिंदगी में ऐसा ही है। ऐसा ही कंट्रिडिक्शन, ऐसा ही विरोध, द्वंद्व पैदा हो गया है। जीवन आगे की तरफ, सिद्धांत पीछे की तरफ। चित्त पीछे की तरफ, ऊर्जा आगे की तरफ। सारा देश पीछे की तरफ खिंचा हुआ है, हजारों साल से। जाओ, रूस के बच्चों से पूछो, क्या सोचते हो? तो वो सोचते हैं चांद-तारों पे बस्ती कैसे बसाएं? पूछो अमेरिका के बच्चों से, तो वह सोचते हैं मंगल को कैसे जीत लें? और देखो भारत के बच्चों की तरफ, वे रामलीलाएं देख रहे हैं। रामलीला बहुत सुंदर है, लेकिन कब तक देखते रहेंगे? और कितनी बार देखी जा चुकी रामलीला। और देखते जा रहे हैं, देखते जा रहे हैं। हर साल एक घूमता हुआ चक्र है, कोल्हू के बैल हैं हम, और हम उसको देखते रहेंगे। बहुत प्यारे हैं राम। जरूर, तभी उनकी याद बहुत सुंदर है। लेकिन अभी और राम पैदा होंगे, भविष्य में। जो अतीत के रामों से भी प्यारे हो सकते हैं। अभी बहुत रामलीलाएं होंगी, जो इस पृथ्वी पर ही नहीं चांद-तारों पर भी खेली जा सकती हैं। लेकिन वो रामलीलाएं दूसरी कौमों के बच्चे खेलेंगे। वो रामलीलाएं हम नहीं खेलेंगे। हमारी रामलीला हो चुकी। एक बार हमने खेल ली, अब बार-बार खेलने से क्या मतलब। अब हम उसका नाटक कर लेते हैं, और काम चला लेते हैं। राम एक दफा हो गए, अब बार-बार राम जैसे आदमियों की क्या जरूरत है? अब तो हम अपने हर गांव में राम बना लेते हैं। यह जो अतीतोन्मुखी, यह जो अतीत की तरफ देखती हुई आंखे हैं, ये जो अतीत
पे ठहर गया भारत का चित्त है, तो कभी भी भारत की जिंदगी में कोई क्रांति नहीं हो सकती। क्रान्ति होती है, भविष्योन्मुख चित्त से। आगे की तरफ जाने वाला, आगे की तरफ देखने वाली आंखें, भविष्य को घूरने वाली आंखें, भविष्य की खोज में उत्सुक और आतुर, लेकिन जो बार-बार पीछे लौट के देखता है, पीछे लौट के बार-बार देखता है, कहना ही गलत है, जो पीछे ही देखता है। वह कैसे आगे जा सकता है? हम पीछे क्यों देखते हैं लेकिन? यह पीछे देखने का पागलपन हमें क्यों सवार है? ये हमारी गर्दन को लकवा क्यों लग गया है? ये पैरालिसिस क्यों, जो आगे की तरफ देखती ही नहीं। कुछ कारण हैं। कभी आपने ख्याल न किया हो शायद, छोटे बच्चे सदा आगे की तरफ देखते हैं। बूढ़े सदा पीछे की तरफ देखते हैं। छोटे बच्चों के आगे भविष्य होता है। बच्चे का मतलब है, जिसको आगे भविष्य। बूढ़े का, बूढ़े का कोई भविष्य नहीं होता, सिर्फ अतीत होता है। आगे, आगे तो सिर्फ मौत होती है। उससे डर कर वह आगे की तरफ देखता नहीं। वह पीछे की तरफ देखता है, वह देखता है बचपन, जवानी। वह गीत जो कभी गाए। वह सपने जो कभी देखे। वह फूल जो कभी बरसे थे। वह वीणा, जो कभी बजी थी। वह सब पीछे देखता है। आंख बन्द करके स्मृति में खोया रहता है। क्योंकि आगे आंख खोल कर देखे तो मौत है। बूढ़ा आदमी आगे नहीं देखता। और जो आदमी आगे नहीं देखता, समझ लेना, वो बूढ़ा हो गया है। और अगर कोई बूढ़ा आदमी आगे देखता रहे, तो शरीर तो बूढ़ा होता है, आत्मा कभी बूढ़ी नहीं होती। और अगर कोई जिद करे कि पीछे नहीं देखेंगे, आगे ही देखेंगे, तो वह आदमी मरते वक्त तक भी बच्चा होता है। सुकरात को जहर दिया जा रहा था। अब जिसे जहर दिया जा रहा है, उसको तो पीछे लौटकर देख लेना चाहिए। अब तो मौत दूर भी नहीं है, बाहर आवाज आ रही है, जहर घोला जा रहा है। सुकरात के मित्र रो रहे हैं, उनको शायद पीछे की याद आ रही होगी कि वह दिन जो सुकरात के साथ उन्होंने बिताए थे। वह बातें, जो उससे सुनी थी। वह अमृत, जो उससे बहा था। वह आंखे जो कल तक चांद-तारों से भी

ज्यादा रोशन थी। वह आदमी जिसकी धड़कन में प्रेम था और सब कुछ था, जो सुंदर, श्रेष्ठ, शुभ वो खत्म हो जाएगा। वो सब पीछे खाए होंगे। उनकी आंखों से आंसू टपक रहे हैं। सुकरात, सुकरात उठ-उठ के बार-बार दरवाजे पे जाता है, और जहर पीसने वाले से पूछता है, कितनी देर और है? कितनी देर और है? बहुत देर लगा रहे हो मित्र। उस जहर पीसने वाले ने कहा, पागल हो गए हो तुम? मैं तुम्हारी वजह से धीरे-धीरे पीस रहा हूं कि थोड़ी देर तुम और जी लो। थोड़ी देर और श्वांस ले लो। इतनी जल्दी क्या है, मरने की? सुकरात कहता है जल्दी? जल्दी बहुतहै, जिंदगी तो जानी हुई है, मौत अपरिचित है। अपरिचित को जानने की बड़ी आतुरता है। क्या है आगे? मौत के आगे क्या है? उसको देखने के लिए मन बड़ा आतुर है।
यह आदमी बूढ़ा हो सकता है? यह मौत के पार भी आगे देखता है? यह मौत के पार
भी आगे देखता है। यह आदमी बूढ़ा हो सकता है? यह मरते क्षण भी निर्दोष बालक है। एक इन्नोसेन्टचाइल्ड है। जिसकी जिंदगी में अभी कोई अतीत नहीं है। जिसकी में अतीत की कोई लकीर नहीं। जिसकी जिंदगी की पट्टी पर लकीर नहींखिंच गई है। अभी खाली-खाली साफ आकाश है उसके मन का। अभी आगे वो देखने को तैयार है। न केवल व्यक्तियों का, बल्कि समाजों का भी, जो समाज सदा आगे देखने को तत्पर रहता है, वो समाज जवान होता है, युवा होता है, ताजा होता है। जो समाज पीछे देखने लगता है, वो बूढ़ा हो जाता है। भारत एक बूढ़ा देश है। इसलिए हम पीछे देखते हैं, बार-बार। और जब तक हम ये न समझ लें कि हम बूढ़े हो गए हैं, तब तक हम फिर से पुनर्यौवन नहीं पा सकते। लेकिन हम तो अपने बुढ़ापे का बड़ा गौरव करते हैं। हम तो यह कहते हैं, हम से पुराना कोई भी नहीं।
रोम मिट गया, इजिप्ट मिट गया, बेबीलोन कहां है? असीरिया कहां हैं? हम
अब भी, वह मिट नहीं गए साहब, वो बदल गए। रोम अब भी है। असीरिया अब भी है। इजिप्.ट अब भी है। वह बदलते चले गए। वह बदलते चले गए, वह रोज नए होते चले गए। और हम, हम पुराने के पुराने बने रह गए। ये गौरव की बात नहीं है, यह इस बात का सबूत है कि हमने बदलने की क्षमता और सामर्थ्य खो दी। हमने बदलना बंद कर दिया। जो बदलना बंद कर देगा, वह बूढ़ा हो जाता है। आपको पता है बूढ़े होने का मतलब क्या होता है? बूढ़े होने का मतलब होता है, जिसमें बदलने की लोच, लैक्सिबिलिटिच ली गई जो अब बदल नहीं सकता। जो या तो मर सकता है या ऐसा ही रह सकता है। लेकिन बदल नहीं सकता। बच्चा कितने जोर सेब दलता है? बच्चा कितने जोर से बदलता है? कल जो था आज नहीं है, आज जो है कल नहीं होगा। सुबह जो था, सांझ नहीं है। बच्चे को देखो कैसे बदलता है? कैसी बदलाहट है उसकी जिंदगी। लेकिन बूढ़ा जो कल था, वही आज है। जो आज है, वही कल होगा। बस अब एक ही बदलाहट आएगी उसकी जिंदगी में, उस बदलाहट का नाम मौत है। मौत बदलाहट नहीं है, है बदलाहट कारूक जाना। मौत है ऐसी घड़ी, कि जिस आदमी ने बदलना बंद कर दिया, तो भगवान कहता है उठा लो इसे, अब इसने बदलना बंद कर दिया। अब ये जिंदा नहीं है। मौत का मतलब होता है वह जो बदलाहट थी, वह बन्द हो गई। वह जो लैक्सिबिलिटि थी, लोच थी, जिंदगी में वह खो गई। समाजों के साथ भी यही सत्य है। जब कोई समाज बदलना छोड़ देता है तो बूढ़ा होता चला जाता है। जब बहुत बूढ़ा हो जाता है, तो आदमी तो मर जाता है, व्यक्ति तो मर जाता है, लेकिन समाज मरते नहीं, इसलिए समाज बूढ़े से बूढ़ा होता चला जाता है। फिर भी जिंदा रहता है, फिर भी जिंदा रहता है। समाज मर नहीं सकता। समाज तो जिंदा ही रहेगा। लेकिन बूढ़े होकर समाज का जिंदा रहना बहुत दुःख का कारण हो जाता है।
भारत एक हजार साल गुलाम रहा। कोई जवान कौम एक हजार साल गुलाम रह सकती है? भारत हजारों साल से दरिद्र है। कोई जवान कौम इतने दिन दरिद्र रह सकती है। लेकिन नहीं, हम जैसे है, हैं। हम कोई बदल नहीं सकते। हिन्दुस्तान हजारों साल से गरीब है, कभी ये सोचा। लेकिन हम कहेंगे, नहीं-नहीं, एक जमाना था, भारत सोने की चिड़िया थी। झूठी हैं ये बातें, भारत कभी सोने की चिड़िया नहीं थी। हां, कुछ लोगों के लिए थी, तो कुछ लोगों के लिए आज भी है। कुछ लोगों के लिए सोने की चिड़िया थी। कुछ के लिए आज भी है। और कुछ लोगों के लिए कोई देश सोने की चिड़िया तभी हो सकता है, जब सारे देश का जीवन, सारे देश का जीवन जब कुछ लोगों के हाथ में इकट्ठा हो जाए, और सारे देश के प्राण जब कुछ लोगों के लिए सोने के ढेरे बन जाएं, और सारे देश की आत्मा जब बिक जाए, और

कुछ लोगों के पास सोने की तिजोरियां हो जाएं, तब कुछ लोगों के लिए देश सोने की चिड़िया हो सकती है, जरूर है। बिरला के लिए सोने की चिड़िया है, आज भी। लेकिन हम कहेंगे बिरला 1947 में आजाद हुआ देश, उसके पास केवल तीस करोड़ की सम्पत्ति थी। फिर अब, अब उसके पास साढ़े तीन सौ करोड़ से ऊपर सम्पत्ति है। बीस वर्ष में तीन सौ करोड़ की सम्पत्ति इकट्ठा करने का रिकॉर्ड नहीं है मनुष्य जाति के इतिहास में। अमेरिका में भी नहीं, जहां सोना बरसा है। वहां भी एक परिवार ने बीस वर्षों में तीन सौ, सवा तीन सौ करोड़ रूपये कमाएं हों, इसका कोई रिकॉर्ड नहीं है। लेकिन शास्त्रों में लिखा है सत्संग का बहुत लाभ होता है। वही सिद्ध होता है। गांधी जी का सत्संग किया, अब लाभ उठा रहा है, सत्संग का लाभ तो सदा होता है। सत्संग तो कभी खाली नहीं जाता।
ते बिरला के लिए सोने की चिड़िया आज भी हो सकती है। दस-पच्चीस परिवारों
के लिए आज भी भारत सोने की चिड़िया है। लेकिन भारत के लिए सोने की चिड़िया भारत कब था? कभी भी नहीं। भारत हमेशा से गरीब है।
काउंट कि सल्ली नाम का एक जर्मन यात्री भारत से वापस लौटा। उसने अपनी डायरी प्रकाशित की है, मैंने उसकी डायरी पढ़ी, तो मैं एक लकीर पर जाके चौंक के रूक गया। लिखा है एक वाक्य, वह मेरी समझ में एकदम से नहीं पड़ा। मैंने सोचा, कहीं छापे खाने की भूल भी हो सकती है। लेकिन फिर ख्याल आया कि किताब जर्मनी में छपी है, और छापे खाने की भूल तो यह अपने ही देश में होती है। तो फिर मेरी ही कोई गलती होनी चाहिए। यहां तो यह है कि हर किताब छपती है उसके पहले शुद्धि पत्र छाप देना पड़ता है। उसको किताब के ऊपर ही लगा देते हैं, और अगर, शुद्धि पत्र को गौर से पढ़िये तो उसमें भी अशुद्धियां रहती हैं।
यह तो जर्मनी में छपी, मैंने सोचा कैसे इसमें भूल रह गई? भूल तो हो नहीं सकती, फिर मैं ही भूल पर होना चाहिए। फिर बार-बार उसके वाक्य को पढ़ा, फिर ख्याल आया कि वह मजाक कर रहा है। उसने एक वाक्य लिखा है अपनी किताब में। उसमें लिखा है कि "इण्डियाइ.जरिचलैण्ड, वेयर पूअर पीपल लिव।" हिन्दुस्तान एक अमीर देश है, जहां गरीब आदमी रहते हैं। तो यह तो बड़ी मुश्किल बात हो गई। अगर देश अमीर है तो गरीब आदमी क्यों रहते हैं वहां? और अगर आदमी गरीब रहते हैं तो देश को अमीर कहने का मतलब क्या है? लेकिन वह ठीक मजाक कर रहा है। वह कह रहा है देश तो अमीर है, लेकिन रहने वाले इतने बूढ़े हैं, कि वह गरीब ही रहना उनका भाग्य है। वह जवान होते तो देश की अमीरी बरस जाती, लेकिन वह बूढ़े हैं, वह कुछ भी नहीं कर सकते। वह सिर्फ बैठ के देखते रह सकते हैं कि जो हो रहा है। जिंदगी को हम एक तमाशबीन की तरह देख रहे हैं, इसलिए बूढ़े होते चले गए हैं। जिंदगी को जी नहीं रहे, जिंदगी के साथ लड़ नहीं रहे, जिंदगी के साथ संघर्ष नहीं कर रहे। जिंदगी को देख रहे हैं, एक दर्शक की भांति कि नाटक चल रहा है और दर्शक बैठे हुए देख रहे हैं। देखने वाले को कुछ करना नहीं पड़ता। हम पार्टिसिपेंट नहीं हैं, हम जिंदगी के भागीदार नहींहैं। और इसलिए हम बूढ़े होते चले गए हैं। और यह बुढ़ापा हमारा इतना ज्यादा बढ़ गया है, कि अब, अब शायद हाथ-पैर भी नहीं हिलते। लेकिन हम इसको तोड़ने के लिए भी कुछ न सोच रहे हैं, न विचार कर रहे हैं। बल्कि अगर कोई आदमी इसको सोचने को कुछ कहे, तो हम नाराज होते हैं। हम बहुत क्रोध से भर जाते हैं, कि नहीं ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिएं। हमारे महात्माओं की आलोचना नहीं करनी चाहिए। हमारे महापुरुषों की आलोचना नहीं करनी चाहिए। हमारे भगवान जो कह गए, बिल्कुल ठीक है, हमारे शास्त्र में जो लिखा है, सब ठीक है। हमें पता नहीं, कि अगर हम विचार नहीं करेंगे, तो हम जवान नहीं हो सकते, और हम जवान नहीं हो सकते तो हम नहीं बदल सकते। कैसी क्रांति? क्रांति कौन करेगा? क्रांति कैसे होगी? लेकिन हम विचार करने से डर गए हैं। अगर गांधी जी पर कुछ कहो, कि सोचें उन पर हम, तो उनके पीछे जाल खड़ा हुआ है, वह कहता है नहीं। हमारा एकमात्र काम है कि हम पूजा करें। उनकी मूर्ति बनाकर चौरस्ते पर खड़ी करें, फूल चढ़ाएं, यह काम है। विचार वगैरह करना हमारा काम ही नहींहै। हम विचार करना ही नहीं चाहते, विचार की जरूरत क्या है? जो है वो ठीक है, जो है, वह सच है। इसलिए विचार क्या करना है? हमारे सिद्धांत सब ठीक हैं, अगर गलत है तो आदमी गलत है। सिद्धांत तो हमेशा से ठीक हैं हमारे, आदमी गलत है, आदमी को बदलो, सिद्धांत को बदलने की क्या जरूरत है? हमारे मुल्क की ये धारा है,

आज तक की ट्रेडिशन है, हम कहते हैं सिद्धांत सब ठीक हैं, आदमी गलत है। अगर बदलना है तो आदमी को ठीक-ठाक करो। सिद्धांतों को ठीक करने की जरूरत नहीं है। लेकिन पांच हजार साल से हम जिन सिद्धांतों की बात कर रहे हैं, उनके अनुकूलन तो हम आदमी को ढाल पाए, और न हम उन सिद्धांतों को बदलने को राजी हैं। तो ये खीझ पैदा हो गई है एक। ये कैसे टूटेगी? मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी।
मैंने सुना है, एक राज महल के नीचे से एक, गर्मी की दुपहर में, एक पंखा बेचने वाला निकल रहा था। वह जोर-जोर से चिल्ला रहा था, कि बहुत अनूठे पंखे, ऐसे पंखे आपने कभी देखे ही नहीं होंगे। सम्राट ने सुना एक बार, दो बार, तीन बार उसके पास बहुत सुन्दर पंखे थे, श्रेष्ठतम पंखे थे, जो भी दुनिया में मिल सकते थे, सब थे। उसने खिड़की से झाँक के देखा, कि कैसे अनूठे पंखे हैं जो आदमी चिल्ला रहा है। देख कर और हैरानी हुई, साधारण पंखे जो दो-दो पैसो में मिलते हैं। फिर भी वह आदमी चिल्ला रहा है कि ऐसे पंखे आपने देखे भी नहीं होंगे। सम्राट ने कहा, इस आदमी को ऊपर बुला लाओ। वह पंखे वाला ऊपर आया। सम्राट ने कहा क्या खूबी है तेरे पंखे की? उस आदमी ने कहा, यह पंखे देखने में साधारण, भीतर से असाधारण। दुनिया को धोखा देने का यह रास्ता बहुत अच्छा है। उस आदमी ने कहा, यह ऊपर से साधारण, भीतर से बहुत असाधारण हैं। शरीर पर मत जाइए, आत्मा पर जाइए। राजा ने कहा पंखों की भी आत्मा? लेकिन, अच्छा, उसने कहा ठीक है, क्या खूबी है इनकी असाधारण आत्मा की? उस आदमी ने कहा, यह सौ साल चलते हैं। सौ साल में यह टूट नहीं सकते। राजा ने कहा, चमत्कार कर रहे हो? यह पंखा ऐसा ढीला-फोला दिखता है कि दो दिन नहीं चल सकता। उस आदमी ने कहा, सौ साल की गारण्टी। दाम क्या है? राजा ने पूछा। उसने कहा, सौ रूपये। राजा ने कहा, ठीक खूब लूट रहे हो लेकिन तुम जानते हो फांसी पर लटकवा दूंगा, अगर यह बात झूठ निकली। और अगर बेईमानी हुई। उस आदमी ने कहा, महाराज रोज यहीं पंखे बेचता हूं,, रूपये पीछे भी ले सकता हूं। सौ साल चलेगा यह। लेकिन अगर मैं मर गया तो क्या होगा? इसलिए रूपये अभी लेता हूं। इसकी वजह पंखे के कारण नहीं, अपने कारण हैं। आपका क्या भरोसा? मेरा क्या भरोसा? पंखा तो सौ साल चलेगा। गारंटी सौ साल की है। और रोज निकलूंगा, जब टूट जाए तो मुझे बुला कर आप बात कर सकते हैं।
सौ रूपये उसे दे दिये गए। राजा जानता था, पंखा खरीद लिया गया है। लेकिन दूसरे ही दिन, उस पंखे की डंडी तो निकल गई। असाधारण पंखा था। साधारण होता तो दो-चार दिन भी चल सकता था। राजा ने कहा, लेकिन अजीब आदमी है, बड़े, जोश से और हिम्मत से और प्रामाणिकता से कहा है, शायद आज आएगा नहीं। लेकिन ठीक समय पर पंखे वाले की आवाज सुनाई पड़ी। राजा ने उसे बुलाया। और कहा, महाशय! ये पंखा तो टूट गया। उस आदमी ने गौर से पंखे को देखा और राजा को ऊपर से नीचे तक और गौर से देखा। और कहा, महाराज! मलूम होता है आपको पंखा झलना नहीं आता। राजा ने कहा, क्या कहते हो, पंखा झलना नहीं आता। यह और एक नई बात सुनी। उस आदमी ने कहा, कृपा करके पंखा झलकर बताइये, क्योंकि मुझे हैरानी में डाल दिया। सौ साल जिस पंखे की गारंटी है, उसको एक दिन में तोड़ कैसे डाला? यही एक आश्चर्य। आपने कैसे पंखा किया? राजा ने कहा, तुम आदमी होश में हो कि पागल हो? क्या मुझे पंखा करना नहीं आता? उस आदमी ने कहा, निश्चित नहीं आता। आप पंखा झलकर बताइये। राजा ने पंखा झलकर बताया। उस आदमी हंसने लगा, उसने कहाः मैं समझ गया, झलने की बातें नहींहैं। यह कोई झलने का ढंग नहीं है। उसने कहा फिर क्या ढंग है? उस आदमी ने कहा पंखे को संभाल के पकड़िये और सिर को हिलाइये। पंखा सौ साल चलेगा। आप खत्म हो जाओगे, मैं खत्म हो जाऊंगा। पंखा खत्म होने वाला नहीं। पंखा तो गारंटीड है। आप गड़बड़ हैं।
यह ही हम पूरे मुल्क में हजारों साल से कह रहे हैं। हमारे सिद्धांत तो
सब ठीक हैं, गड़बड़है, आदमी को बदलो। सिद्धांत को छूना मत। ये बहुत नासमझी हो चुकी। नहीं, आदमी गलत नहीं है, आदमी कभी गलत नहीं था, आदमी गलत पैदा होता ही लेकिन अगर आदमी के ऊपर गलत सिद्धांत थोपे जाएं, तो आदमी गलत हो जाता है। आदमी अपने आप में ठीक पैदा होता है। आदमी अपने आप में गलत पैदा होता ही नहीं। लेकिन अगर गलत ढांचे में आदमी को ढालने की कोशिश की जाए, तो आदमी गलत हो जाता है। और भारत का आदमी गलत हुआ है। उसके गलत होने का कारण वह खुद

नहीं है, उसके गलत होने का कारण, हमारे समाज का हमारे जीवन का ढांचा, हमारे सिद्धांतों की गलत पकड़ है।

नये भारत का जन्म
सातवां प्रवचन

देश धन के लिए बीमार हो गया

जब कोई सभ्यता सड़ती है, तो उसकी दुर्गंध, उसके व्यापारी वर्ग से सबसे ज्यादा आनी शुरू होती है। ये स्वाभाविक है। इसके पीछे कारण है। समाज का खून है धन, धन समाज की नसों में दौड़ता है, खून की तरह। और जब खून सड़ जाए, तो सारे समाज के शरीर पर फोड़े-फुंसियां और बीमारियां, प्रकट होनी शुरू हो जाती हैं। या अगर कभी ऐसा हो, कि किसी आदमी के पूरे शरीर पर फोड़े-फुंसियां और मवाद फैले लगे, तो जान लेना चाहिए कि भीतर खून सड़ गया होगा। व्यापारी समाज की रीढ़ है। और धन समाज का खून, और जब सभ्यता पुरानी होती चली जाती है, तो खून सड़ जाता है। और सारी दुर्गंध व्यापारी से निकलनी शुरू हो जाती है। भारत यी सभ्यता की सड़ांद, भारत की जो अर्थव्यवस्था है उससे पूरी तरह निकलनी शुरू हो गई है। और आज ही निकल रही है ऐसा नहीं है। सैकड़ो वर्षां से निकल रही है। क्योंकि हमने नए को पैदा करने की क्षमता खो दी है। पुरानों को दफनाने की क्षमता भी खो दी है। न हम पुराने को मरघट तक पहुंचा सकते हैं, और न नए को जन्म देने के लिए प्रसव की पीड़ा, झेलने की हमारी हिम्मत है। इसलिए पहली बात तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि भारत के व्यवसायी और व्यापारी वर्ग का कोई कसूर नहीं है। भारत के नेता व्यापारी को गाली देते हैं, भारत के व्यापारी भारत के नेताओं को गाली दे देंगे। लेकिन न कसूर व्यापारियों का है और न नेताओं का है। भारत की पूरी संस्कृति सड़ गई है। और इसलिए किसी एक-दूसरे को दोष देने से कोई भी प्रयोजन नहीं है।
जब तक हम पूरी संस्कृति और सभ्यता को बदलने के लिए आबद्ध न हों, संकल्प प्रकट न करें, जब तक हम इस पूरे को बदल न सकें। दुनिया में हर सभ्यता बदलती रही है, हम सिर्फ नहीं बदले हैं। और कुछ लोग हैं, जो सोचते हैं कि ये बहुत गौरव की बात है। कुछ लोग हैं जो कहते हैं रोम नष्ट हो गया। मिस्र नष्ट हो गया, बेबीलोन कहां हैं, सीरिया नष्ट हो गया। लेकिन हम, हम नष्ट नहीं हुए। कुछ लोग सोचते हैं कि यह बड़े आत्म गौरव की बात है, लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि यह अत्यंत अपमानजनक है। जो सभ्यताएं नष्ट हो गईं, उन्होंने नई सभ्यताओं को जन्म दे दिया। और जो सभ्यता नष्ट नहीं हुई, वह सभ्यता मरी हुई जिंदा है। वह मर गई है, और फिर भी जिंदा है। हमारा जो अस्तित्व है वह मृत है। मर जाने के बाद का है। स्वभावतः हमारा सब कुछ सड़ जाएगा। हमारा सब कुछ दुर्गंध से भर जाएगा। और सबसे ज्यादा यह दुर्गन्ध जहां से निकलेगी, वो होंगे हमारे आर्थिक संबंध। हमारे अर्थ की व्यवस्था। हमारे उत्पादन की व्यवस्था, भीतरण की व्यवस्था। जहां धन है, वहां सबसे ज्यदा सड़ांद मालूम होगी। और इसलिए, पहली बात जो मैं भारत के व्यापारी समाज के संबंध में सोचते समय कहना चाहता हूं वह यह है कि अगर कोई सोचता हो कि भारत के व्यापारी समाज को, भारत की पूरी सभ्यता को संदर्भ के अलग देखा जा सकता है, तो वह बहुत गलती में हैं। भारत में सब कुछ जुड़ा हुआ है। सभी सभ्यताओं को सब कुछ जुड़ा होता है। सभ्यता एक आर्गेनिक हॉल है। एक इकट्ठी इकाई है। अगर हम इस पूरी सभ्यता को बदलने को तैयार न हों, तो इसका कोई भी अंग बदला नहीं जा सकता। और अगर हम इसके किसी अंग को बदलेंगे, तो वह अंग ऐसे ही होंगे, जैसे किसी आदमी की सड़ी हुई टांग अलग निकाल दी जाए, और लकड़ी की टांग लगा दी जाए। और किसी आदमी की असली आंखें अलग कर दी जाएं, क्योंकि खराब हो गई हैं और पत्थर की आंखे लगा दी जाएं। लेकिन इस पूरे शरीर को जीवंत अगर करना हो, तो इस पूरे शरीर को नया करना जरूरी है।
यह पहली बात ध्यान में लेना आवश्यक है, कि भारत का सब कुछ ही दुर्गंधयुक्त हो गया है। और इसके दुर्गंधित होने में पुराना कारण है, कुछ और भी कारण हैं। एक बात, भारत हजारों वर्षों से धन की निंदा कर रहा है, और जो समाज धन की निंदा करेगा, वह धन के संबंध में अनिवार्यरूपेण बेईमान हो जाएगा। धन की निंदा करना खतरनाक है। क्योंकि धन की निंदा का एक ही अर्थ होता है कि अगर हम धन की निंदा करेंगे, तो धन उत्पादन की दिशा में हमारे पैर बढ़ने बंद हो जाएंगे। भारत का व्यवसायी समाज हजारों वर्षां से उत्पादक

काम नहीं कर रहा है। भारत का व्यवसायी समाज केवल, बीच के दलाल का काम कर रहा है। उत्पादक, प्रोडेक्टिव भारत का व्यवसायी समाज नहीं है। आज भी, आज भी भारत का बड़ा व्यवसायी समाज उत्पादक और ग्राहक के बीच में कड़ियों का काम कर रहा है। अगर बम्बई में कोई चीज पैदा होती है और बक्सर के गांव तक पहुंचानी है, तो बीच में पच्चीस दलालों की लंबी श्रृंख्ला है। वे बीच के पच्चीस दलाल ही, भारत के बड़े व्यवसायी समाज का हिस्सा हैं। और ध्यान रहे, धन अगर उत्पादन न किया जाए, और धन पर केवल दलाली की जाए, और बीच के मध्यस्थ का काम किया जाए, तो हजार तरह की बेईमानियां शुरू हो जाएंगी। जिस देश में व्यवसायी वर्ग मूलतः दलाल है, उस देश का व्यवसायी वर्ग कभी भी ठीक अर्थां में ईमानदार नहीं हो सकता।
रवीन्द्रनाथ ने अपने बचपन की एक कहानी लिखी है। उन्होंने लिखा है कि मेरे घर में करीब सौ लोग थे, बड़ा परिवार था, और पिता ऐसे आदमी थे, जो मेहमान घर में आ गया, वह धीरे-धीरे घर का निवासी ही हो गया, वह कभी घर से गया ही नहीं। अनेक मेहमान, मेहमान की तरह आए थे फिर वह घर के ही आदमी होकर रह गए। सौ आदमी थे घर मे कई मन दूध खरीदा जाता था। रवीन्द्रनाथ के बड़े भाई ने यह पाया कि दूध में पानी मिलाया जा रहा है। तो एक इंस्पैक्टर नियुक्त किया, दूध खरीदने वाले के ऊपर कि वह देखे कि दूध में पानी न मिल जाए। दूसरे दिन पाया गया कि पानी दूध में और ज्यादा बढ़ गया है। क्योंकि इंस्पैक्टर का हिस्सा भी उसमें बढ़ गया। लेकिन भाई जिद्दी थे, और उन्होंने एक और आदमी को ऊपर नियुक्त किया। तो वह इंस्पैक्टर के ऊपर भी और और चीफ सुपरवाइ.जर था। लेकिन तीसरे दिन पाया गया कि पानी और भी बढ़ गया और दूध और कम हो गया। रवीन्द्रनाथ के पिता ने रवीन्द्रनाथ के भाई को बुलाकर कहा कि यह तुम क्या पागलपन कर रहे हो? तुम जितने दलाल बढ़ाते जाओगे, उतना ही पानी बढ़ता चला जाएगा। लेकिन भाई जिद्दी थे। उन्होंने कहा, कि मैं रूकावट लगा के रखूंगा। अब मैं घर के ही एक आदमी को सबसे ऊपर नियुक्त करता हूं। लेकिन जिस दिन घर का आदमी नियुक्त किया गया, उस दिन एक और अजीब घटना घटी, दूध में पानी तो आया ही, एक मछली भी आ गई। दिखता है, सीधे तालाब से, पोखर से पानी भर दिया गया, उसमें एक मछली भी चली आई। वह घर के आदमी का भी हिस्सा उसमें जुड़ गया था। भारत का व्यवसायी वर्ग, हजारों वर्षों से अनुत्पादक है, उत्पादक नहीं। भारत के व्यवसायी की जो जान है, वह दलाली है, और जिस देश में दलाली जान होगी, दलाल बढ़ते चले जाएंगे। बेईमानी बढ़ती चली जाएगी। और ग्राहक के ऊपर, उपभोक्ता के ऊपर, कंज्यूमर के ऊपर, बोझ बढ़ता चला जाएगा। भारत का व्यवसायी उत्पादक क्यों नहीं है? प्रोडक्टिव क्यों नहीं है? यह थोड़ा सोचना जरूरी है। भारत तीन-चार हजार वर्षों से धन की निंदा कर रहा है। वह कह रहा है, धन फिजूल है। धन व्यर्थ है। धन कचरा है। और जो समाज धन की निंदा करेगा, धन की निंदा से, धन की आकांक्षा समाप्त नहीं होती, धन की आकांक्षा के कुछ स्वाभाविक कारण हैं। धन न तो व्यर्थ है, न असार है। धन की बड़ी सार्थकता है, बड़ी उपयोगिता है। धन जीवन के बीच बदलाहट के लिए, एक्सचेंज के लिए, विनिमय के लिए अत्यंत उपयोगी माध्यम है। उस माध्यम के बिना सभ्यता विकसित नहीं हो सकती। जिन समाजों ने धन का विकास नहीं किया, वो समाज जंगलों में रह रहे हैं, वो विकसित नहीं हो सकते। धन अत्यंत जरूरी है, वह सभ्यता का प्राण है। लेकिन भारत तीन हजार वर्षों से धन का विरोध करता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि धन का विरोध धन की आकांक्षा को नष्ट नहीं करता, धन का विरोध सिर्फ धन के उत्पादक स्वरूप को नष्ट कर देता है। और एक इस तरह की एक लम्बी जमात पैदा करता है, जो धन का उत्पादन भी नहीं करती, और धन की आकांक्षी भी है। और मजे की बात है कि धन के ही जो विरोध करने वाले लोग हैं, हिन्दुस्तान के साधु-संतों की लम्बी परंपरा है, जो धन का विरोध कर रहे हैं, इन साधु-संतों को हिन्दुस्तान का व्यापारी वर्ग ही पालता-पोसता है। और उन साधु-संतों की बात भी हिन्दुस्तान का व्यापारी वर्ग ही बैठके सुनता है। ठीक भी है, आखिर जिनके पास सुविधा है, वही साधुओं को सुन भी सकते हैं, जिनके पास सुविधा नहीं है, वह साधुओं को सुनेंगे कहां।
साधुओं को पालना भी सफेद हाथियों को पालना है। उनको सुनना, सुविधा होनी चाहिए, व्यापारी वर्ग जिसके पास पैसा है, वो साधुओं के आस-पास इकट्ठा

होता है। और ध्यान रहे, व्यापारी उसी साधु को आदर देगा, जो धन का जितना ज्यादा विरोध करे। क्योंकि व्यापारी के मन में धन का लोभ है। वो धन का लोभी है, धन का आकांक्षी है। वो उसको ही सम्मान दे सकता है, जो धन का विरोधी हो। धन के विरोध को निरन्तर साधु-संयासी समझाएगा। और व्यापारी सुनेगा। इससे धन की आकांक्षा नहीं मिटती। लेकिन धन के उत्पादक दिशा में जाने का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। तब दूध में पानी मिला कर अगर धन आ सकता हो, शक्कर में रेत मिला कर धन आ सकता हो, और दवा की जगह पानी भी भरा जा सकता हो, तो इतने सरल रास्तों से फिर धन इकट्ठा करने की कोशिश की जाती है। उत्पादक होना, क्रियेटिव होना, सृजनात्मक होना श्रम मांगता है, लंबा चिंतन मांगता है, प्रतिभा मांगता है, जीवन भर की साधना मांगता है। तब अंत में धन पैदा होगा। और धन के हम विरोधी हैं, तो कोई सरल तरकीब निकालनी चाहिए। जुआ खेल लेना चाहिए, सट्टा खेल लेना चाहिए। और अब पूरे मुल्क की प्रांतीय सरकारें, सारे मुल्क को जुआ खिलवा रही हैं, तो लॉटरी निकाल देनी चाहिए, एक रूपया लगा के लाख रूपया मिल जाएं। जो कौम बिना कुछ किये, रूपये पाना चाहती हो, वह कौम खतरनाक है। एक रूपया लगा कर कोई आदमी एक लाख रूपया पाना चाहता हो, यह आदमी अपराधी है। और यह आदमी खतरनाक है, और इस आदमी को समाज में पालना सब तरह की बीमारियों को पैदा करना है। क्योंकि यह आदमी कुछ करना नहीं चाहता और लाख रूपये चाहता है। धन चाहा जाए, जरूर चाहा जाए, लेकिन धन चाहने का अर्थ है, सृजनात्मक होना, धन को पैदा करने का, कैसे हम, हाउ टू क्रियेट कैपिटल? कैसे हम पैदा करें धन? हम इस मुल्क में पूछते हैं, कैसे हम धन इकट्ठा करें? पैदा करने की बात कोई भी नहीं पूछता। क्योंकि पैदा करने के लम्बे श्रम में कौन लगे? फिर धन कोई इतनी अच्छी चीज भी नहीं कि पैदा किया जाए। कोई सस्ती तरकीब से मिल जाए, तो पा लिया जाए। साधु समझा रहा है, धन व्यर्थ है, व्यापारी समझ रहा है। और व्यापारी सिर्फ साधु की बात इसलिए समझ रहा है, कि उसके मन में धन का लोभ है, और साधु धन का विरोध कर रहा है। अगर साधु कहे कि धन पैदा करो, व्यापारी साधु का पीछा फौरन छोड़ देगा। कहेगा यह भी व्यापारी है।
मैंने सुना है, मियामी बीच पर अमेरिका में, एक साधु की बड़ी ख्याति थी।
और लोग कहते थे वह इतना सरल आदमी है, कि अगर आप दस डॉलर का नोट उसके सामने करें, और दस पैसे का नया सिक्का उसके सामने करें और कहें कि कोई भी आप ले लें, तो वह दस नए पैसे का पक्का सिक्का ले लेगा। जो भी उस बीच पर जाते थे, वह यह खेल जरूर करते थे। जाकर उस साधु के सामने करते थे, दस डॉलर का, सौ डॉलर का सिक्का, दस पैसे का सिक्का, वह जल्दी से उचक के दस पैसे का सिक्का ले लेता था। लोग हंसते हुए लौटते थे। एक आदमी बीस साल पहले गया था, और बीस साल बाद फिर गया, और देखा कि वह बूढ़ा अभी भी वही काम कर रहा है। उसे बड़ी हैरानी हुई, क्या उसे बीस साल में भी अभी तक पहचान नहीं आ सकी कि वह इतना सीधा है, कि दस पैसे के सिक्के में और दस डॉलर के नोट में फर्क नहीं कर पाता। रात जब सारे लोग चले गए, तो उस आदमी ने जाकर बूढ़े से पूछा कि बाबा, मैं बहुत हैरान हूं, क्या तुम अभी भी पहचान नहीं पाते हो? उसने कहा, पहचान नहीं पाता हूं? भली-भांति पहचानता हूं। तो उस आदमी ने कहा, फिर जब लोग तुम्हारे सामने नोट करते हैं, फिर तुम नोट क्यों नहीं ले लेते, दस पैसे क्यों ले लेते हो? उसने कहा तुम पागल हो, जिस दिन मैं दस का नोट ले लूंगा, उसी दिन खेल खत्म हो जाएगा। और अब तक मैंने दस का नोट नहीं लिया, इसीलिए मैंने हजारों-लाखों नोट इकट्ठे कर लिये हैं, बीस सालों में। दस-दस पैसे इकट्ठे करके, वह खेल जारी है। क्योंकि जो लोग आते हैं वह दस रूपये को पकड़ने वाले लोग हैं। वह दस पैसा जो पकड़ता है, दस रूपया जो छोड़ता है, उसे त्यागी समझते हैं। समझते हैं, भोला है, सरल है, दिन भर यह काम चलता है। और एक दिन मैंने दस का नोट लिया, मन तो मेरा भी होता है, दस का नोट ले लूं लेकिन उसी दिन खेल समाप्त हो जाएगा। अगर किसी साधु ने धन की बात की कि साधु का खेल समाप्त हुआ। उसी क्षण समाप्त हो जाएगा। साधु का खेल तब तक चलता है, जब तक वो धन के विरोध में बोल रहा है। साधु का खेल तब तक चलता है, जिस तरह आप जी रहे हैं, वो उसके उल्टा बोल रहा है। वह आपके जीने में सहयोगी नहीं हो रहे हैं उसके विचार, आपके जीवन में बाधा डाल रहे हैं। और सबसे बड़ी बाधा जो साधुओं ने डाली है वह यह है, कि धन

के संबंध में, धन को असार कह कर धन की निंदा करके, धन का विरोध करके, उसने धन के संबंध में बीमारी पैदा कर दी। धन के संबंध में सुव्यवस्था पैदा नहीं हो सकी। जिस चीज को हम असार समझ लेंगे, उस ची.ज की व्यवस्था क्यों करेंगे। जिस चीज को हम असार समझ लेंगे, उसकी हम व्यवस्था क्यों करेंगे। जिसको हम कचरा समझ लेंगे, उसके संबंध में हम सोचेंगे क्यों? लेकिन धन का काम तो जारी रहेगा। अगर हम सोचेंगे नहीं, अगर कोई ऐसा आदमी, उस गांव में आए और लोगों को समझाए कि बीमारियां असार हैं, तो बीमारियों के संबंध में सोचना बंद हो जाएगा, लेकिन बीमारियां बंद नहीं हो जाएंगी। बीमारियां जारी रहेंगी। और बीमारियां खतरनाक हो जाएंगी। क्योंकि कोई अगर बीमारियों के संबंध में न सोचेगा, तो बीमारियों को दूर करना भी मुश्किल है। स्वास्थ्य की व्यवस्था करना भी मुश्किल है। धीरे-धीरे पूरा गांव बीमार हो जाएगा।
इस देश को समझाया जा रहा है, धन व्यर्थ है। धन व्यर्थ होने के कारण सारा देश धन के लिए बीमार हो गया। और धन के लिए हम कोई सुयोजित व्यवस्था, ऐसी कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं उत्पन्न कर पा रहे हैं, जहां धन मित्र बने, शत्रु नहीं। जहां धन मार्ग बने, बाधा नहीं। जहां धन लोगों की जिंदगी में चमक लाए, उदासी नहीं। इस देश में धन लोगों की जिंदगी में चमक नहीं लाता, जिनके पास धन नहीं हैं, वह धन के न होने से पीड़ित हैं। और जिनके पास धन है, वह धन के होने से पीड़ित हैं। धन के कारण किसी की जिंदगी में कोई चमक नहीं आती। क्यों? क्योंकि दूसरी बात हिन्दुस्तान की संस्कृति सिखाती है, सादगी। सादा जीना, ऊंचा विचार। सिम्पल लिविंग और हाई थिंकिंग। एकदम बकवास है। सादी जिंदगी और ऊंचा विचार। सच बात ये है ऊंची जिंदगी और ऊंचा विचार। हां, ऊंची जिंदगी के बाद एक वक्त ऐसा आता है, कि सादी जिंदगी, सारी ऊंची जिंदगियों से ऊंची जिंदगी मालूम होने लगती है। लेकिन अगर कोई ऊंची जिंदगी को जानता नहीं, तो सादी जिंदगी सिर्फ झूठा संतोष है। हिन्दुस्तान को झूठे संतोष की बातें सिखाई जा रही हैं। इसका दोहरा परिणाम हुआ है। गरीब-गरीब रह गया है, क्योंकि वह कहता है, क्या करना है? और अमीर धन भी इकट्ठा कर लेता है, लेकिन रहता गरीब की तरह से है। भारत का व्यवसायी धनी, भारत में जिनके पास पैसा है, वह भी रहते गरीब की भांति हैं। धन इकट्ठा करते हैं। धन को भोगते नहीं हैं, और ध्यान रहे, जिस समाज में, धन को इकट्ठा करने वाले लोग पैदा हो जाते हैं, उस समाज की पूरी जिंदगी सड़ जाती है। धन को भोगने वाले लोग चाहिएं। जो धन को खर्च करते हों, जो धन को फैलाते हों, जो धन को रोकते न हों। लेकिन हिन्दुस्तान में धन को रोका जा रहा है। हिंदुस्तान में आदमी धन इसलिए कमाता है कि तिजोरी में बंद करे। क्योंकि सादी जिंदगी पर जोर है। धनी एक काम करता है, तिजोरी को बड़ा करते चले जाओ। और धनी आदमी ठेठ गरीब की तरह जीता है, बल्कि लोग तारीफ करते हैं कि फलां आदमी बहुत ऊंचा है। इतना बड़ा आदमी है, लेकिन रहता गरीब की भांति है। फिर बेवकूफ है वो, पागल है। अगर धन कमा के गरीब की तरह रहना है, तो बिना धन कमाए गरीब की तरह मजे से रहा जा सकता है। धन कमाने की जरूरत क्या है? और वह आदमी समाज के लिए खतरनाक भी है। क्योंकि जितना धन तिजोरी में बंद हो जाता है, उतना धन समाज के लिए वैसा ही हो जाता है, जैसे हाथ या पैर में बहता हुआ खून कहीं रूक जाए, शरीर में खून दौड़ रहा है। जितनी तेजी से दौड़ रहा है, उतना आदमी जवान होगा। जितना सरलता से दौड़ रहा है और बिना बाधा के दौड़ रहा है, उतना आदमी के शरीर में ताकत होगी। जहां-जहां खून रूक जाएगा, वहीं-वहीं बुढ़ापा शुरू हो जाएगा। और अगर खून की धारा कहीं रूक गई तो पैरालिसिस हो जाएगी। तो वहां तो लकवा लग जाएगा। हिन्दुस्तान का व्यवसायी समाज पैसा कमाता है, और लकवा बन जाता है, पैरालाइज्ड हो जाता है। पैसा कमा के तिजोरी में बंद कर देता है, पैसा खून है, जो दौड़ना चाहिए। लेकिन हिन्दुस्तान को समझाया गया है, कमाओ जरूर, लेकिन खर्च मत करो। फिर कमाना किसलिए। कमाओ, और जितना कमाओ उससे ज्यादा खर्च करो, ताकि खून गतिमान हो। ताकि खून दौड़ता रहे। अगर मेरे पास एक रूपया है, और मैं तिजोरी में बंद कर लूँ तो वो एक ही रूपया रह जाता है। और अगर मैं उसे चला दूं, और दिन भर में वो दस हाथों में गुजर जाए, तो वह एक रूपया दस रूपया हो जाता है। वह एक रूपया दस आदमियों के खीसों को गर्म करता है। वह एक रूपया दस आदमियों के पास दस रूपया बनता है। वह एक रूपया जिंदा है, वो भाग

रहा है, वो दौड़ रहा है, जिस समाज की सम्पत्ति जितने जोर से दौड़ती है, वो समाज उतना सम्पन्न होता चला जाता है।
लेकिन हिन्दुस्तान में एक पागलपन है। और वह यह है कि धन कमाओ तो जरूर, लेकिन उसे खत्म मत करना, रहना गरीब की तरह। सादे विचार रखना, सादे मकान में रहना, सादे कपड़े पहनना। लेकिन फिर इस धन का दिखावा कहां करोगे? इस धन का फायदा क्या होगा? फिर इस धन को गलत जगह दिखाना। लड़की की शादी हो, तो पांच लाख रूपये आग में फूंक देना। जो कि बिल्कुल पागलपन है। फुलझड़ी-पटाखे छोड़ देना हजारों रूपये के। मैंने सुना है एक आदमी ने पचास हजार रूपये के इनविटेशन कार्ड छपवाए। वह जो सादा विचार, सादी जिंदगी है, वो बदला लेगी, और बदला लेगी इस तरह कि गांठ पैदा हो जाएगी। वह जो खून रूक गया है, वह फूलकर कहीं से निकलेगा, तो घाव बनेगा, फूलेगा, मवाद बनेगी, उपद्रव होंगे। हिन्दुस्तान में कोई भी आदमी, धन को भोगता नहीं है, या तो गरीबी भोगता है, या धन की मवाद इकट्ठी होती है और फूटती है। या तो शादी में फूटेगी, या पिता के मरने की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, तब फूटेगी, या कुछ और कोई उपद्रव खोजना पड़ेगा, या कोई मंदिर बनवाना पड़ेगा। या किसी साधु की जन्म तारीख खोजनी पड़ेगी, वर्षगांठ मनानी पड़ेगी। या किसी साधु का स्वर्ण दिवस मनाना पड़ेगा। या कुछ और, और वहां लाखों रूपये खोजने पड़ेंगे। हिन्दुस्तान भी रूपये खर्च करता है, लेकिन गलत जगह खर्च करता है। और गलत जगह इसलिए खर्च करता है, कि ठीक जगह खर्च करने की व्यवस्था पर हमने रूकावट लगाई है। और ये ध्यान रहे, जो लोग धन इकट्ठा करने वाले हो जाते हैं, वह बहुत खतरनाक हो जाते हैं। जो आदमी धन को जितनी उत्पन्नता से खर्च कर सकता है, वह आदमी उतना ही प्रसन्न होगा, कंजूस कभी भी नहीं होगा। जो आदमी जितने जोर से पैसे फेंक सकता है, वह उतना आनंदित होगा। और ध्यान रहे, जो जितना प्रसन्न होगा, और जितना आनंदित होगा, वह उतना प्रोडक्टिव होगा। उतना वह उत्पादनशील होगा। जो आदमी जितना उदास होगा, जिनता गम्भीर होगा, जितना मुट्ठी बंद होगी, उतना कम उत्पादक होगा, कम प्रोडक्टिव होगा, शोषक होगा, एक्सप्लाटेटिव होगा। लेकिन प्रोडक्टिव नहीं होगा। और यह भी धन और ये भी ध्यान रहे, जो आदमी उत्पादन नहीं कर सकता, धन का, वह बेईमानी से धन को इकट्ठी करने की सारी चेष्टाएं करेगा।
हिन्दुस्तान ने धन की उत्पादनशलता पर सब तरफ से रोक लगा दी। कोई सम्मान नहीं है, धन के उत्पादन करने वाले का। हिन्दुस्तान में अगर एक आदमी प्रोफेसर है, तो वो उससे पूछिये कि आप क्या करते हैं? तो वह कहता है कि मैं प्रोफेसर हूं। कोई आदमी अगर इंजीनियर है तो वह कहता है कि मैं इंजीनियर हूं। कोई आदमी अगर मिनिस्टर है तो वो कहता है कि मैं मिनिस्टर हूं। लेकिन एक व्यवसायी, एक व्यापारी थोड़ा सा हेजिटेट करता है, उससे पूछिए आप क्या करते हैं? आश्चर्य की बात है, व्यवसायी तो रीढ़ है समाज की, वह धन पैदा करने का मार्ग है, और वह धन पैदा करने की बुद्धिमत्ता है। वह तो विसडम है, जहां से धन पैदा होता है। लेकिन वह जो सबसे बुद्धिमान वर्ग है, वह संकोच से भरा हुआ है, वह कहता है कुछ नहीं जी, व्यवसाय करता हूं, कुछ काम करता हूं। कोई धन्धा करता हूं। इसका कारण, धन की एक निंदा है। और धन कमाने वाले की भी एक निंदा है। और आश्चर्य की बात है, कि आज तक समाज को, जिन लोगों ने सबसे ज्यादा लाभ पहुंचाया है, वह न तो क्षत्रिय हैं, वह न ब्राह्मण हैं। वह व्यवसायी हैं। वह वे लोग हैं, जो धन पैदा करते हैं। एक, लेकिन इस देश में, धन के प्रति एक निरादर है, और उस निरादर के कारण, वह धन को पैदा करने वाला है, वह भी आदृत नहीं है। और उसका जो सारा का सारा ढांचा हमने खड़ा किया हुआ है, वह ऐसा गलत है, कि वह सारा ढांचा, मनुष्य को धन की सहज दिशाओं में नहीं ले जाता, वह सीधे रास्ते ही नहीं देता, वह गलत रास्ते ही देता है। और गलत रास्तों से धन पैदा करने के उपाय करवाता है। हम इस देश में, जब तक धन की गरिमा को सीधा-सीधा स्वीकार नहीं करेंगे और जब तक हम ये भी स्वीकार नहीं करेंगे कि धन खर्च करने के लिए है, असल में धर्म का मतलब है खर्च करने की क्षमता, अगर खर्च करना बंद करते हैं तो धन, धन ही नहीं है। वह मिट्टी है। उसे खर्च करते हैं, इसलिए वह धन है। और धन जितना खर्च होता है, उतना फैलता है, और अधिक होता है, समाज को समंवित करता है।

तीसरी बात है कि हिन्दुस्तान के व्यवसायी को, वो जो साधु-संतों के आस-पास इकट्ठा होकर, धन की, व्यवसाय की, जीवन की निंदा सुन रहे हैं, वो बंद करनी चाहिए। और उनसे जो जीवन के गलत सूत्र सुन रहे हैं, उसने सुना जा रहा है, साधु समझा रहे हैं, चादर जितनी हो, उससे ज्यादा पैर कभी नहीं पसारने चाहिए। और ध्यान रहे व्यवसाय का सूत्र यह है, कि चादर जितनी हो उससे हमें ज्यादा पैर पसारने चाहिएं। कोई आदमी अगर चादर के भीतर पैर पसारेगा, तो चादर कभी बड़ी नहीं हो सकती, बड़ी होने की जरूरत नहीं, चैलेंज नहीं, चुनौती नहीं। जब कोई आदमी चादर के बाहर पैर फैलाता है, पैर पर ठंड लगती है, तब वह चादर को बड़ा करने का विचार करता है।
अमेरिका में या पश्चिम में जो धन का आकाश से जो एकदम अम्बार टूट पड़ा है, वह आकस्मिक नहीं है, वह आकस्मिक बिल्कुल नहीं है, उसके पीछे कारण है, उन्होंने यह बात समझ ली है, कि हम जितनी आवश्यकता को बढ़ाएंगे, उतनी आवश्यकता मांग करती है कि पैदा करो। आवश्यकता बढ़ती है, तो उत्पादन बढ़ता है, आवश्यकता बढ़ती है चादर, छोटी पड़ जाती है, पैर आगे निकल जाते हैं, तो बड़ी चादर करने का विचार करना पड़ता है।
हिन्दुस्तान हजारों साल से इस तरह की नासमझी की बातें सुन रहा है कि जितनी चादर हो उससे कम पैर सिकोड़ो। अगर तुम बड़े हो जाओ तो और पैर अपने पेट से लगा कर सो जाओ। लेकिन चादर के बाहर पैर मत निकालना। यह बातें हमें सुनने में अच्छी लगती हैं। क्यों? क्योंकि, यह बातें आलस्य को प्रोत्साहन देती हैं। यह बातें हमें सुनने में अच्छी लगती हैं। क्योंकि यह बातें, हमें खतरनाक रास्तों पर जाने से बचा लेती हैं। यह बातें सुनने में अच्छी लगती हैं, क्योंकि यह संघर्ष और तनाव से हमें बचा लेती हैं। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, बिना तनाव के, बिना संघर्ष के, बिना असंतुष्ट हुए, इस जगत में कुछ भी पैदा नहीं होता है। और यह भी मैं आपसे कहना चाहता हूं, कि जो आदमी कभी असंतुष्ट नहीं हुआ हो, वो आदमी संतोष के राज को भी कभी नहीं समझ पाएगा। यह बात उलटी मालूम पड़ेगी, लेकिन मैं आपसे कहता हूं जो आदमी दिन में ठीक से जागा है, वही आदमी रात में ठीक से सोता है। और जिस आदमी ने दिनभर मजदूरी और मेहनत की है, वो आदमी जितना विश्राम करता है, उतना आदमी वह कभी विश्राम नहीं करता जिसने दिन भर कोई श्रम नहीं किया। श्रम करने वाला विश्राम करने की क्षमता जुटा लेता है, और मैं आपसे कहता हूं असंतुष्ट होने वाला, संतुष्ट होने की क्षमता जुटाता है। और जो आदमी जितने तनाव में जीता है, वह उतना शान्त होने की ताकत इकट्ठी करता है। और जो आदमी तनाव से भागता है, असंतोष से भागता है, सब तरह के संघर्ष से भागता है, वह आदमी शांति को कभी उपलब्ध नहीं होता। वह आदमी सिर्फ मर जाता है, मुर्दा हो जाता है। मरघट की शांति एक बात है, मंदिर की शांति बिल्कुल दूसरी बात है। मंदिर की शांति जीवन के लम्बे संघर्ष का अंतिम फल है, मरघट की शांति कोई अभी चाहे, इसी वक्त मर जा सकता है, और शांत हो सकता है।
हिन्दुस्तान में मरने की तरकीब सिखाई जा रही है, जीने की तरकीब नहीं।
और इसके स्वाभाविक परिणाम हुए हैं, और वो परिणाम व्यवसायी वर्ग पर बहुत जोर से हुए हैं। क्योंकि वो मरने की तरकीब सुनने की सुविधा व्यवसायी के पास है। वह सुन रहा है। वह मंदिर बना रहा है। और एक उलटा मंदिर हमने जीवन का खड़ा कर लिया है। मैं आपसे कहूं, हिन्दुस्तान में, हिन्दुस्तान के व्यवसाय में, हिन्दुस्तान के अर्थतंत्र में, हमने उल्टी व्यवस्था की, शीर्षासन कर रहे हैं हम, और वो शीर्षासन यह है, कि हमने पदार्थ को भूत को, मैटेरियल को, मैटेरियलिज्म को बिल्कुल इंकार किया हुआ है। हम कहते हैं मैटेरियलिज्म, वह पश्चिम के लोग भौतिकवादी हैं। हम अध्यात्मवादी हैं। लेकिन ध्यान रहे भौतिकवाद जीवन का पहला आधार है।
जैसे कोई मंदिर की नींव भरता है। तो नींव में तो पत्थर भरने पड़ते हैं। लेकिन ऊपर कलश पर स्वर्ण का कलश लगाते हैं। कोई अगर स्वर्ण का कलश नींव में लगा दे, और नींव के पत्थर ऊपर रखने की कोशिश करे। तो वो मंदिर तो गिरेगा ही, उसके पुजारी भी मरेंगे, उसके पूजा करने वाले भी मरेंगे।
भारत हजारों साल से उलटे सिर खड़े होने की कोशिश कर रहा है। हम अध्यात्म को बुनियाद में रखते हैं, जो कि गलत है। अध्यात्म हमेशा अंतिम,

वह शीर्ष, वहशखर है। भूत, जिसको हम मैटीरियलिज्मरें, भौतिकवाद वह प्रथम है। भारत इनकार कर रहा है भौतिकवाद को। और इसलिए भारत से ज्यादा भौतिकवादी समाज खोजना मुश्किल है। भारत में हम त्याग की इतनी बातें करते हैं, एक तरफ व्यापारी त्याग की बात करेगा, एक तरफ वह नंगे खड़े हुए आदमी की पूजा करेगा और दूसरी तरफ, दूसरी तरफ वह जिस बुरी तरह से धन खींचेगा, तो उसमें सारी मनुष्यता निचुड़ जाए। सारी आदमियत निचुड़ जाए, इसकी भी फिक्र नहीं करेगा। एक तरफ वह खून चूस लेगा और दूसरी तरफ वह दानवीर हो जाएगा। और इन दोनों में कन्ट्रोडिक्शन नहीं है, कोई विरोधाभास नहीं है। थोड़ा सोचने जैसा है।
मैं एक घर में ठहरता हूं, उस घर में ऊपर एक पश्चिमी परिवार रूका हुआ था, कुछ दिनों से। वो पश्चिमी परिवार के संबंध में जब भी मैं उस घर में गया, तो उस घर के लोगों ने कहा, बिल्कुल नीरे भौतिकवादी हैं। सिवाय गाना-बजाना, खाना-पीना, बारह-बारह बजे रात तक नाचते रहते हैं। यह सब क्या पागलपन है। नीरे भौतिकवादी हैं, इन्हें सिवाय शरीर के और कुछ भी नहीं है। दो वर्ष बाद में फिर गया, ऊपर के मेहमान घर छोड़के चले गए थे। विदेश, अपने देश वापस लौट गए थे। उस घर के लोगों से मैंने पूछा, क्या ऊपर के लोग चले गए? उन्होंने कहा चले गए, और बड़ी हैरानी की बात, जो बर्तन मांजने वाली थी, उसको वह अपने बर्तन दे गए, और बिल्कुल स्टेनलेस स्टील के, असली स्टेनलैस स्टील के बर्तन, वो उसी को दे गए, नौकरानी को। जो घर में बुहारी लगाता था, उसे अपना रेडियो दे गए हैं। वह अपना सब सामान बांट गए, वह कुछ ले नहीं गए, बड़े अजीब लोग थे।
मैंने उनसे पूछा, तुम्हें भी कुछ दे गये हैं, उनकी आंखों में तो मुझे लार टपकी मालूम पड़ी, उनको वह कुछ दे नहीं गए थे, शायद संकोच में सोचा होगा कि इनको कुछ देने के लिए कहना ठीक नहीं। शायद वो अपमान समझें, क्योंकि उनसे बहुत ज्यादा उनके पास है। वह कहने लगें, नहीं, हमें क्या जरूरत है, देने की। लेकिन उनकी आंख व उनके चेहरे को देखे कर लगा कि भारी दुःखी हैं वह, वह जो बरोनी को दे गए हैं बर्तन अगर इनको दे गए होते, तो बहुत अच्छा होता। तो उन्होंने कहा नहीं, हमें तो कुछ नहीं दे गए। लेकिन उनके लड़के ने मुझे कहा कि नहीं मम्मी, एक चीज अपने पास उनकी है। मम्मी ने डाटने की कोशिश की, लेकिन उस लडके को कुछ समझ में नहीं आया और उसने कहा वो रस्सी छोड़ गए हैं। कपड़े बांधने की रस्सी होगी नायलोन की कोई, ऊपर। वह लड़के ने कहा कि वह रस्सी छोड़ गए थे, मम्मी उसको खोल लाई है। वह एक चीज हमारे पास भी छूट गई है। वह भौतिकवादी थे, यह अध्यात्मवादी लोग हैं। यह रोज सुबह पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, मंदिर जाते हैं, साधु के चरण पड़ते हैं। साधु को घर बुलाते हैं, उससे प्रवचन लेते हैं। यह आध्यात्मिक हैं। वह भौतिकवादी लोग थे।
मैं आपसे कहता हूं वह ऊपर का परिवार कभी आध्यात्मिक हो सकता है, लेकिन
यह नीचे का परिवार कभी भी अध्यात्मिक नहीं हो सकता। असल में जीवन के तथ्यों को हम अस्वीकार कर रहे हैं। इसलिए भारत का व्यवसायी, नितांत भौतिकवादी है। मंदिर बनाता है, पूजा करता है, प्रार्थना करता है, साधु के पीछे चक्कर लगाता है, तीर्थ करता है। हजारों-लाखों रूपये खर्च करता है, और दूसरी तरफ, दूसरी तरफ उसके जीवन में, उसमें जीवन में धर्म जैसी, सुसंस्कृति जैसी, अध्यात्म जैसी कोई ची.ज नहीं दिखाई पड़ेगी। जब वह दुकान पर मिलेगा, तब वह आदमी बिल्कुल दूसरी तरह का है, यह दोहरी बातें क्यों हैं? इनके पीछे कुछ कारण हैं, हमने जीवन की सच्चाई को इंकार किया हुआ है। मैं आपसे कहना चाहता हूं अगर भारत में एक अच्छा व्यवसायी समाज पैदा करना हो और एक अच्छा अर्थतंत्र पैदा करना हो, तो हमें धन की महत्ता को और भौतिकवाद की उपयोगिता को, परिपूर्ण रूप से, पूरे मन से स्वीकार करना होगा। यह मान लेना होगा कि भौतिकवाद की अपनी जगह है। और कोई आदमी अगर धन कमाने जा रहा है, तो निंदा योग्य नहीं है। हां, कोई आदमी अगर गलत ढंग से धन कमाने जा रहा है, तो निंदा योग्य है। ठीक ढंग से, उत्पादक ढंग से कोई आदमी धन कमाने जाता है तो वह आदर के योग्य है। कोई आदमी धन को इकट्ठा करता है तो निंदा के योग्य है। कोई आदमी अगर धन को जीता है, भोगता है, तो निंदा के योग्य नहीं है। रोक लेने

वाला खतरनाक है, भोग लेने वाला खतरनाक नहीं है। धन को फैला देगा। और हमें ये ध्यान रखना पड़ेगा कि जिंदगी के शरीर की बाहर की जिंदगी की जो जरूरतें हैं, उनको जबरदस्ती रोक के अगर, हमने संतोष करने की कोशिश की तो वो जरूरतें उल्टे रास्ते से, पीछे के रास्ते से प्रकट होनी शुरू हो जाती है, और सारे व्यक्तित्व को बेईमान कर देती हैं। सारे व्यक्तित्व को बेईमान कर देती हैं। अगर हम अपनी जरूरतों को उनको ठीक रास्तों से निकलने दें, तो व्यक्तित्व एक ईमानदारी को एक आनेस्टी को उपलब्ध होता है। भारत का व्यवसायी पूरा बेईमान है, कारण? कारण एक, और वह यह है कि जीवन के सहज जो द्वार हैं, वह सब हम बंद किये बैठे हैं। और पीछे के द्वार के सिवाय निकलने का कोई रास्ता नहीं छोड़ा है। पीछे के दरवाजे से ही निकलना पड़ेगा, सीधे दरवाजे पर हम किसी को स्वीकार नहीं करते। और ध्यान रहे, अगर इस तरह की प्रवृत्ति तीन-चार हजार वर्ष तक चल जाए, तो हम भूल ही जाते हैं। यह हमारे प्राणों में प्रविष्ट हो गए हैं। हमारे खून, हमारी हड्डी-मांस-मज्जा में मिल गई है।
अब चाहे हम व्यवसायी हों, चाहें हम शिक्षक हों, चाहे हम नेता हों, और चाहे हम कोई भी हों। हमारे खून में ये सब इकट्ठा मिल गया है। इस इकट्ठे को बदलने के लिए कुछ किया जाना जरूरी है। पहली बात, अमेरिका की उम्र मुश्किल से तीन सौ वर्ष है। रूस की सभ्यता की उम्र तो केवल पचास वर्ष है। क्या आपने कभी ख्याल किया कि दुनिया की सारी पुरानी सभ्यताएं, अमेरिका की नई सभ्यता के सामने एकदम कमजोर और नपुंसक सिद्ध हो गई हैं। क्यों? नया, नये ने पुराने सारे जाल से मुक्त कर दिया। पुराना कुछ था ही नहीं। सब नया है। रूस ने पचास साल पहले अपने पुराने को नमस्कार कर लिया। पुराने सारे कचरे को इंकार कर दिया। फिर नया खून दौड़ा है, पचास सालों में रूस ने नई जिंदगी खड़ी कर ली। अमेरिका कमजोर पड़ रहा है रूस से। क्योंकि रूस और भी नया है। और ध्यान रहे आने वाले दस सालों में रूस, चीन से कमजोर पड़ जाएगा। क्योंकि रूस फिर पुराना पड़ने लगा है। चीन और भी ज्यादा नया है। भारत इतना पुराना है, कि वह दुनिया में किसी भी सभ्यता के मुकाबले आज खड़ा नहीं हो सकता।
पुराना होने से हम सड़ जाते हैं। एक हमें तय करना पड़ेगा कि हमें भी नए होने की हिम्मत जुटानी पड़ेगी। हमें भी एक स्थिति तय करके पुराने को नमस्कार करके आगे बढ़ना होगा। और ध्यान रहे, जीवन में इतनी ऊर्जा छिपी है कि अगर चुनौती खड़ी हो जाए, तो शक्ति पैदा हो जाती है। लेकिन चुनौती खड़ी न हो तो शक्ति पैदा नहीं होती।
जर्मनी में दूसरे महायुद्ध के बाद लोगों को ख्याल था कि अब जर्मनी कभी भी खड़ा नहीं हो सकेगा। लेकिन अब जाके जो मित्र देख कर लौटे हैं, वो कहते हैं कि कोई कह ही नहीं सकता कि दूसरा महायुद्ध कभी हुआ। लोग सोचते थे जापान हमेशा के लिए टूट गया, हजारों साल लग जाएंगे। लेकिन अब कोई जापान जाकर देखता है, वो फिर खड़ा हो गया, वह फिर ताजा हो गया। यह बात क्या है? और हम, इस देश ने महाभारत के बाद कोई बड़ा युद्ध नहीं देखा। महाभारत हुए अंदाजन पांच हजार वर्ष तो हुए होंगे। और महाभारत भी कभी हुआ कि नहीं, यह भी संदिग्ध है। और इतना बड़ा हुआ हो, यह तो बिल्कुल संदिग्ध है। क्योंकि वो जिस कुरुक्षेत्र के मैदान में हुआ, वह इतना छोटा है कि उस मैदान में इतने लोग नहीं बन सकते, जितनों की कहानी है।
पांच हजार साल पहले एक महायुद्ध हुआ था। उसके बाद कोई बड़े युद्ध से हम नहीं गुजरे। लेकिन हमसे ज्यादा मरा हुआ कोई समाज नहीं है, बात क्या है? बात यह है कि हम पुराने से पुराने होते चले गए हैं। हमने पुराने मकान को ही जगह-जगह से सीप दे दी है। कभी कोई खिड़की टूटती है तो उसको लकड़ी लगा कर संभाल देते हैं। कभी कोई दीवाल गिरने लगती है तो थोड़ी सी नई ईंटें जोड़के लगा देते हैं। पूरा मकान धीरे-धीरे सब तरफ से सुधारा जा चुका है, सब पुराना है। और पुराने को संभालने के लिए जो लगाया था, वह भी पुराना हो गया। उसको भी संभालने के लिए हमने कुछ लगाया। ऐसा समझिये कि एक आदमी की आंख खराब हो जाए। चश्मा लगा दिया। वह चश्मा भी खराब हो गया, उसको फेंका नहीं, उस चश्मे को सुधारने के लिए उसके ऊपर एक और चश्मा लगाया। वह चश्मा भी खराब हो गया, उसको भी फेंका नहीं, उसके ऊपर और एक चश्मा लगाया। अब उस आदमी के पास इतने

चश्में हो गए हैं कि उनको लेके न तो वह चल सकता है, न उठ सकता है, न बैठ सकता है, और इतनी लंबी कतार हो गई है चश्मों से कि कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता। लेकिन उन चश्मों को ढो रहा है। भारत का समाज पुराने से पीड़ित, पुराना हमारी छाती पर बैठा हुआ है। उससे हमारा कोई छुटकारा नहीं हो रहा है। एक, उसे पुराने को पूरा का पूरा एक साथ, गिरा देना जरूरी हो गया है। उसे आग लगा देने की जरूरत, उस पूरे को गिरा देने की आवश्यकता है। और उस पुराने ने जो सूत्र हमें दिये हैं, उन सूत्रों को भी गिरा देने की जरूरत है।
जैसे मैंने कुछ सूत्र कहे, वह मैं दोहरा दूं। एक तो धन की निंदा खतरनाक है। जो समाज धन की निंदा करेगा, वह धन का लोलुप हो जाएगा। जो समाज धन का विरोध करेगा, वह बेईमान हो जाएगा। धन सीधा स्वीकृत हो, तो लोलुपता नष्ट होती है। और दूसरी बात, धन के उत्पादक, धन के उत्पादन पर सम्मान दिया जाना चाहिए। जो धन को इकट्ठा करे, वह नहीं है सम्मानी।

नये भारत का जन्म
आठवां प्रवचन

दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ेगी

मैं मानता ही ऐसा हूं कि पूंजीवाद का काम ही यह है कि इतनी संपत्ति पैदा कर जाए कि समाजवाद संभव हो सके।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं ऐसा नहीं है क्योंकि मार्क्स के ख्याल में ऐसा है, कि पूंजीवाद समाजवाद नहीं लाएगा। पूंजीवाद अपने अंतर्कलह पैदा करेगा। और अंतर्कलह समाजवाद लाएंगे। मेरी ऐसी धारणा नहीं है। मार्क्स का ख्याल यह है पूंजीवाद ऐसी स्थिति पैदा कर देगा कि अभी जो तीन वर्ग हैं समाज में, पूंजीपति का वर्ग, पूंजीहीन का वर्ग और मध्यम-वर्ग, पूंजीवाद का शोषण मध्यम-वर्ग को नष्ट कर देगा। मध्यमवर्ग का बड़ा हिस्सा सर्वाहारा हो जाएगा। छोटा सा हिस्सा पूंजीवादी हो जाएगा और समाज सीधा दो हिस्सों में कट जाएगा। जिस दिन समाज दो वर्गां में सीधा कट जाएगा, उस दिन पूंजीवाद की अन्तर्कलह ही पूंजीवाद की मृत्यु बन जाएगी।
मेरी दृष्टि बिल्कुल भिन्न है, मेरी समझ ऐसी है कि जैसे-जैसे पूंजीवाद विकसित होगा, मघ्यमवर्ग नष्ट नहीं होता, जैसे-जैसे पूंजीवाद विकसित होता, मजदूर का वर्ग नष्ट होता है। और अन्ततः एक ऐसी समाज स्थिति बनती है जहां, वह मध्यमवर्ग ही रह जाता, जिसके एक छोर पर धनी रहता है, दूसरे छोर पर निर्धन रहता है, लेकिन मध्यवर्ग अकेला वर्ग रह जाता है। और जहां मध्यवर्ग अकेला वर्ग रह जाएगा, जहां मजदूर के पास भी कुछ खोने को होगा, बिल्कुल सर्वाहारा ही होगा मजदूर। और जहां मध्यवर्ग धीरे-धीरे फैलते- फैलते अपने दोनों छोरो को आत्मसात कर लेगा, यह जो स्थिति बनेगी यह अंतर वर्ग कलह से, इनर क्लास इस्ट्रगल से समाजवाद नहीं आएगा, बल्कि पूंजीवाद की पूरी सफलता से समाजवाद आएगा।

प्रश्नः टू फॉर्मूलेटिड इन अदर वे, वॉट यू आर नॉट एग्री विद, पे दि जैनेरेशन ऑफ इंटीपेसिस दि मार्क्स एक्सप्लेनेशन, दि कांटेक्ट ऑफ ए कैपिटलिज्म, ऑलदो यू आर एडमिटिंग टू हिस्टोरिकल प्रोसेस विच इज़ इनएडिटेबल।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नो, ऐतिहासिक प्रक्रिया कि तो मैं बात कर रहा हूं लेकिन ऐतिहासिक डिटरमिनिज्म की नहीं। जैसे ही हम ऐतिहासिक डिटरमिनिज्म की बात करते हैं, तब हिस्ट्री अपने आप में एक बड़ी दैवी शक्ति बन जाती है, ईश्वरीय हो जाती है। और मनुष्य के हाथ के बाहर हो जाती है, और मनुष्य उसके हाथ में एक खिलौना हो जाता है। जब मैं ऐतिहासिक प्रक्रिया की बात कर रहा हूं तो मेरा मतलब कुल इतना है कि जीवन के विकास के चरण हैं और प्रत्येक विकास का चरण, एक खास दिशा में इंगित करता है कि जहां इतिहास जा सकता है, लेकिन फिर भी वहां जाएगा या नहीं जाएगा ये मनुष्य की चेतना सदा ही चुनाव करती है। और ऐसा मैं नहीं मानता हूं कि पूंजीवाद से अनिवार्य रूप से समाजवाद फलित होगा, पूंजीवाद से समाजवाद फलित हो सकता है, फलित होने से रोका भी जा सकता है। यह मनुष्य की चेतना ही तय करेगी कि वह समाजवाद को फलित होने दे या न होने दे। अगर आदमी दर्शक की भांति खड़ा रहे, तो जरूर इतिहास की प्रक्रिया धीरे-धीरे समाजवाद को ले आएगी। लेकिन आदमी दर्शक नहीं है, पार्टिसिपेंट है। और आदमी सिर्फ हिस्टोरिकल नैसेसरी से नहीं जी रहा है, बल्कि आदमी हिस्ट्री को पैदा भी कर रहा है। और ये दोनों बातें बड़ी अंतरनिर्भर हैं। क्योंकि हमें हिस्ट्री पैदा करती है, और हम हिस्ट्री को पैदा करते हैं। हिस्ट्री हमें एक सीमा तक डिटर्मिन करती है, और एक सीमा तक हम हिस्ट्री को

डिटर्मिन करते हैं। इसलिए अकेला हिस्टोरिक डिटर्मिनिज्म मुझे घातक मालूम पड़ता है। ज्यादा उचित होगा कहना कि यह एक इंटरडिपेन्डिंग डिटर्मिनिज्म है, जिसमें आदमी पूरे वक्त निश्चय कर रहा है। और ये हो सकता है कि अगर आदमी तय कर ले तो समाजवाद कभी भी न आए। और ये भी हो सकता है अगर आदमी तय कर ले तो समाजवाद पूंजीवाद की आधी अवस्था मे भी थोप दिया जाए। यह दोनों हो सकता है। जैसे रूस में मैं मानता हूं कि हिस्टोरिक डिटर्मिनि.ज्म से नहीं समाजवाद आ गया है। आदमी के... आया है। क्योंकि रूस में न तो पूंजीवाद था, न पूंजीवाद की कोई विकसित अवस्था थी, और न कोई सर्वहारा का वर्ग था, और न काई पूंजीपति का वर्ग था। रूस तो एक सोसाइटी थी। चीन में भी ऐसी ही सोसाइटी थी। यह हमारी सोसाइटी भी अभी तक वैसी सोसाइटी है। चीन जैसे बिल्कुल किसानों के देश में भी समाजवाद लाया जा सका, आया या नहीं, यह दूसरी बात है। पूरी तरह आया नहीं, यह भी दूसरी बात है। लेकिन मनुष्य की चेतना भी निर्धारक है। और छोटी-मोटी निर्धारित नहीं है और जैसे-जैसे आदमी विकसित हो रहा है, वैसे-वैसे मनुष्य के निर्धारण की क्षमता बढ़ती है और इतिहास के निर्धारण की क्षमता कम होती है। जितना मनुष्य की चेतना का विकेस होगा, तो एक एस्टीनिरेटिंग ताकत है, जो मनुष्य के पास आती जा रही है, और अब यह हम कह सकते हैं कि यह हो सकता है, कि आने वाले सौ-दो सौ वर्षों में, ऐतिहासिक डिटर्मिनिज्म का कोई बहुत गहरा अर्थ न रह जाए। मनुष्य की चेतना बहुत कुछ निर्धारक हो जाए।
प्रश्नः कमिशन कैपिटलिज्म की होनी जरूरी नहीं है, सोशियलिज्म के लिए,
तो कैपिटलिज्म... देगा बाद में, मन हो फिर भी सोशियलिज्म आ सकता है। जैसा लंदन में और वाशिगंटन में हुआ है, स्वीडन में हुआ है। दूसरी बात आपने बताई कि जो कैपिटलिज्म है, उससे इंडिविजुअल कैपिटलिज्म आप चुनाव करते हैं उसका, उसे प्रिफर करते हैं। तो स्टेट कैपिटलिज्म इज़... टू इंडिविजुअल कैपिटलिज्म, आप पसंद करते हैं, तो उसमें जो... का प्रॉब्लम है, वह खत्म नहीं होता है।
पहली बात तो यह कि मैं यह कहता हूं कि पूंजीवाद अगर पूरी तरफ विकसित न
हो तो भी सोशियलिज्म लाया जा सकता है। लेकिन यह अलग बात है। अब आप समझें, यह लाया जा सकता है, यह बिल्कुल लाया जा सकता है, लेकिन अगर ऐतिहासिक स्थिति तैयार नहीं है तो भी मनुष्य की चेतना इसे ला सकती है। लेकिन तब मनुष्य की चेतना को बहुत कुछ जबरजस्ती करनी पड़ेगी इतिहास की प्रक्रिया के साथ।
वॉयलेंस से मेरा मतलब सिर्फ इतना ही नहीं होता कि हम बंदूक चलाएं, गोली बनाएं, खून गिराएं। ना, वॉयलेंस से मेरा मतलब होता है कि जहां भी हमें, फोर्स्ड कुछ करना पड़े, जरूरी नहीं है कि आपके ऊपर मैं छुरा चलाऊं, तभी वायलेंस हो। यह जरूरी नहीं है। कोयर्सन को मैं वायलेंसी कहता हूं।

प्रश्नः पर कोअर्सन कैपिटलिज्म में इनहैरंट है।

हां, वह तो सभी जगह, सभी समाज की व्यवस्थाओं में रहेगा। असल में, जब तक व्यवस्था रहेगी, कोअर्सन इनहैरेंट रहेगा। वो तो एक स्टेटलेस सोसाइटी में ही कोअर्सन नहीं हो सकता। क्योंकि कोयर्सन से बॉडी नहीं हो सकती। समाजवाद कैपिटलिज्म के पूर्व भी लाया जा सकता है। इसे मैं इस अर्थ में कह रहा हूं जब मनुष्य की चेतना इतिहास को इस भांति निर्धारित कर सकती, लेकिन इस निर्धारण करने में चूंकि इतिहास की प्रकिया तैयार न होगी, हम जो भी करेंगे, उसमें हमें कोअर्सन का उपयोग करना पड़ेगा। क्योंकि स्थितियां तो तैयार न होंगी, मनुष्य की चेतना स्थितियों को तैयार करने की जबरदस्ती करेगी।
दूसरी बात, दूसरी बात जो व्यक्तिगत हाथों में, पूंजी या राज्य के हाथों में पूंजी, इन दोनों में व्यक्ति के हाथों में पूंजी को पसंद करता हूं। और व्यक्ति के हाथों से किसी दिन जाए तो समाज के हाथों में जाए, इसे पसंद करता हूं। राज्य का जो मध्यस्थ एजेंसी है, उसके हाथ में पूंजी की सत्ता न जाए ये मैं चाहता हूं। और इन तीनों बातों को मैं कहना चाहूंगा। व्यक्ति के हाथ में, राज्य के हाथ में, समाज के हाथ में। और यह तीनों अलग-

81

अलग बातें हैं। व्यक्ति के हाथ में तो पूंजीवाद के बाद है, अगर हम जबरदस्ती, यानि इतिहास की प्रक्रिया पूरी न हुई हो, और यह व्यक्तिगत पूंजी को समाप्त करना चाहें, और समाज के हाथों में पहुंचाना चाहें तो समाज के हाथ में पहले नहीं पहुंचेगी। पहले राज्य के हाथ में पहुंचेगी। क्योंकि कोई ऐसी बॉडी चाहिए जो व्यक्ति के हाथ से छीने, और समाज के हाथ में देने की तैयारी करे। जरूरी नहीं है, कि एक दफा राज्य अपने हाथ में लेकर, समाज के हाथ में दे। यह दूसरी बात है। लेकिन वह यह तो दिखाए कि हम व्यक्ति के हाथ से छीन कर, राज्य के हाथ में देते हैं। समाज के हाथ में देते हैं, और जब व्यक्ति के हाथ से छीन लें तो राज्य दे या न दे, यह बहुत सी बातों पर निर्भर करेगा।
यह जरूरी नहीं होगा कि वायदा पूरा किया जाए। और मेरी समझ यह है कि वायदा पूरा करना बहुत कठिन पड़ेगा। कठिन इसलिए पड़ेगा कि एक बार राज्य के हाथ में, राज्य की भी ताकत हो, और धन की भी ताकत हो, यह दोनों ताकत जब राजनीतिज्ञ के हाथ में इकट्ठी हो जाएं, तो राज्य यह पसंद करेगा या नहीं, यह तो उस राजनीतिक ग्रुप के ऊपर निर्भर करेगा और यह भी एक अर्थों में मनुष्य की चेतना निर्धारित होगी कि क्या हो? इसके बाबत नहीं कहा जा सकता कि यह कोई हिस्टोरिकल डिटर्मिनिज्म से तय नहीं हो जाएगा कि राज्य अपने आप हाथ में सौंप दें। दूसरी बात, जैसे ही हम व्यक्ति की संपत्ति को राज्य के हाथ में देते हैं, हम व्यक्ति की हैसियत को भी खत्म करते हैं, व्यक्ति की बगावत की हैसियत को भी खत्म करते हैं, व्यक्ति के विद्रोह की हैसियत को भी खत्म करते हैं, व्यक्ति के चिंतन की सामर्थ्य को भी क्षीण करते हैं। क्योंकि राज्य के हाथ में... सारी शक्ति आ जाती है। मैं इसके पक्ष में नहीं हूं। मैं जरूर इस पक्ष में हूं कि एक दिन व्यक्ति के हाथ से समाज के हाथ में संपत्ति चली जाए। लेकिन वह कैसे जाएगी? वह अगर राज्य के द्वारा नहीं जाती, तो दूसरा क्या उपाय हो सकता है? मेरी दृष्टि में, संपत्ति उसी दिन व्यक्ति के हाथ से राज्य के हाथ में सहज रूप से जा सकती है, बिना राज्य के बीच में आए, जिस दिन संपत्ति इतनी अधिक हो कि संपत्ति पर व्यक्तिगत मालकियत बेमानी हो जाए। इसके पहले नहीं जा सकती।
संपत्ति पर मालकियत का मजा तभी तक है, जब तक संपत्ति कम है और उपभोक्ता ज्यादा हैं। जब तक संपत्ति न्यून है और लोग ज्यादा हैं। अगर कल हम टेक्नोलॉजिकल रेवोल्यूशन से इतनी संपत्ति पैदा कर सकें, जो कि हो सकती है कि संपत्ति को व्यक्तिगत बनाने का कोई भी अर्थ न रह जाए। तो ही व्यक्ति के हाथ से समाज के हाथ में संपत्ति जाएगी।

प्रश्नः मायने क्या? समाज के हाथ में जायगी, किसके पास जाएगी, कहां रहेगी?

जब भी हम पूछते हैं, किसके पास जाएगी, कहां रहेगी? तो हम उसी भाषा में पूछ रहे हैं कि या तो व्यक्ति के पास रहे, या राज्य के हाथ में रहे। असल में जब समाज के हाथ में जाएगी, तो बताना मुश्किल हो जाएगा कि लोकस कहां है। समाज का मतलब ही यह होता है। जब तक हम लोकस बता सकते हैं कि यहां है, तब तक किसी के हाथ में है। समाज के हाथ में नहीं है। समाज के हाथ में जाने का मतलब ही यह है कि नाओ प्रोपर्टी इस नो वेअर, बिकॉज इट इज़ एवरीवेयर। जब भी जब तक हम बता सकते हैं, समवेयर, तब तक आप समझना कि समाज के हाथ में नहीं गई है। अभी हम कह सकते हैं, बिरला के पास है, सिंघानिया के पास है, टाटा के पास है, रूस में हम कह सकते हैं राज्य के पास है, चीन में हम कह सकते हैं राज्य के पास है। जिस दिन समाज के हाथ में संपत्ति जाएगी, उस दिन हमारे पास होगी। हमारे पास का मतलब क्या हुआ, हमारे पास का मतलब ये हुआ कि हम ऐसा पर्टिकुलराइज नहीं कर सकते कि इसके पास, सम्पत्ति उस दिन बना, आज हवा किसके पास है? अगर हम पूछने जाएं कि हवा किसके पास है? तो हमें कहना पड़ेगा, हवा किसी के पास नहीं है। जिस दिन हम संपत्ति को इतना पैदा कर लें कि वह हवा की तरह अतिरेक में हो जाए, लूएंट हो जाए, उसी दिन समाज के हाथ में होगी, उससे पहले नहीं होगी।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

असल में ऑर्गेनिज्म भी बहुत प्रकार के हैं। एयर का अपना ऑर्गेनिज्म है, वह बेबी की तरह नहीं है। बेबी का अपना ऑर्गेनिज्म है। सोसाइटी का अपना ऑर्गेनिज्म है, न तो वह एयर की तरह है, और न वो बेबी की तरह है। लेकिन सोसाइटी एक इंटररिलेशनशिप है। और उस इंटररिलेशनशिप में हमारे संबंध तब तक संपत्ति के संबंध होंगे, जब तक हमारी संपत्ति कम है। जिस दिन हमारी संपत्ति ज्यादा है उस दिन हमारे संबंध संपत्ति के नहीं रह जाएंगे क्योंकि वो बात मीनिंगलैस है, उसे बीच में लाना अर्थहीन हो जाएगा। आज मैं अकड़ कर कहना चाहता हूं कि यह मकान मेरा है, क्योंकि बहुत लोग हैं, जिनके पास मकान नहीं है। या बहुत लोग हैं जिनके पास मकान नाम मात्र को है, जिसे मकान कहना बेकार है। तब तक तो मुझे यह मकान मेरा है कहने में एक रस है, लेकिन अगर मकान सबके पास हैं, तो यह इस बात के कहने में रस खो जाता है कि यह मकान मेरा है। और इसको जगह-जगह जाकर बता कर, और नेम प्लेट लगा कर खबर करने का कोई अर्थ नहीं रह जाता कि यह मकान मेरा है। और मकान अगर कल इतने हो जाएं कि लोग कम पड़ें और मकान ज्यादा हो जाएं, तब तो यह भी व्यर्थ की बात है कि मैं इस मकान का ठेका लिये बैठा रहूं, कि मैं इसको अपने बेटे के नाम लिख कर जाऊंगा। असल में संपत्ति न्यून है, उपभोक्ता ज्यादा है, इसीलिए व्यक्तिगत मालकियत का अर्थ है। अब यह मालकियत दो तरह से विसर्जित हो सकती है, या तो व्यक्ति से छीन कर राज्य के हाथों में चली जाए, और अगर हम जल्दी करेंगे, तो राज्य के हाथों के सिवा कोई हाथ नहीं हैं जो इसको संभाल लें। समाज के पास कोई हाथ नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

असल में ऑर्गेनिज्म इज डिरेंट वे एंड देयर आर सो मैनी टाइम्स ऑफ ऑर्गेनिज्म। एक तो जैसे मेरी बॉडी है, यह एक ऑर्गेनिज्म है। यह एक और तरह का ऑर्गेनिज्म है। यह मेरा मतलब आप समझ रहे हैं ना। लेकिन फिर भी मैं कहता हूं कि सोसाइटी एक लिविंग ऑर्गेनिज्म है। लेकिन यह जो ऑर्गेनिज्म है सोसाइटी, यह अब तक हमारी, जिसको हम सोसाइटी कहते हैं, इतनी क्लासेज में बंटी है कि बजाए यह कहने के कि यह एक ऑर्गेनिज्म है, कहना चाहिए यह बहुत से कॉन्लैक्टिंग ऑर्गेनिज्म हैं। जब तक ये क्लासेज में बंटी है, तब तक कहना चाहिए कि ये बहुत कॉन्लैक्टिंग ऑर्गेनि.ज्म है, जैसे मेरा शरीर है।

प्रश्नः देट इज, देट इन दी ऑर्गेनिज्म, द रिलेशनशिप बिटविन पार्ट इज़ प्रीडिपार्ट एंड डोंट हैव इंडीपेंडेंट एग्जिसटेंस।

यह जो बात है ना, यह तब तक बात सही है, इसलिए मैं कह रहा हूं,, सोसाइटी
इज ए डिफरेंट टाइप ऑफ ऑर्गेनिज्म। असल में सोसाइटी जो है, इट इज नॉट समथिंग फिक्स, इट इज समथिंग लाइक ए प्रोसेस। सो नो पार्ट केन हैव ए डिफाइंड रोल टू प्ले। एवरी मूवमेंट, एवरी मूवमेंट, एवरी रोल इज़ चेन्जिंग।

प्रश्नः देयर इट इज़ नॉट एन ऑर्गेनिज्म?

न-न, आर्गेनिज्म इज ए डिफरेंट सेंस, एज ए प्रोसेस। असल में हमारी तकलीफ क्या है, हम जब भी ऑर्गेनिज्म को सोचते हैं, तो एक फिक्स्ड एन्टाइटी की तरह सोचते हैं। एक नदी है, यह भी एक ऑर्गेनिज्म है। लेकिन नदी का रोल उस तरह से फिक्स्ड नहीं जैसा तालाब के पानी का फिक्स्ड है। तालाब के पानी का और तालाब के किनारे करीब-करीब तय हैं। लेकिन नदी का किनारा भी तय नहीं है, नदी का रोल भी तय नहीं है। कल वह किस तरफ मुड़ेगी यह भी तय नहीं है। कहां से जाएगी, निकलेगी यह भी तय नहीं है। नदी के पास भी एक ऑर्गेनिज्म है, लेकिन वह एक लैक्सिबिल ऑर्गेनिज्म है। सोसाइटी जो है, हजारों साल तक डेड, और फिर

से ऑर्गेनिज्म की तरह ही है। लेकिन जब भी सोसाइटी में कोई टैक्नोलॉजिकल रेवोलूशन उपस्थित होती है, तो सोसाइटी के आर्गेनिज्म और उसके पार्ट्स पर रोल बदलना शुरू होता है। वह तत्काल बदलना शुरू होता है। जैसे उदाहरण के लिए, हिन्दुस्तान में तीन हजार साल तक ब्राह्मण का रोल फिक्स्ड रोल था। और तीन हजार साल तक हमें कभी शक भी पैदा नहीं हुआ था कि ब्राह्मण के रोल में कोई फर्क हो सकता है। शूद्र का रोल फिक्स्ड रोल था, इसलिए वर्णो में बंटी हुई जो समाज व्यवस्था थी, इट वाज मोर ऑर्गेनिज्मिक, देन ए वर्क्स। ज्यादा ऑर्डड थी, डिसिप्लिन थी, सब रोल बटे हुए थे। एक आदमी पैदा होते से जानता था कि क्या वह है, और क्या उसे करना है? एक-एक की आयडेंटिटी तय थी। इसलिए उपद्रव कम था। मनु ने जो सोसाइटी कल्पना की थी, वह बिल्कुल ही ऑर्गेनिक थी। उसमें एक-एक पार्ट तय था कि पैर कौन है, और पेट कौन है, और सिर कौन है। लेकिन हमने पाया कि वैसा सोसाइटी डेड सोसाइटी और स्टेग्नेंट हो जाती है। तब हमने पाया कि सोसाइटी को ऑर्गेनिज्मिक भी हो और लोइंग भी हो। ऑर्गेनिज्म तो सोसाइटी होनी ही चाहिए, नहीं तो फिर इंडीविजुअल सी रह जाती हैं, सोसाइटी नहीं रह जाती है। तब टूटे हुए इंडीविजुअल आयरलैंड्स बन जाते हैं। सोसाइटी तो एक आर्गेनिज्म है, बट, इट शुड बी ए लोइंग ऑर्गेनिज्म, एज़ ए प्रोसेस नोट एज ए बींग, बट एज ए बीकमिंग और जहां बीकमिंग होगी, वहां पार्ट सुनिश्चित, रोल नहीं हो सकता उनका। वहां रोल प्रतिदिन बदलता हुआ होगा। रोज पैटर्न बदलता हुआ होगा, रोज पैटर्न बदलता हुआ होगा, तथा रोज रोल बदलता हुआ होगा। आज जो एक शूद्र के घर में पैदा हुआ, आज नहीं कल ब्राह्मण हो सकता है, कोई बहुत तकलीफ नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नो, आई एम नॉट सेइंग देट कैपिटलिज्म इज प्रिकंडीशंड ऑफ द सोशलिज्म।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

इफ देयर इज़ ऐनी पॉसिबिलिटी... देन इट मस्ट कम फुल्ली ग्रोन कैपिटलिस्ट सिस्टम वाय। डेमोक्रेसी का जो हमारा मतलब है, अगर एक बार हम ये तय करें, कि डेमोक्रेटिक सोशियलिज्म हो सकता है, तो उसका मतलब ही यह हुआ कि स्टेट जो है वह कोयर्स नहीं करेगी। स्टेट के हाथ में... ताकतें नहीं होंगी। और स्टेट के हाथ में मुल्क की संपत्ति की ऑनरशिप नहीं होगी। क्योंकि एक बार मुल्क की संपत्ति की ऑनरशिप स्टेट के हाथ में गई तो उसकी टोटिलिटि नहीं होने से रोकने का कोई उपाय नहीं है। बहुत सी चीजें है स्टेट--।

प्रश्नः स्टेट के हाथ में जाएगी, उसका मतलब क्या है?

सवाल दो-तीन चार आदमियों का नहीं है।

प्रश्नः बैंक किया हमने तो उसकी सम्पत्ति मालिकी किसकी है?

ये जो कहते हैं हम सबकी हुई, ये बड़ी भ्रांत बात कहते हैं, यह हम जब कहते हैं, हम सबकी है तो ये भ्रांत है इसलिए... ।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

दो-तीन बातें खयाल में लें। एक, इस स्टेट से मतलब है, यह जो बड़ी सोसाइटी है, यह समाज है, यह समाज अपने को सुनियोजित स्वयं नहीं कर सकता इसलिए, एक रिइंसटेटिव बॉडी से अपने को सुनियोजित करवाता है। और यह जरूरी भी है, क्योंकि इतनी बड़ी सोसाइटी को सीधे मैनेज करने को कोई उपाय नहीं है। तो हम दस लोगों के हाथ में, पचास लोगों के हाथ में, सौ लोगों के हाथ में, एक मशीनरी के हाथ में, इस मुल्क के फंग्शन को देते हैं।

चौरस्ते पर एक पुलिसवाला खड़ा हुआ है, वह ट्रैफिक को मैनेज कर रहा है,
वह स्टेट फंग्शनिंग है उसकी कि रास्ते पर कोई आदमी बाएं से ही चले, दाएं से न चले, कोई टकरा न जाए। टकरा जाए तो उसकी रिपोर्ट की जा सके। टकरा जाए तो उसे दंड दिया जा सके। लेकिन यह चौरस्ते का पुलिस वाला कल यह कहता है कि बेहतर यह होगा कि सारी कारें, जो चलती हैं इनकी ऑनरशिप मेरी हो जाए, तो उससे मैं ज्यादा अच्छे ढंग से मैनेज कर सकूंगा। क्योंकि जब तक ऑनरशिप दूसरे की है, तब तक थोड़ी गड़बड़ होती ही है। ऑनरशिप अगर मेरी ही हो जाए, जो ट्रैफिक कन्ट्रोल का आदमी है, तो मैं ज्यादा ढंग से व्यवस्थित कर सकूंगा। और अगर यह सारे लोग जो रास्ते पर चलते हैं, यह भी मेरी ऑनरशिप में हो जाएं, तब तो फिर कोई खतरा नहीं रहेगा इनको दंड देने के लिए मौका नहीं आएगा। क्योंकि बाएं-दाएं चल भी नहीं सकेंगे मेरी बिना आज्ञा के। चौराहे पर खड़े आदमी को हमने एक फंग्शन की तरह खड़ा किया था, कि वह चौराहे पर चलने की सुविधा जुटाए। अंततः वह यह कहता है कि चलने की मैं पूरी सुविधा जुटा दूंगा, चलने वालों की मालकियत मेरे हाथ में आ जाए। मैं जो उदाहरण ले रहा हूं, इसलिए ले रहा हूं कि स्टेट को इसी भांति मैं स्वीकार करता हूं। उसका फंग्शन समाज की सेवा करने का है, समाज की मालकियत करने का नहीं है। समाज की ऑनरशिप के लिए नहीं है, स्टेट समाज की सर्विस के लिए है। लेकिन सर्वेंट के हाथ में अगर ताकत हो तो तय करना मुश्किल हो जाता है कि वह ऑनरशिप बनने की कोशिश नहीं करेगा। सर्वेंट को हमें ताकत तो देनी ही पड़ती है, क्योंकि वह आखिर कुछ काम करेगा तो उसके पास ताकत चाहिए। और जैसे-जैसे स्टेट को ताकत मिल रही है सर्विस करने की, धीरे-धीरे हमको पता चला है कि स्टेट, जो कि सर्वेंट है, एक-एक इंडीविजुअल मालिक से ज्यादा ताकतवर है, स्वभावतः। पचास करोड़ का मुल्क है, और हमने नए राज्य की व्यवस्था की है, यह राज्य की व्यवस्था हम सबकी नौकर है, लेकिन एक-एक मालिक के मुकाबले बहुत ताकतवर है। क्योंकि बाकी चालीस करोड़ लोगों से बात करें, तब मेरी ताकत मुझे मिलती है। वह मेरी ताकत है एक। स्टेट की ताकत मुझसे सदा ज्यादा है। पुलिस वाला जो खड़ा है, उसको दी गई ताकत सदा मेरी है। लेकिन रास्ते पर जब वह मुझे रोकता है तो वह मुझसे बहुत ज्यादा ताकतवर है। क्योंकि उसको चालीस करोड़ लोगों का हाथ भी है उसको ताकत देने में। धीरे-धीरे स्टेट को यह पता चलता चला गया है, निरंतर कि समाज की सेवा करने के मार्ग से, धीरे-धीरे स्टेट और पोलिटीशियन समाज की मालकियत तक पहुंच सकता है। और सोशियलिज्म की बात उसे बड़ी सरलता से रास्ता बन जाती है कि वह मालकियत तक पहुंच जाए। और जो दो कंट्रीज में हुआ है, रूस में या चीन में, वह बहुत साफ है, कि किस भांति स्टेट ऑनरशिप धीरे- धीरे स्टेट कैपिटलिज्म बन गई। और किस भांति स्टेट को आप कहते हैं, दो-चार लोग नहीं, दो-चार लोगों ने ही उन्नीस सौ सत्रह से लेकर और आज तक रूस में पूरी की पूरी ताकत को अपने हाथों में केंद्रित रखा है। और फिर छीनने का कोई उपाय नहीं रह जाता। ताकत देना एक दफा आपके हाथ में है, छीनने का उपाय फिर नहीं रह जाता। क्योंकि छीनने के लिए भी ताकत चाहिए।
तो मेरे हिसाब से, डेमोक्रेसी का मतलब ही यह है कि हम कभी भी स्टेट के हाथ में इतनी ताकत नहीं दे रहे हैं कि वह मालिक बन बैठे। डेमोक्रेसी की इंट्रन्जिप क्वालिटी यह है कि स्टेट जो है, वह बेसिकली सर्वेंट है और उसको किसी भी हालत में मालकियत नहीं देनी है। और हम उसे देते हैं भी पांच साल के लिए एक प्रतिनिधि को तो वह ऑन लीव, मालकियत है। वह मालकियत तत्काल छीनी जा सकती है। और ज्यादा डेमोक्रेटिक मुल्कों में जैसे स्विटजरलैंड में उसे बीच में भी बुलाया जा सकता है। और मैं मानता हूं कि वही डेमोक्रेसी का हिस्सा होना चाहिए कि अगर मैंने मुझे आपने चुन कर भेजा, और आप पन्द्रह दिन बात पाते हैं, अनुभव करते हैं कि यह आदमी पांच साल तक भी ताकत में रखने लायक नहीं है, तो आप मुझे वापस भी बुला लें। डिमोक्रेसी इज पावर ऑन लीव।

प्रश्नः बट इन दैट केस यू विल ऑल सो अगेन पार्लियामेंट्री डेमोक्रेसी, बिकॉज इट टू सम एक्टेंडिड इनवॉल्व, सम एप्लीकेशन ऑफ पावर इज द पार्ट ऑफ विन?

नहीं-नहीं, वह तो होगा ही, क्योंकि वह हमारी मजबूरी, वह नेसेसरी इविन है। आज सोसाइटी उस हालत में नहीं है कि हम पार्लियामेंट्री स्थिति को भी छोड़ दें। किसी दिन छोड़ी जा सकती है, जैसे किसी दिन यूनान में, नगर का संभव हो सकता था। अगर किसी दिन दुनिया में नेशन्स विदरअवे हो जाएं, तो हो सकता है एक-एक गांव अपना, अपनी व्यवस्था कर ले लेकिन किसी भी हालत में रिप्रिजेंटेटिव से बचना मुश्किल है। यह जो मैं कह रहा हूं, तो स्टेट मेरे लिए एज ए सर्वेंट तो डेमोक्रेसी में है, लेकिन जैसे ही स्टेट के हाथ में, इकोनोमिक फोर्सेस भी कंसंट्रेट होनी शुरू होती हैं, उसको सर्वेंट रखना असंभव है। इसलिए मैं कहता हूं डेमोक्रेटिक सोशियलिज्म जैसी कोई चीज नहीं हो सकती। क्योंकि सोशियलिज्म पहले कोशिश करेगा कि स्टेट के हाथ में ऑनरशिप जाना शुरू हो, मींस आफ प्रोडक्शन के। और जैसे ही मींस ऑफ प्रोडेक्शन की ताकत स्टेट के हाथ में जानी शुरू हुई, यह हो भी सकता है कि वह राज्य, वह ताकत, वह पोलिटीशियन, जिन डेमोक्रेसी के द्वारा वहां तक आए हों, लेकिन वह डेमोक्रेसी की हत्या करने के प्रारंभ को शुरूआत कर देंगे। और या फिर जैसा इंग्लैंड में हुआ है यह हालत होगी। यह होगी, जिससे कि सोशियलिज्म-वोशियलिज्म कुछ आता नहीं। आज सोशियलिस्ट पार्टी गई है, आज टारी हो गए। अब उस वक्त पूरा का पूरा हिसाब खराब कर देंगे। प्रभावित करने वाले हैं। असल में सोशियलिज्म आपको लाना हो, अगर प्रिमेच्योर कैपिटलिज्म में, तो आपको कोयर्सन का उपयोग करना पड़ेगा। और या फिर ये अल्टरनेटिंग पार्टी कुछ भी नहीं होने देंगी। मेरी समझ ये है कि सोशियलि.ज्म एज़ स्कोंटेनियस, तो तभी संभव है, जब कैपिटलिज्म इस सीमा तक संपत्ति पैदा कर देता है कि व्यक्तिगत संपत्ति अपने आप में मीनिंगलैस हो गई है। अगर नहीं हो गई है मीनिंगलैस तो कोयर्सन जरूरी हो जाएगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)
प्रश्नः दि मोमेंट यू टॉक ऑफ सोशियलिज्म दि स्टेट हैज गॉन बियोंडिड वापर्स? नो दि ऑनर।

डेमोक्रेटिक हैं, कुछ भी कहें, सोशियलिज्म जैसे ही आप बात करते हैं, स्टेट इज बाउंड टू टेक दि ऑनरशिप। और द मूवमेंट इज द टेक्स ऑनरशिप इट हैज गान, बियोंड द सर्वेंट एंड द।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

डेमोक्रेटिक तो हैं कुछ भी कहें, सोशियलिज्म जैसे ही बात करते हैं, स्टेट इज बाउंड टू टेक दि ऑनरशिप। और दि मूवमेंट इज़ टेक्स ऑनरशिप। इट हैज गॉन बियोंड द ऑफ द सर्वेंट, हैज बिकम दि मास्टर।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आप एक दफा, एक दफा, इकोनोमिक फोर्सेस स्टेट के हाथ में केन्द्रित हो
गई हैं, तो पीपुल की कोई ताकत नहीं है अब गवरमेंट को फेंकने की। एक बार--।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

ये इसीलिए कि इंडीविजुअल प्रोपर्टी मौजूद है, इंडीविजुआ प्रोपर्टी अगर विदा हो जाए, तो इंडीविजुअल उसके साथ ही एकदम इंपोटेंट होना शुरू हो जाएगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नो।

प्रश्नः वाय नॉट?

इसलिए नहीं कि इंडीवीजुअल प्रोपर्टी खत्म नहीं की गई है। मीनिंगलैस
हो गई है। इन दोनों में फर्क है। आप से मैं यह कपड़ा छीन लूं तब आप नंगे होते हैं, लेकिन यह कपड़ा बेकार हो जाए और आप छोड़ दें, तब आपकी नग्नता में बहुत फर्क है। आप कपड़ा जब छोड़ते हैं, तब आपकी नग्नता में एक सौंदर्य है और एक अर्थ है। और वह आपकी एक स्वतंत्रता है। और जब यह कपड़ा आपसे जबरदस्ती छीन कर आपको नंगा किया जाता है, तो यह वैविचार है। और यह नग्नता आपको सौंदर्य नहीं देती, कुरूपता दे जाती है। मेरा मानना ऐसा है, इंडीविजुअल प्रोपर्टी शुड विदर अवे। शुड नॉट बी टेकन।

प्रश्नः बट इट मींस दैट आई विल बी कैपेबल ऑफ किलिंग अप माइ शर्ट, ओनली वेन आई हैव पेनल्टी ऑफ शर्ट।

इसके पहले नहीं संभव है। इसके पहले संभव नहीं है।

प्रश्नः वॉट... ऑफ द प्रोपर्टी? कहां तक कैपिटल हो जाए जमा व्यक्ति के पास जब वह छोड़े?

इसमें दो-तीन बातें हैं। एक तो जैसे ही संपत्ति जिसको मैं अलुएंट कहूं, अलुएंट संपत्ति तभी हो सकती है, जब मनुष्य के श्रम पर ही हमें संपत्ति पैदा करने के लिए निर्भर न रहना पड़े। उसके पहले कभी भी संपत्ति अलुएंट नहीं हो सकती। संपत्ति अलुएंट उसी दिन होगी जिस दिन हम, इस टैक्नोलॉजिकल रेवुलेशन से गुजर जाएं, जो कि व्यक्ति के श्रम को मुक्त कर दे। व्यक्ति के श्रम की जरूरत न रह जाए, संपत्ति के पैदा करने में। क्योंकि व्यक्ति के श्रम की सीमाएं हैं, और व्यक्ति के श्रम की सीमाएं ही संपत्ति के पैदा करने की सीमाएं भी हैं। जैसे कि हल से एक आदमी खेत में काम कर रहा है, तो एक सीमा है हल की। संपत्ति उतनी पैदा होती है। ट्रैक्टर से काम कर रहा है, तो एक सीमा है ट्रैक्टर की, संपत्ति उतनी पैदा होती है। कैपिटलिज्म की आखिरी अवस्था में, सारा का सारा ऑटोमेटिक यंत्रों की माध्यम से ही संपत्ति पैदा हो, तो अलुएंट सोसाइटी पैदा होगी। यह जो व्यक्तिगत श्रम मुक्त हो जाए आदमी, व्यक्ति को श्रम करने का कोई जरूरत न रह जाए, तो एक तो बहुत बड़ी दीनता श्रम करने से पैदा होती है, कंपलसरी श्रम करने से वो विदा हो जाती है। और जिस दिन हम ऑटोमैटिक संपत्ति पैदा कर सकते हैं, उस दिन हम कितनी ही संपत्ति पैदा कर सकते हैं। आज तक जो हमारी धारणा है कि किस लिमिट तक संपत्ति हमारी अतिरेक हो गई, उसका कारण है, क्योंकि संपत्ति अतिरेक कभी नहीं हुई और हमारी इच्छाएं संपत्ति से सदा ज्यादा रही हैं। और संपत्ति सदा थोड़ी रही हैं। तो धीरे-धीरे एक ऐसी हालत पैदा हो गई कि हम सोचने लगे कि इच्छाएं अनंत हैं। और संपत्ति बहुत सीमित है। और किसी भी सीमा पर ऐसा नहीं हो सकता, जिस सीमा पर जाकर, संपत्ति अनंत हो जाए और इच्छाएं सीमित पड़ जाएं। मेरी समझ उलटी है। मैं मानता हूं कि चूंकि संपत्ति हम नहीं पैदा कर पाए, वह स्वाभाविक था कि कोई टैक्नोलोजिकल रेवुलेशन नहीं हो गई थी कि अनंत संपत्ति पैदा की जा सके, अब संभावना बढ़ती है, और अनंत संपत्ति भी पैदा की जा सकती है, कि आपकी इच्छाएं कम पड़. जाएं। और मजा यह है कि हमारी संपत्ति की इच्छा में जो दौड़ है, वह दौड़ भी संपत्ति की न्यूनता के कारण ही है।
अगर इस घर में भोजन की कमी हो, तो भोजन के प्रति एक दौड़ शुरू हो जाएगी।
और अगर हम इस घर के लोगों को समझाएं कि इस बुरी तरह चौंके की तरफ मत दौड़ो, पागल मत बनो। और एक दिन ऐसा वक्त आ जाएगा कि चौके में इतना भोजन होगा कि तुम्हें दौड़ना नहीं पड़ेगा। तुम आहिस्ता से जा सकोगे, तो वह कहेंगे ऐसा वक्त कितना भोजन होगा तब आएगा? निश्चित वह कहेंगे क्योंकि वह समझ ही नहीं सकते कि ऐसा वक्त भी कभी आ सकता है कि चौके की तरफ कभी दौड़ना न पड़े। क्योंकि दस आदमी हैं और एक आदमी के खाने के लायक रोटी। लेकिन हमें पता है,

दस आदमियों से ज्यादा खाना हो सकता है। आखिर आदमी की चाहें कितनी है? सच बात तो यह है कि धर्मगुरूओं ने बहुत सी भ्रांत बातें कहीं, उनमें एक भ्रांति अनंत इच्छाओं की है। आदमी की अनंत इच्छाएं नहीं हैं। असल में आदमी की कोई इच्छा पूरी नहीं हो रही, इसलिए कंवर्ड होके अनंत होती मालूम पड़ती है। भोजन चाहिए, कपड़ा चाहिए, मकान चाहिए, शिक्षा चाहिए, थोड़ी संस्कृति चाहिए। कुछ और वैल्यूज का सुख चाहिए। आदमी की इच्छाएं बहुत अनंत नहीं है। और इन सारी इच्छाओं को पैदा करने योग्य संपत्ति बिल्कुल सहजता से पैदा की जा सकती है। और जैसे ही ये पैदा हो जाए... ।
अभी मैं आपने शायद रीडर्स डाइजेस्ट में पढ़ा हो, एक छोटा सा आयरलैण्ड है, पैसेफिक में, जिसके पास फॉस्फोरस की खदाने हैं। और कोई काम नहीं है। फॉस्फोरस की खदानों से फॉस्फोरस निकालने का जो काम है, वो सब यंत्रों से होता है। ज्यादा आबादी नहीं कोई दस हजार लोगों की आबादी है, नौ हजार लोगों की आबादी है। और प्रत्येक व्यक्ति को महीने में कोई सात हजार की आमदनी है। और यह सारा काम होता है मशीन से। और कोई नौ हजार की आमदनी है, इस नौ हजार में से प्रत्येक व्यक्ति को कोई साढ़े चार हजार रूपये खर्च करने को मिल जाते हैं, और साढ़े चार हजार जमा किये जा रहे हैं क्योंकि दो सौ साल में वो फॉस्फोरस खत्म हो जाएगा, तो दो सौ साल के बाद उस आयरलैंड पर रहने वालों के पास कुछ भी साधन नहीं बचेंगे, तो उसके लिए वह साढ़े चार हजार रूपये जमा किये जा रहे हैं। उनके पास अरबों-खरबों डॉलर जमा हैं। जिनसे उनका अंदाज है कि उनको हजारों साल तक कोई पैसे की जरूरत नहीं पड़ेगी। उस आयरलैंड पर बड़ी अजीब घटना घट गई है और वह घटना यह है कि एक-एक आदमी के पास इतना सामान है कि अगर आप किसी के घर में जाके कह दें कि यह टेपरिकॉर्डर बहुत अच्छा, तो वह तत्काल आपको भेंट कर देता है। किसी के घर की किसी चीज की तारीफ करनी हो तो उसका मतलब यह है कि वह आपको भेंट कर देगा। यह नियम का हिस्सा हो गया है। क्योंकि हमें इसमें कोई मतलब नहीं है। वह टेपरिकॉर्डर कोई कीमत नहीं रखता, पैसे ज्यादा हैं, सबके पास कारें हैं, टेपरिकॉर्डर हैं, रेडियो हैं, टेलिविजन, और पैसे चले आ रहे हैं। और इन पैसे का क्या करना? तो जब आप एक टेलीविजन से मुझे मुक्त करवा देते हैं, तो मुझे सुविधा बनाते हैं थोड़ी-सी कि मैं नया टेलीविजन ले आऊं।
आप एक कार पसंद कर लेते हैं, और वो आदमी, आपने कार पसंद की कि उसने कहा
कि आप ले जाइये, जब आपको पसंद आ गई तो आपकी हो गई। ये धीरे-धीरे नियम बन गया उस आयरलैंड पर कि जो चीज़ जिसको पसंद आ जाए, वो उसकी मालकियत हो गई। क्योंकि पसंद के बाद फिर उसको रोकना, ज्यादती है थोड़ी। आपने कहा कि अच्छी लगी, अब इसके बाद यह मेरे घर में रहे हर चीज तो, मैंने आपके साथ शिष्टता का व्यवहार नहीं किया।
अब यह एक छोटा सा आयरलैंड मेरे लिए आधार है सोचने का कि यह स्थिति पूरी पृथ्वी पर क्यों नहीं हो सकती? इसमें कोई अड़चन नहीं है। लेकिन यह स्थिति, जबरजस्ती से पैदा होने वाली नहीं है। यह स्थिति अतिरिक्त संपत्ति से पैदा होने वाली है। अब कितनी संपत्ति है उनके पास, कोई बहुत अतिरिक्त नहीं है। अगर साढ़े चार हजार एक आदमी की आमदनी है तो फिर कोई बहुत बड़ी आमदनी नहीं है। वह कोई मार्जन या अफोर्ड नहीं है, लेकिन आप हैरान होंगे यह जान कर कि फोर्ड या बिरला या टाटा भी, अगर मैं उनकी कार पसंद कर लूं तो देने की हिम्मत नहीं जुटा सकते। कुछ कारण हैं इसमें। यह आदमी फोर्ड और बिरला नहीं है। इस आदमी की कोई बहुत बड़ी हैसियत नहीं है। लेकिन यह चारों तरफ सबके पास सब कुछ है। बिरला की जो धन पर पकड़ है, वह पकड़ भी पास में एक गरीब आदमी खड़ा है उसकी वजह से है। और इस बात का पक्का पता है कि अगर बिरला ये व्यवहार करे कि जिसको जो पसंद आ जाए दे दे, तो वह भी कल सड़क पर भीख मांग रहा होगा। यह इंसीक्योरिटी घबराए दे रही थी। ये इंसीक्योरिटी जोर से पकड़ने को कहती है। अब इस आयरलैंड के सब आदमियों के पास सब है, मजा तो यह है कि कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई आके कहे कि मुझे पसंद पड़ा आपका यह। क्योंकि सभी के पास सब है। और इससे कोई इंसीक्योरिटी पैदा नहीं होती, कोई घबड़ाहट पैदा नहीं होती।

मेरी दृष्टि में सोशियलिज्म के लिए एक ही संभावना है, सहज जाप सोशियलिज्म के लिए। गर्भपात से नहीं, सहज जाप। और वह संभावना एक है कि कैपिटलिज्म अपनी पूरी शक्ति से विकसित हो, और कैपिटलिज्म समाज को, ऑटोमैटिक यंत्र की व्यवस्था दे दे। तो कैपिटलिज्म मरेगा, वह करना किसी क्लासकॉनलिक से नहीं होगा, वो कैपिटलिज्म के पक जाने से होगा।
मार्क्स के दिमाग में जो खयाल है वह यह खयाल है कि किसी न किसी तल पर अंतरद्वंद्व, डायलेक्टिक, भीतर की स्ट्रगल, ही कैपिटलिज्म को गिराएगी। मुझे जो खयाल है वह ऐसा है जैसा एक आम पक जाता है और पक कर फिर कोई लड़ता नहीं है, उस आम को गिराने के लिए। आम का पका होना ही गिर जाना है। दी राइपनैस इज इनफ, वह चूंकि पक गया है, इसलिए गिरता है। और तब पके हुए आम के गिरने में जो सौंदर्य है, वह कच्चे आम को वृक्ष से छीन कर तोड़ लेने में नहीं है। और कच्चा आम तोड़ लेने पर भी कच्चा है, फिर उसे पकाने के लिए फोर्सफुल उपाय करना पड़ता है। अब उसको कि गर्मी दो, कुछ और इंतजाम करो, और फिर भी पकाया हुआ, जबरदस्ती पकाया हुआ, आम अपने ढंग से वृक्ष पर पके आम के सौंदर्य को, आनंद को, रस को उपलब्ध नहीं होता है।
तो मेरा जो, मेरा जो कुल कहना है, वह इतना है कि एक एसिलिरेटिंग कैपिटलिज्म विकसित होना चाहिए। वह इतना एसिलिरेटिव होना चाहिए, क्योंकि कोई भी चीज इस जगत में स्थाई नहीं है और कोई भी चीज पकके मरती है। मैं हूं मैं भी कल मरूंगा, यह मरना मेरे बच्चे मुझे जबरदस्ती भी मार डाल सकते हैं कि मैं घर में अतिरिक्त परेशानी का कारण बन जाऊं। मेरे बच्चे मुझे सारी सुविधाएं दें तो भी मैं मरूंगा क्योंकि आखिर हर चीज जो जन्मती है, मरती है। समाज की भी कोई भी व्यवस्था स्थाई नहीं है, अनंत नहीं है, वह जननी है, अपना काम उसका जैसे पूरा होगा, वह पकेगी और मरेगी। कैथेलिज्म की मृत्यु मैं देखता हूं पके हुए आम के गिरने की भांति और यह उसी दिन संभव है, जिस दिन अतिरिक्त संपत्ति कैथेलिज्म पैदा कर जाए, यह अतिरिक्त संपत्ति कितनी होगी इसके आंकड़े कहने मुश्किल हैं, लेकिन इतना मैं जानता हूं कि आदमी की बेसिक जरूरतें बहुत ज्यादा नहीं हैं, बहुत थोड़ी हैं, यह दूसरी बात है कि हम उनको भी पूरा न कर पाए। एक उपाय तो यह, यह जो बेसिक जरूरतें हैं आदमी की यह निश्चित ही पूरी होनी चाहिएं। यह पूरी नहीं हो रहीं यह बड़ा अशुभन और कुरूप है लेकिन इसकी कुरूपता का जिम्मा मैं कैथेलिज्म पर नहीं डालता हूं, इसकी कुरूपता का जिम्मा मैं कैथोलिज्म कहूं, हम गति से विकसित नहीं कर रहे इस पर डालता हूं। यह जो इतनी दरिद्रता, इतनी दीनता, इतना दुख है, इसका जिम्मा मैं कैथेलिज्म पर नहीं डालता हूं। इसका जिम्मा मैं इस बात पर डालता हूं कि कैथेलिज्म जितना वाइडर और जितना एथलाइज्ड होना चाहिए, उतना नहीं है और सोशेलिज्म के बीच में आई हुई बातें उसके वाइडर एप्लीकेशन को रोकने का कारण बनती हैं क्योंकि हम यह मानकर चलने लगते हैं कि इसकी वजह से सारी तकलीफ हैं। जबकि सच्चाई बिल्कुल उल्टी हैं। कैथेलिज्म ने पहली दफे गरीब को यह पता दिया है कि तू गरीब है। लेकिन उसको गरीब होने का ही पता नहीं है। वह अपनी गरीबी को बिल्कुल स्वीकार करके जी रहा है। कैथोलिज्म ने पहली बार यह संभावना पैदा की कि तू गरीब नहीं भी हो सकता है। इस संभावना ने ही उसके मन में यह ख्याल पैदा हुआ है कि मैं गरीब हूं, नहीं तो हमारे मुल्क में अंबेदकर के पहले एक शूद्र पैदा नहीं हो सका।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं-नहीं जो मरना है, जो व्यवस्था आदमी को मरने नहीं देना, कैथेलिज्म
को विकसित करना है। नहीं, नहीं विकसित क्यों न हो, नहीं विकसित होगा अगर सोशियलिज्म की बातें चलीं, नहीं विकसित होगा। एक तो कैपिटलिज्म को विकसित करना है और कैपिटलिज्म को विकसित करना ही होगा। यह जितनी तीव्रता से विकसित हो, उतनी जल्दी पकने के करीब पहुंचे और वह जो लोग कहते हैं कि क्या आदमी को मरने देना है अगर मरने देना है आदमी तो कैपिटलिज्म को विकसित होने से रोको तो वह देर तक मरता रहेगा। कैपिटलिज्म को शीघ्रता से विकसित करो तो उसके मरने को रोका जा सकता है वह जो आदमी मर रहा है। उस तक संपत्ति

पहुंचायी जा सकती है, उस तक संपत्ति के लाभ भी पहुंचाये जा सकते हैं और दूसरी बात यह, यह जो आप कहते हैं कि सोशलिज्म ने गरीब को ख्याल दिया तो थोड़ा समझने जैसा। मजा तो यह है कि सोशलिज्म का ख्याल भी कैपिटलिज्म ने दिया। सोशलिज्म का कोई ख्याल था दुनिया में कभी? वह बाइप्रोडक्ट है कैपिटलिज्म के। कैपिटलिज्म ने पहली दफे यह ख्याल दिया कि जब कुछ लोग अमीर हो सकते हैं तो सब क्यों नहीं हो सकते। सोशलिज्म खुद कैपिटलिज्म का ख्याल है। मेरे हिसाब से तो कैपिटलिज्म की संतति है।

प्रश्नः कैपिटलिज्म को देखा नहीं था, गरीब को देखा तो... ?

गरीब को देख कर कभी आपको ख्याल नहीं आता, ख़्याल हमेशा कंपरेटिव है। आप थोड़ा ख़्याल कर लें, इस पर थोड़ा ख्याल कर लें, अगर आपको सिर्फ गरीब ही गरीब चारों तरफ दिखाई पड़ें, तो आपको कभी पता नहीं पड़ेगा कि गरीबी है। आपको वह जो एक अमीर दिखाई पड़ता है, उससे पता चला--। मेरी आप बात समझ लें, अगर आप चारों तरफ बीमार लोग देखें तो आपको कभी पता नहीं चलता कि बीमारी है। बीमारी का पता, स्वस्थ आदमी को देख कर पता चलता है। कैपिटलिज्म ने पहली दफा, कैपिटल के अंबार पैदा किये। थोड़ी सी जगह कैपिटल इकट्ठी की। और पहली दफा पता चलना शुरू हुआ कि आदमी गरीब है। आदमी की गरीबी का बोध कंपरेटिव है। वह कैपिटलिस्ट को देख कर पैदा हुआ है। और कैपिटलिज्म को देख कर पैदा हुआ है, गरीबी का बोध और कैपिटलिज्म अगर बढ़ता चला जाए, तो गरीबी का जो बोध है, वह तीव्र होगा, दो प्रकार से वह तीव्र हो सकता है। या तो हम कैपिटलिज्म के खिलाफ उसको तीव्र करें, अर्थात सोशियलिज्म के पक्ष में तीव्र करें। इस हालत में कैपिटलिज्म के विकास में बाधाएं पड़ती हैं, पड़ेंगी हीं। दूसरा रास्ता यह है कि गरीब को भी हम पूंजी पैदा करने के लिए उत्प्रेरित करें और कैपिटलिस्ट होने के लिए उत्प्रेरित करें। उस हालत में पूंजी के पैदा करने की संभावनाएं बढ़ेंगी और गहरी होगी। इस बोध के दो उपयोग हो सकते हैं, मार्क्स ने उसका गलत उपयोग किया, रूग्ण और परवर्टिड उपयोग है वह। गरीब और अमीर को देखके गरीब में अगर यह उत्प्रेरणा पैदा की जाए कि वह भी अमीर हो सकता है, और अमीर के होने के लिए सुविधाएं जुटाने का राज्य इंतजाम करे, गरीब के अमीर होने का, तब तो कैपिटलिज्म विकसित होता है। और अगर गरीब इस आशा से भर जाए कि वह कैपिटलिस्ट को मिटा कर अमीर होने वाले हैं, तो फिर राज्य का उपयोग करे वह अमीर को मिटाने के लिए। मजा यह है कि अमीर मिट जाए, तो गरीब को राहत बहुत मिलेगी, गरीबी नहीं मिटेगी। राहत यह मिलेगी कि अब कोई चुनने का उपाय नहीं रहा कि अब हम गरीब हैं।
मैं आपको कहता हूं कि इसके इतने अजीब आदमी के मन का हिसाब है, जब तक दुनिया सच में गरीब थी, तब तक गरीबी के खिलाफ कोई आवाज नहीं थी दुनिया में, जब से दुनिया में थोड़ी सी सुविधा, संपन्नता आई तबसे गरीबी के खिलाफ बात आई। क्योंकि जब सच में ही गरीब थी, तो गरीबी स्वीकृत थी।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरे लिए सोशियलिज्म बाइप्राडक्ट है एफेल्यूएंस के इसलिए मैं उसकी बात नहीं करता। उसमें कोई मतलब ही नहीं है।

प्रश्नः इररेलेवेंट है?

हां, इररेलेवेंट है। एफेन्यूएंस आता है तो, तो सोशियलिज्म इज जस्ट लाइक ए शैडो। क्योंकि इंडिवीजुअल नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मीनिंगलैस ही है, क्योंकि मीनिंग तो सोशियलि.ज्म के खिलाफ है। तौर पर मीनिंग है नहीं, उसमें अपना मीनिंग नहीं है। मीनिंग इज राइड, अगेंस्ट

कैपिटलिज्म। अगर कैपिटलिज्म विदर अवे होता तो सोशियलिज्म का कोई मतलब नहीं है, वह तो गया। जो स्थिति बचेगी, वह मैं मानता हूं कि अगरीबी की, नॉनपावरटी की, जो स्थिति बचेगी, वह स्थिति जिसको सोशियलिस्ट उडुबिया कल्पना में ले रहा है। और मैं मानता हूं सोशियज्मि जिसे नहीं ला सकता, वह स्थिति बची रह सकती है। एफेल्यूएंस की। मेरे मन में समृद्धपूर्ण हो जाए, तो समाजवाद के लिए जिन आकांक्षाओं से हम प्रेरित हैं, वह फलित हो जाएंगी। उनके लिए हमें अलग से कोई श्रम करने की जरूरत नहीं है। श्रम अगर हमें करना है, तो वी हैव टू एक्सेलिरेट दी कैपिटलिस्टिक सिस्टम। उसको कैसे एक्सेलिरेट करें कि वह पूरी गति से, तीव्रता से प्रयोग में आ जाए। और इसमें मैं मानता हूं कि सोशियलिज्म की बातचीत सोसाइडल है। इसमें सोशियलिज्म की बात सोसाइडल है।

प्रश्नः ऑल दिस वेसी मॉडर्न थॉट, एंड बिहाइंड ऑल दीज वेरी वैस्टर्न, वेली लॉडेबल सोर्ट ऑफ आइडियाज़, इट सींस टू मी, एंड आई मे बी रोंग, देट व्हाट यू आर सेइंग, स्मैक लिटिल बिट दी इंडियन माइंड, इन दि वे, यू टॉक अबाउट दि नेचुरल प्रोसेसेज़, दे राइट बनिंग ऑफ दि मैंगो, इट ऑल मोस्ट फाइंड लाइक हिन्दू फिलोसफी?

इट साउंड, बट इट इज नॉट। एंड साउंड कैन बी अपियरिंग एंड इलुजन।

प्रश्नः माइ इम्प्रेश्न?

हां, ऐसा लग सकता है। क्योंकि भाषा हमें बोलनी पड़ती है। इसलिए लगता है, अगर हम चुप रहें तो साउंड बिल्कुल नहीं होगी। ऐसा लग सकता है। और फिर मेरे मन में ऐसा भी नहीं है, ऐसा भी नहीं है कि इंडियन माइंड के पास कुछ भी नहीं है। ऐसा भी नहीं है।

प्रश्नः एलिमेंट ऑफ बीट कंपलीट? दैट इज व्हाट एंड आई टॉक अबाउट इंडियन माइंड आई हेव वेरी स्पेसिफिक रेफरेंस, दी होल राइपनिंग प्रोसेस इज़ ऑल मोस्ट पैटर्नस्टिक, व्हाट इज़ दी ह्यूमन कॉशियसनैस गोइंग टू डू?

इट कैन हैल्प राइपनिंग। राइपनिंग इज़ दी ट्रांसफोर्मेशन। यह सवाल नहीं है। ह्यूमन माइंड क्या कर सकता है, वह रोक भी सकता है राइपनिंग को, वह कच्चे फल को भी तोड़ सकता है, वह राइपनिंग को सहायता भी पहुंचा सकता है। वह राइप होते फल को सहयोगी भी हो सकता है। सुरक्षा भी दे सकता है। अब सवाल यह है, ये ठीक कहते हैं, इसमें थोड़ी सच्चाई है। असल में, मेरे मन में इंडियन माइंड पूरा का पूरा गलत है ऐसा ख्याल ही नहीं है। असल में जब इंडियन माइंड अपने को पूरा-पूरा सही मानता है तब ही गलत होता है। और कोई माइंड कभी दुनिया में इस तरह गलत नहीं होता। जब कोई भी माइंड अपने को पूरा का पूरा सही मानता है तब गलत हो जाता है। वह चाहे कंयुनिस्ट का माइंड हो, चाहे कैथेलिक का हो, चाहे हिन्दू का हो। मेरी नजर मे कहीं भी अगर कुछ सही है, तो उसकी मेरे मन में स्वीकृति है। और इंडियन माइंड में कहीं भी अगर कुछ सही है तो वह एतत सही है। और वह यह है कि जिंदगी को हमने कॉन्लैक्ट की तरह नहीं, कॉपरेशन की देखा है। और जिंदगी के हमने डुअलिज्म की तरह नहीं, राइपनिंग सिंथोसिस की तरह देखा है। और मैं मानता हूं इसका मतलब... । वह व्याख्या हो सकती है कि युद्ध हो रहा है। और कॉन्लेक्ट सामने है। और एक व्याख्या हो सकती है क्योंकि युद्ध हो रहा है, इसलिए दोनों युद्ध के दलों को भीतर सहयोग करना पड़ रहा है, और कॉपरेशन के बिना युद्ध नहीं हो सकता। और मजे की बात यह है, इविन लीक्ट इज इंपोसिबल विदाउट कॉपरेशन। कॉपरेशन बेसिस में है, कॉन्लेक्ट से ज्यादा गहरा है। क्योंकि अगर मुझे आपसे लड़ना भी है तो किसी से कॉपरेट करना पड़ता है। लड़ने के लिए भी। लेकिन कॉपरेशन करने के लिए लड़ना पड़ता।

प्रश्नः व्हाट आई वाज रिपीट, आइडिया फॉर एक्जांपल दादा धर्माधिकारी के, हमें उत्क्रांति चाहिए, क्रांति नहीं।

मुझे दादा धर्माधिकारी से कोई लेना-देना नहीं। यह करीब-करीब शब्दों
के खेल हैं। उसको आप उत्क्रांति कहें या क्रांति कहें यह बड़ा सवाल नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि क्रांति वस्तुतः एक राइपनिंग की ही प्रक्रिया है। और जिन्हें क्रांति चाहिए उन्हें राइपनिंग में सहयोगी होना चाहिए। वृक्ष से फल गिरेगा ये बड़ी क्रांति है। और यह फल तोड़ा न जाए, पकाया जाए, और गिरे, यह बड़ी स्वाभाविक क्रांति है। इसे तोड़ा जाए जबरजस्ती, वायलेंस से, कोयर्सन से यह भी क्रांति है। लेकिन ये क्रांति कम क्योंकि कच्चा ही फल हाथ में पड़ता है, वृक्ष पे भी घाव रह जाता है, फल पर भी घाव रह जाता है। और फिर पकाना ही पड़ता है। मजा यह है कि फिर पकाना पड़ता है। जो काम वृक्ष पर बड़ी सफलता से होता था और जिस काम में वृक्ष सहभागी होता है, उसको फिर घर में, गेहूं में छिपाना पड़ता है। गेहूं की सहायता लेनी पड़ती है। जो कैपिटलिज्म कर सकता है, वह हमें जबरजस्ती लाए हुए सोशियलिज्म में करना पड़ेगा, और उसके लिए आर्टीफीशियल मेथड खोजने पड़ेंगे।
अब पूरे पचास साल रूस में हमको जबरजस्ती कोयर्सन करना पड़ा, जो काम कैपिटलिज्म कर सकता था, बिना दिक्कत के यह हमें बहुत दिक्कत उठा के करना पड़ा। और एक करोड़ आदमी के करीब हत्या करनी पड़ी, वह बेचारे इस्थेलिन को नाहक हत्यारा होना पड़ा। और हत्यारा होकर जिनके लिए उसने किया, उन्होंने उसकी कब्र खोद दी पीछे, खोदने ही वाले थे, वो क्योंकि उस आदमी ने बहुत परेशान किया पीछे। किया उनके ही हित में, लेकिन परेशान बहुत बुरी तरह किया। मेरा कहना यह है कि जब आम पक ही सकता है वृक्ष पर, तो बजाए यह कि आम को तोड़ने में ताकत लगाओ वृक्ष को पानी क्यों न दो। और वृक्ष को धूप क्यों न पहुंचाओ, वृक्ष की आड़ को अलग क्यों न करो, जिससे उसको धूप न मिल रही हो उसकी रूकावट को क्यों न हटाओ। जो काम हम वृक्ष से ही ले सकते हैं, इसमें इंडियन माइंड है। असल में इस मुल्क ने, इस मुल्क के आप ठीक ही कहते हैं कि वह इंडियन माइंड का बुनियादी सूत्र है कि जहां तक स्वाभाव से कुछ हो सके, वह शुभ है। और मैं भी मानता हूं कि स्वाभाव से कुछ होने... ।
प्रश्नः एलिमेंट ऑफ फेथ?
नो, नो, देयर इज़ ए नो एलिमेंट ऑफ फेथ। स्वाभाव का मतलब, नेचर का मतलब फेथ नहीं है। नेचर का मतलब ही यह है, अगर हम ठीक से समझें तो नेचर के साथ जो हम कर रहे हैं, वही साइंटिफिक भी है। फेथ का सवाल नहीं है। आखिर साइंस क्या करती है? अगर इस कमरे को उसने एयरकंडिशनर लगा के ठंडा कर दिया है, तो इसमें कुछ नेचर के खिलाफ नहीं हुआ है। असल में नेचर का नियम समझ लिया गया। और हवा कितने तापमान पर और कितने प्रेशर पर ठंडी हो सकती है, वह इस कमरे में व्यवस्था कर दी गई। यह नेचर के अनुकूल हो रहा है। लेकिन पश्चिम, वी विल टेक इट, एज कॉन्करिंग नेचर। इंडियन माइण्ड विल से दिस इज कंडिशनिंग अकोर्डिंग टू नेचर, और मैं मानता हूं दूसरी व्याख्या.ज्यादा शुभ है। हम कहेंगे कि हमने नेचर के साथ ज्यादा अनुकूल होने की व्यवस्था खोल ली इस कमरे में। तो हिमालय पर जो नेचर कर रहा है, वह हम इस कमरे में कर रहे हैं। लेकिन है वह नेचरल नियम। और उस नियम को हम पहचान गए हैं। सो वी हेव कम टू नो द मिस्ट्री ऑफ द नेचर, नॉट दैट वी हैव कॉनकॉर्डेट। वैस्टर्न माइंड हैज़ बीन थिंगकिंग टर्म्स ऑफ कांकरिंग। और इंडियन माइंड हैज बीन थिंगकिंग इन टर्म्स।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बहुत डिफरेंस है, बहुत डिफरेंस है, क्योंकि जैसे ही, जैसे ही हम जीतने
की भाषा में सोचते हैं, वैसे ही हम मनुष्य को जीवन से अलग तोड़ लेते हैं। पहली बात। जीवन का जो विराट है, उसे हम अलग खड़ा कर लेते हैं। मनुष्य कुछ अलग हो जाता है। और जैसे ही जीतने की भाषा में सोचते हैं, वी क्रीएट ए सिचुएशन फॉर इनर टेंशंस एंड इंजाएटी। क्योंकि जैसे ही हम आदमी को लड़ने की भाषा में सोचते हैं, सबसे लड़ना है, प्रकृति से लड़ना है, समाज से लड़ना है,

राज्य से लड़ना है, सब तरफ लड़ना है, तो हम आदमी को टेंशन में डालते हैं।
जिसको मैं भारतीय विचार कहूं, वह करेगा तो यही, लेकिन लड़ने की भाषा नहीं है।

प्रश्नः करेगा ही सही, वह मैं नहीं मानता हूं।

मैं जो उनसे कह रहा हूं, दोनों की बात की जो बात कर रहे हैं, दोनों में क्या फर्क है? दोनों में क्या फर्क है? वह सिर्फ उतने कह देने से बात तो एक ही है, लेकिन फर्क जो पड़ने वाला है, वह बेसिकली ह्यूमन माइंड की टेंशंस पर पड़ने वाला है। अगर इस विचार को स्वीकार किया जा सके, जिसको भारतीय मैं कहूं, तो हम मनुष्य के भीतर और प्रकृति के बीच एक इनर हार्मनी पैदा करते हैं। और यह इनर हार्मनी हम मनुष्य और प्रकृति के बीच ही पैदा नहीं करते, मनुष्य के माइंड को हम हार्मोनियस करते हैं, हम कॉन्लेक्ट की भाषा में सोचते नहीं। आज जरूर ये कह रहे हैं, करेगा जरूर ये पक्का नहीं है। इसमें थोड़े सच्चाइयां हैं, इसमें थोड़े सच्चाइयां हैं, क्योंकि यह कंडिशनर जो है, इंडियन माइंड ने बनाया नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

रमन को मिला हो, या जगदीश चन्द को मिला हो, या किसी को भी मिला हो... ।

प्रश्न : मैं क्या बात करता हूं यह कॉन्करिंग... ?

इसको थोड़ा समझ लें, इसको थोड़ा समझ लें। यह मैं मानता हूं वह एक जो मिला
वह भी नहीं मिलना चाहिए, और अगर किसी इंडियन को मिला, तो वह इंडियन नहीं रहा होगा, उसके पास वैस्टर्न माइंड होगा, तो मिलेगा। इंडियन घर इधर पैदा हो जाने से इंडियन नहीं हो जाता। असल में नाबल प्राइज वैस्टर्न माइंड की इजाद है। और वैस्टर्न काइंड का जो कॉन्लेक्ट का कंसेप्ट है, उसके अनुसार मिल रहे हैं। कितनी दूर तक प्रकृति जीती जा रही है। अगर इंडियन कभी नोबल प्रइज विकसित करे तो पश्चिम के एक आदमी को मिलना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि हम दूसरे डायमेंशन में उसको देंगे। एक।

प्रश्नः डोंगरे महाराज को... ।

मेरी बात... । डोंगरे महाराज को देंगे या नहीं, यह पक्का नहीं है, नहीं
ये जरूरी नहीं है। यह जरूरी नहीं है। लेकिन डोंगरे महाराज ही हिन्दुस्तान पैदा नहीं करता, बुद्ध भी हिन्दुस्तान पैदा करता है। और मैं नहीं मानता कि बुद्ध को नोबल प्राइज़ मिलेगी, तो बेहतर होगा कि आइंस्टीन को मिलती, तो बेहतर होता। इतना आसानी से तय करना नहीं है आसान कि किसको मिलना चाहिए? मैं जो कह रहा हूं, नहीं वो डोंगरे महाराज की वजह से मैं कह रहा हूं। मैं डोंगरे महाराज की वजह से कह रहा हूं।
मैं जो आपके लिए बात कह रहा हूं उसके लिए थोड़ी बात करें। उसकी भी हम बात करें। असल में इंडियन माइंड ने एयर कंडिशनर तो पैदा नहीं किया, लेकिन इंडियन माइंड ने एयर कंडिशनिंग की धारणा बहुत दूसरी तरफ से पैदा की है। और निश्चित ही वह दूसरी तरफ से ही कर सकता था। क्योंकि उसमें प्रकृति को स्वीकार करने का भाव है। अगर आपको तिब्बतन हीट योग का थोड़ा ख्याल है, आप कर क्या रहे हैं, इस एयर कंडिशनिंग के साथ, एक यंत्र आपने इंतजाम किया हुआ है, उसे लगा दिया गया है, वह यहां कुछ हवा के साथ कर रहा है। इंडियन माइंड बेसिकली ह्यूमन बीइंग के साथ कुछ करता रहा है। और हमने ऐसे शरीर पैदा किये और ऐसे शरीर की योगिक प्रकियाएं भी पैदा की कि इस कमरे में गर्मी मालूम न पड़े। दूसरी तरफ से हमारी खोज है। और वह इनकी खोज से कम नहीं है, बल्कि हो सकता है, आने वाले सौ वर्षों में इनसे महत्वपूर्ण सद्धि हो। क्योंकि यह मशीन बंद हो सकती है, यह मशीन कल धोका दे सकती है।

हमने भी कुछ प्रकियाएं विकसित की हैं, जो प्रकियाएं इस कमरे में गर्मी न मालूम पड़ें उसमें सहयोगी है। अगर पश्चिम ने लिट विकसित की, अभी मैं हठ योग की प्रकिया के बाबत आपसे कहूंगा। हठ योग की एक छोटी सी प्रकिया है, जो कोई भी उपयोग कर सकता है। उसमें कुछ विशेष जानकारी की जरूरत नहीं है। आप हजार सीढ़ियां चढ़े, हठ योग का कहना है, चढ़ते वक्त आप श्वांस को भीतर की तरफ न लें, बाहर की तरफ फेंके। बस जस्ट डू दैट। एंथेसिस इज शुड बी ऑन द आउट गोइंग। आप भीतर न लें, बाहर फेंक दें। और भीतर ले जाने को अपने आप होने दें। और आप लाख सीढ़ियां चढ़ जाएं आपको तकलीफ नहीं होगी। मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं... । मैं सिर्फ एक उदाहरण दे रहा हूं। इस पर हजार बात हो सकती हैं। आज तिब्बत में हीट योग है, वह भारतीय प्रकिया है। एक आदमी बर्फ में बैठा हुआ है, और उसका पसीना चू रहा है। नंगा बैठा हुआ है। इसने भी एक तरह की व्यवस्था की है, जो यंत्र निर्भर नहीं है। ये सिर्फ संकल्प है उसका। और यह सिर्फ विल फोर्स है कि वह सर्दी को मानने से इंकार कर रहा है। और मजा यह है, यह अगर पांच हजार का एयरकंडिशनर इस कमरे में लगाना पड़ता है तो पांच हजार का एयर कंडिशनर लगाना, और इस प्रकिया को सीखना इतना महंगा नहीं है, जितना यह महंगा है। और अगर कोई सोचता हो कि वह बहुत व्यापक नहीं हो सकता तो गलती में है। वह व्यापक नहीं हुआ क्योंकि प्रचारित नहीं है। और इधर तीन सौ-चार सौ वर्षों में हिन्दुस्तान को कभी एयर कंडिशनर का ख्याल न आने का कारण था, हम लोग कुछ और तरह की कंडिशनिंग खोजें। उनमें हम जी रहे थे। उनमें हम सुख से थे। उसमें हम परेशान नहीं थे। हमारी तकलीफ क्या हो गई, वह कंडिशनिंग की व्यवस्था टूट गई, और एयरकंडिशनर हम सबको उपलब्ध नहीं करा पा रहे। यह कठिनाई है। और दूसरा, जिसे आप कहते हैं कि नोबल प्राइज लिटरेचर में, असल कठिनाई क्या है, कठिनाई यह है सदा ही कि जो भी कुछ प्राइजेज तय होती हैं, वह सारी की सारी प्राइजेज, एक विशेष ढांचे में और एक विशेष माइंड से तय की जा रही हैं। अगर आज शास्त्र को नोबल प्राइज मिल सकती है, तो इसका यह कारण नहीं है कि शास्त्र नोबल प्राइज के योग्य हैं, इसका कारण कुल इतना है कि जो पावर इस्फीयर है शास्त्र का और जो नोबल प्राइज का पावर इस्फीयर है, वह एक है। आज कत्थक करने वाले को नोबल प्राइज नहीं मिल सकता। वह भी एक आर्ट फार्म पैदा कर रहा है। हो सकता है रविशंकर को नोबल प्राइज नहीं मिल सकती, वह भी एक आर्ट फार्म पर मेहनत कर रहा है। लेकिन एक, पश्चिम के एक लेखक को, अब जैसे कि समझेंगे कि जिवागो को मिल सकती है।

प्रश्नः टागोर को मिला?

टागोर को मिला, और टागोर को मिलने का कारण अगर बहुत गौर से देखें, तो
हम बहुत हैरान होंगे कि फिर भी वो इंडियन माइंड को नहीं मिलती। टागोर को जिस वजह से मिला है, और जो उसे मिला है, वह वैस्टर्न माइंड के अनुकूल पड़ सकती हैं। इसलिए टागोर को मिल सकता है। असल कठिनाई क्या है, अगर--, हो क्या रहा है, इस दुनिया में अगर आज कोई पांच-सात प्रकार के बड़े गहरे कल्चर एक साथ खड़े हो गए हैं। पावर इस्फीयर जिस कल्चर का है, उस कल्चर के सारे फांर्स को नोबल प्राइज़ मिल सकती है। स्वाभावतः नोबल प्राइज़ का बड़ा हिस्सा अमेरिका गया है। जाएगा। क्योंकि पावर इस्फीयर वह है। और सोचना और जजमेंट करने वाला, और नोबल प्राइज देने वाला भी वही है, उसी कंडिशनिंग में है। यह सारी कठिनाई... ।

प्रश्नः रशिया को भी मिला है... ?

हां-हां, मिले हैं बिल्कुल।

प्रश्नः पर आपकी पहले वाली बात, गर्मी की बात। अगर मैं ये मान लूं कि मुझे गर्मी नहीं लगती है, तो मुझे गर्मी नहीं लगेगी। आपने जो प्रकिया की बात की, जो योग की बात की। जैसे मैं ये मान लूं कि गरीबी नहीं है, और गरीबी मुझे नहीं लगेगी?

नहीं, मान लेने से नहीं लगेगी ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं। आप मान लें और लगेगी। अगर मैं यह कहूं--।

प्रश्नः वो प्रोसेस में चलेगी?

न-न, आप मान लें तो नहीं लगेगी, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं।

प्रश्नः गर्मी की जो उपमा दी?

हां-हां, गर्मी भी आप मान लें, नहीं लग रही तो भी लगेगी। आपका मानना भर काफी नहीं है। उस प्रोसेस से गुजरेंगे तब तो नहीं लगेगी।

प्रश्न : गरीबी नहीं लगेगी?

उस प्रोसेस से गुजर कर गरीबी भी नहीं लगेगी।
(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

उस संबंध में भी योग ने बहुत सा काम किया। और योग ने खाने को बहुत ही सूक्ष्मतम कर दिया। और मैं मानता हूं कि उसका उपयोग किया जा सकता है। भविष्य में शायद उपयोग करना भी पड़े। जैसे की महावीर के बाबत उल्लेख हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। मेरी अपनी समझ यह है कि जिस दिन सोसाइटी एफेल्यूएंट होगी, जैसा मैंने सोशियलिज्म के लिए कहा कि वह बाइप्रोडक्ट बनेगी। जिस दिन सोसाइटी एफेल्यूएंट होगी, आप हैरान होंगे कि अचानक आपके माइंड योग की तरफ डायवर्ट होने शुरू हुए। कोई भी एफेल्यूएंस सोसाइटी, साधारण चीजों से क्योंकि तृप्त हो जाती है, इसलिए असाधारण की खोज पर निकल जाती है। और योग है, और मैडिटेशन है, और तंत्र है, और संगीत है, और सितार है, और इन सब पर निकलती है। सारा कल्चर जो है, वो आउट ऑफ एफेल्यूएंस पैदा होता है। कल्चर का मतलब ही यह है कि अब आपने फिजूल काम करने शुरू कर दिये। अब जरूरी काम करने जरूरी नहीं रह गए। तो मैं ये मानता हूं, मैं ये मानता हूं कि योग की बड़ी संभावनाएं हैं। ये सोशियलिज्म से कम नहीं, ज्यादा ही हैं। और सोशियलिज्म तो एक सौ वर्ष में चर्चा के बाहर हो जाएगा, कैपिटलिज्म के विदा होते ही, सोशियलिज्म चर्चा के बाहर हो जाएगा। लेकिन योग कभी बाहर नहीं होने वाला है। जब तक आदमी है, तब तक योग चर्चा के भीतर रहेगा। सोशियलिज्म तो सिर्फ एक फेज है और फैशन है। और एक वक्त की बात है, एक कंटेंप्रेरी प्रॉब्लम है। योग कंटेंप्रेरी प्रॉब्लम नहीं है। योग बेसिकली ह्यूमन प्रॉब्लम है, क्योंकि जब ह्यूमन माइंड है तब तक रहेगा। और मजा यह है कि जब तक हम छोटी चीजों से उल्झे हैं, खाना नहीं है, कपड़ा नहीं है, तब तक योग-वोग की बात करनी फिजूल मालूम होती है। जैसे ही खाना, कपड़े से हम मुक्त हुए कि योग के अतिरिक्त आपको उल्झाव का उपाय भी नहीं रह जाएगा। और उचित उस दिन आप एक्सपेरिमेंट कर सकेंगे बहुत से कि एयरकंडिशनिंग के बिना ये कमरा ठंडा कैसे हो सकेगा?

प्रश्नः दैट इज़ दि प्वाइंट। व्हाट यू आर एडवोकेटिंग इज़ क्रीयेटिंग इंटरनल कंडिशंस ऑफ होपिंग। वाय दैन क्रीयेट ऑल दिस टैक्नोलॉजिकल एड्वांटेज इन ऑल दैट?

इसके कारण हैं, इसके कारण हैं, क्योंकि बाहर की सुविधाएं अगर उपलब्ध न हों, तो भीतर का स्मरण भी नहीं आता। भीतर का स्मरण जो है, वो बाहर की सुविधाओं के बाद ही आता है। असल में में जो इनर डायमेंशन है, दैट इज़ दि

मोस्ट लग्जूरियस डायमेंशन। गरीब आदमी उसपे जा नहीं सकता। उसके कारण हैं, उसको स्मरण भी नहीं आता। असल में हमारे जीन के तल हैं। अगर मैं भूखा हूं तो बहुत मुश्किल है कविता की याद आए। और अगर आए भी तो भूख की ही कविता हो सकती है, ज्यादा से ज्यादा। और अगर मैं भूखा हूं, और आकाश में देखूं तो चांद में मुझे प्रेयसी की तस्वीर शायद ही दिखाई पड़े, रोटी दिखाई पड़ सकती है, तैरती हुई। जो स्वाभाविक है। जितनी जीवन की नीचे की जरूरतें हैं, जब तक वह हमें घेरे हुए हैं, तब तक जीवन के जो इनर डायमेंशंस हो सकते हैं, उनका हमारे पास कोई उपाय नहीं है। तो मैं इसलिए भी टैक्नोलॉजी के पक्ष में हूं। मैं इसलिए भी पक्ष में हूं कि सारी दुनिया टैक्नोलॉजिकल रेवल्यूशन से गुजर जाए, ताकि सारी दुनिया इनर डायमेंशन में गति कर सके। इधर मैं निरंतर कहता हूं कि हिन्दुस्तान में जैनियों के चौबीस तीर्थंकर, राजाओं के बेटे हैं। बुद्ध राजाओं के बेटे हैं, राम और कृष्ण हिन्दुओं के सब अवतार राजाओं के बेटे हैं। यह अकारण नहीं है। मैं मानता हूं इनकी सब नीचे की जरूरतें पूरी होंगी, अब और कोई उपाय नहीं रहा जिंदगी में। और पहली दफा जिंदगी दूसरी दिशाओं में यात्रा शुरू की। अभी तक हम पूरे समाज के लिए ऐसा इंतजाम नहीं कर पाए, यह दुखद है।

प्रश्नः कम बैक व्हाट इज़ टॉकिंग दिस। दी ह्यूमन कॉन्शियसनैस इज़ इण्डिवीजुअल कॉन्शेसनैस, दैन इज़ रिटर्निंग बाई माइ एक्सटर्नल कण्डिशन्स।

नो, इसको जब हम इदर-आर में तोड़ते हैं तो हम कठिनाई में पड़ते हैं। और इदर-आर में जिंदगी कहीं भी तोड़ी जाएगी, तो वह लॉजिकल तो मालूम होती है, लेकिन वह जिसको कहना चाहिए कि वास्तविक एग्जेसटेंशीयल नहीं रह जाती। ऐसा सवाल नहीं है कि आदमी की चेतना को परिस्थितियां तय करेंगी, या परिस्थितियां आदमी की चेतना को तय करेंगी, या चेतना परिस्थितियों को तय करेगी। परिस्थितियां और चेतना, सर्कमस्टांसिस और कॉन्शेसनैस आर टू एक्स्टीम पोल्स ऑफ वन मूवमेंट। यह कोई दो चीजें नहीं हैं, मेरे हिसाब में। आप जिसको कॉन्शेसनैस कहते हैं, वह और आप जिसको सर्कमस्टांसेस कहते हैं वह, यह एक ही चीज के दो छोर हैं। और इसलिए मैं इसको कॉन्लैक्ट में नहीं ले पाता हूं। इसको भी नहीं ले पाता कि कौन किसको डिटर्मिन करेगा? यह सवाल तब उठता है, जब यह दो चीजें हों। जिसको हम आउट वर्ल्ड कह रहे हैं, और जिसको इनर वर्ल्ड कह रहे हैं, दो वर्ल्ड नहीं हैं। यह एक ही वर्ल्ड को दिमाग से दो हिस्सों में तोड़ कर कही गई बात है। ऐसा कोई आउट वर्ल्ड और ऐसा कोई इन वर्ल्ड जैसी बात नहीं है। यह दोनों एक ही चीज़ के मूवमेंट हैं।

प्रश्नः आइडिया कैन ऑल्सो बी ए मैटेरियल फोर्स?

बिल्कुल हो सकता है। होता है।

प्रश्नः मैटेरियल फोर्स ऑल सो कैन क्रीयेट आइडिया?
प्रश्नः और एक और बात, यह हमारे मित्र ने जो कहा, हिन्दू माइंड की बात कही, और कॉपरेशन, कांकरिंग नहीं कही, कॉपरेशन, इसका नेट रिजल्ट आज की परिस्थिति में क्या होता है? यह आप यहाँ बहुत अर्से से आते हैं, और लोगों से ऐसा कहते थे कि असंतोष, असंतोष नहीं होना चाहिए। तभी प्रगति होगी, वगैरह। अब ये जो हिन्दू माइंड है, जिसकी यह करेक्टरस्टिक है कि कंसंट्रेशन अवोयड करना, जहां भी कंसंट्रेशन देखा, वह अवोयड करना। तो आप जानते होंगे कि कैपिटलिज्म को जितना भी हमारे देश में आज तक कुछ फ्रीडम मिला ऑपरेट करने का, तो उसने क्या किया है? विचार के स्तर पर भी, शिवसेना को पैसा कौन देता है? इतने डिवाइडिंग फोर्सेज़ हैं, जितने एंटी मॉडर्न फोर्सेज़ हैं, बिरला के पास पैसा हो तो वह कॉलेज बना दे, या कुछ ऐसा साइंटिफिक प्रोग्रेस के लिए पैसा देने के बजाए, वह मंदिर बनवाता है। क्योंकि वह जानता है, शायद जानता हो या ना भी जानता हो, लेकिन उसकी प्रवृत्ति इसी तरह की रहती है कि मॉडर्न जो आइडिया हैं, साइंस जो है,

साइंटिफिक आइडिया, उसके प्रसार के लिए कैपिटलिस्ट बहुत उत्सुक होएं ऐसा मालूम नहीं पड़ता। बल्कि जो कुछ ट्रेडिशनल है, उसको सहाय देने की उसका उत्क्रष करने की डिवाइडिंग फोर्सेज हों, जर्निलिज्म हो, कास्ट हो और यह सब हो, अब उसके साथ एक दूसरी भी हमें, एक स्थिति ऐसी प्राप्त हुई है, इस देश में कि हम सब देखते हैं कि हम बहुत बैकवर्ड हैं। और पश्चिम के देश जो हैं, यह बहुत ही आगे निकल गए हैं। हमारी धीरज खत्म हो रही है। आइडेंटी का भी एक फैक्टर इसमें आ गया है कि हम सब भी मॉडर्न ऐज में प्रवेश करना चाहते हैं। आपने चाइना और रशिया का उदाहरण दिया कि वहां बल से लाया गया। वहां तो च्वाइस का सवाल ही नहीं पैदा होता। लेकिन हमारे देश में एक ऐसी स्थिति पैदा हुई है कि जहां च्वाइस है, आज हम विभेद कर सकते हैं कि क्या रखेंगे हमारे देश में कैपिटलिज्म या सोशियलिज्म? और कुछ लोगों को ऐसा लगता है कि ये जो मॉडर्नाइजेशन का प्रोसेस है, अल्टीमेटली मेरा ख़्याल ऐसा है कि कंयूनि.ज्म हो या कैपिटलिज्म हो ऊंचे प्रकार का, दोनों में मॉडर्नाइजेशन होना चाहते हैं। ट्रेडिशनल सोसाइटी से टूटना चाहते हैं। और ऐसा लगता है कि कैपिटलिज्म जिस तरह से बिहेव करता है हमारे देश में, क्योंकि कैपिटलिस्ट जो हैं, वो भी बैकवर्ड सोसाइटी के निकट हैं, तो यह मॉडर्नाइजेशन के प्रोसेस को एक्सीलरेट करने के लिए सोशियलिज्म शायद ज्यादा कामयाब हो सके ऐसा लगता है।
अब आप भी ऐसा कहते थे लोगों को जो पुराने ख्यालात हैं, वो छोड़ने चाहिएं, जब आपने देखा कि कुछ पॉलिटीशियन की कुछ पार्टियों के कुछ एक्शन से, कुछ कार्यों से यह जो असंतोष कंसंट्रेशन, पोलराइजेशन वैगरह चालू हो गए हैं, तो ऐसा मालूम पड़ता है कि आपका हिन्दू माइंड फिर एफर्ट कर रहा है। लोगों को फिर आप कह रहे हैं कि अब तो मैंने बहुत अभी तक कहा कि दौड़ो-दौड़ो, लेकिन जब सचमुच दौड़ने लगे तो आपने कहा, रूक जाओ। अब मत दौड़ो, अब कॉपरेशन की बात करो। कन्सन्टेशन अवोएड करो?

नहीं, मैं बिल्कुल नहीं अवोएड कर रहा। इसको थोड़ा समझें, इस पर दो-तीन बातें ध्यान में ले लेनी चाहिएं। एक तो हिन्दू माइंड निश्चित ही एस्केपिस्ट है। मैं एस्केपिस्ट नहीं हूं। और वह जो सोशियलिज्म की बात करने वाले हैं, जो सोशियलिज्म की आज बात कर रहे हैं, उनमें हिन्दू माइंड ज्यादा है। सोशियलिज्म आज कैपिटलिज्म से एस्केप है। मैं कंसंट्रेशन की बात आज भी कर रहा हूं। लेकिन अगर मैं कैपिटलिज्म से कंसंट्रेशन की बात करूं, तो आपको समझ में आता है ये कंसंट्रेशन है। और अगर सोशियलिज्म से कंसंट्रेशन की बात करूं, तो आप समझते हैं हिन्दू माइंड लौट आया। मेरी बात अब भी कंसंट्रेशन की है। लेकिन मैं किससे कंसंट्रेशन करूं, यह सवाल है। आज मुझे लगता है कि सोशियलिस्ट ख्याल ही इस मुल्क के लिए आत्मघातक है। मैं उनको कंसंर्ट करूंगा। और डिसकंटेंट की बात मैं आज भी जारी रखे हुए हूं। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन डिसकंटेंट का मतलब यह नहीं है कि कोई भी नासमझी की बात को स्वीकार कर लूं। डिसकंटेंट का मतलब यह है कि अतीत की नासमझियां थी, उनके खिलाफ मैं लोगों से कह रहा हूं उनको छोड़ो, लेकिन भविष्य की नासमझियां भी हैं। इस मुल्क की पास्ट ट्रेडिशन में बहुत सी बेवकूफियां हैं, उनको मैं कहता हूं छोड़ें। लेकिन भविष्य मे भी बेवकूफियां दरवाजे पे खड़ी हैं उनको पकड़ मत लेना। तो जब मैं अतीत की बेवकूफियां छोड़ने को कहता हूं, तब आप समझते हैं, मैं क्रांति की बता कर रहा हूं और जब मैं भविष्य की बेवकूफियां न पकड़ें इसके लिए कहता हूं, तब आप कहते हैं, यह तो आदमी प्रतिक्रांतिवादी है। मेरी बात समझ लें पूरा।
मैं तो लड़ाई ही जारी रखे हुए हूं। लेकिन मेरे सामने दो सवाल हो गए हैं, अतीत में इस मुल्क ने बहुत दुःख उठाया और ये भविष्य में फिर दुःख उठा सकता है। और अतीत में यह मुल्क जिस तरह की गुलामी में और दीनता में जिया, ये भविष्य में फिर सोशियलिज्म के साथ उस तरह की दीनता और गुलामी में जी सकता है। जैसा आपने कहा कि अभी हम बैठ कर बात कर रहे हैं और हमारे सामने च्वाइस है कि हम कैपिटलिज्म को चुने कि सोशियलिज्म को चुनें। ध्यान रहे जब तक कैपिटलिज्म है, तभी तक ये च्वाइस है। जिस दिन सोशियलिज्म है, फिर यह

च्वाइस नहीं है। अब आप क्या चुनें? इस च्वाइस को बनाए रखना हो, तो कैपिटलिज्म को बनाए रखना कि हम डिस्कस कर सकें यह यहां बैठ कर। नहीं तो एक दफा चुनाव कर लिया सोशियलिज्म का तो फिर हम डिस्कस न कर सकेंगे यहां बैठ कर कि अब क्या इरादा है? सोशियलिज्म को बदलना है, फिर यह बात नहीं चल सकेगी। यह डायलॉग कैपिटलिज्म के भीतर चल सकता है। यह साशियलिज्म के भीतर नहीं चल सकता। तो अगर यह फ्रीडम बचाए रखनी हो, वही मैं कह रहा हूं क्योंकि आज हम यह बात कर पा रहे हैं, यह कैपिटलिस्ट सिस्टम के भीतर संभव है। यह सोशियलिस्ट सिस्टम के भीतर संभव नहीं है। सोशियलिस्ट सिस्टम एक बार तय कर लेगी आप से, और मजा यह है कि सोशियलिस्ट सिस्टम कैपिटलिस्ट फ्रीडम का फायदा उठा लेगी। और इसके बाद फिर मौका नहीं देगी कि आप फिर तय कर सकें या विचार कर सकें।

प्रश्नः व्हाट अबाउट युगोस्लाविया?

मैं बात करता हूं, मैं बात करता हूं। यह जो, जहां-जहां जैसे कि चिकोस्लाविया, युगोस्लाविया यह जो मुल्क हैं, अगर हम बहुत गौर से देखें, बहुत गौर से देखें, तो इनको कंयुनिस्ट या सोशियलिस्ट मैं न कहना पसंद करूंगा, और स्टेलिन भी पसंद न करता। हालांकि स्टेलिन से मेरा कोई भी कहीं भी तालमेल नहीं होता। लेकिन इस मामले में तालमेल है। इस मामले में तालमेल है। यह इनको सोशियलिस्ट और कंयूनिस्ट कहना पसंद न करता, मैं मानता हूं कि यह एक्सेलरेटिड कैपिटलिज्म ही है। और इसके लिए जो भी प्रयोग किये जा सकते हैं, वह किये जाने चाहिएं। दूसरी बात जो आपने उठाई कि हिन्दू माइंड जो है, वह सदा से भागता रहा है चीजों से निश्चित ही भागता रहा है। और डर मुझे यह है कि कहीं वह आज भी तो नहीं भाग रहा। जिसको आप नक्सलाइज्ड कहते है, मेरे लिए हिन्दू माइंड है। और जिसको आप पूंजीपति कहते हैं, आप कहते हैं पूंजीपति तो वही बैकवर्ड हिन्दूमाइंड से पैदा हुआ है। आप समझते हैं आपका कंयूनिस्ट उसी बैकवर्ड हिन्दू माइंड से पैदा नहीं हुआ है? वह दोनों उसी बैकवर्ड हिन्दू माइंड से पैदा हुए हैं। और लड़ाई दोनों से लड़नी पड़ेगी। इस भ्रांति में आप मत पड़ जाना कि कैपिटलिस्ट तो बैकवर्ड हिन्दू माइंड से पैदा हुआ है और कम्यूनिस्ट जो है वो मास्को से पैदा हुआ है। वो कहीं से पैदा नहीं हुआ, वह भी इसी बैकवर्ड हिन्दू माइंड का हिस्सा है। और जिसको आप कैपिटलिस्ट कह रहे हैं, वह तो बैकवर्ड माइंड से पैदा हुआ है, जिसको आप मजदूर कह रहे हैं, कह रहे हैं कि जो कि भविष्य की अब एतिहासिक शक्ति है, वह किससे पैदा हुआ है, वह और भी बैकवर्ड है। वह और भी बैकवर्ड हिन्दू माइंड है।
इधर तो हमें जो चुनाव करना है, इस मुल्क में हिन्दू माइंड के भीतर ही है। अब सवाल यह है कि उसमें करना क्या है? और जो यह मॉडर्नाइजेशन की बात है, यह मेरी समझ में पड़ती है। और मैं चाहता हूं कि कितनी जल्दी मॉडर्नाइजेशन हो, लेकिन हम चीजों से बच रहे हैं। अब यह सोशियलिज्म की बात हो, या कोई और बात हो, यह मॉडर्नाइजेशन से बचने की तरकीब है। आज मॉडर्नाइजेशन का मतलब एक ही है। और वह यह है कि जो व्यवस्था हमारे पास है उसको हम पूरी तरह एक्सेलिरेट करें। अगर हम उसको एक्सेलिरेट करते हैं, तो मॉडर्नाइजेशन संभव हो जाएगा। अगर हम उसको एक्सेलिरेट नहीं करते और डायवर्ट करते हैं मुल्क के माइंड को जो हमारी पुरानी हिन्दू आदतें हैं, तो हम उसको डायवर्ट कर सकते हैं। हम सोशियलिज्म की बात डायवर्ट कर सकते हैं। दूसरी बात मॉडर्नाइजेशन इस मुल्क के लिए बड़ा भारी प्रॉब्लम है, और वो प्रॉब्लम बहुत सोचने जैसा है, उस मॉडर्नाइजेशन को कौन लाएगा? और वह कैसे आए? और क्या है जो मॉडर्न है? और क्या है जो ओल्ड है? एक तो हमारी सारी जीवन व्यवस्था का जो ढांचा है, उस ढांचे में कुछ चीजें हैं जो मॉडर्नाइजेशन को नहीं आने देंगी। अब आज एक कंयूनिस्ट भी विवाह करता है, तो विवाह करने में उसका जो ढंग-ढौल में देखता हूँ सब वो वही का वहीं हिन्दू माइंड का है। और कंयूनिस्ट भी विवाह करता है, और उसकी पत्नी भी किसी के साथ हंसती हुई उसको मिल जाए, तो वह जो व्यवहार करता है वह बिल्कुल मनु महाराज का है। वह उसका

अपना नहीं है। मॉडर्न माइंड का मतलब ही यह है कि एक तो हमारे सारे सैक्स की जो मॉरिलिटी है, वह हमें तोड़नी पड़े। मॉडर्न माइंड का मतलब यह है कि हमारा जो गैर चिंतन का लंबा इतिहास है वो हमें तोड़ना पड़े लेकिन वो बदल सकते हैं, बिना तोड़े।
एक आदमी हिन्दू से कंयूनिस्ट हो सकता है, और उसके माइंड का पूरा स्ट्रक्चर वही रहे। तो वह जिस भांति गीता को पकड़ता था, उस भांति कैपिटल को पकड़ ले। तो मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है। अभी एक मित्र ने मुझे कहा, कंयूनिस्ट हैं, उन्हेंने कहा कि अब मैं आपको सुनने नहीं आ सकता। तो मैंने कहा कि बड़े मजे की बात है, कल अगर मुझे कोई एक धार्मिक आदमी कहता था कि आप धर्म के खिलाफ बोलते हैं, मैं आपको सुनने नहीं आ सकता और अगर एक कंयूनिस्ट भी मुझे यही कहता है कि कंयूनिज्म के खिलाफ बोलते हैं, मैं आपको सुनने नहीं आ सकता, तो मैं तुम दोनों में फर्क कहां करूं? यानि मुझे तुम सुनने नहीं आ सकते, क्योंकि मैं तुम्हारे खिलाफ कुछ बोल रहा हूं, तो फिर मैं तुममें फर्क कहां करूं? तुम फिर खिलाफ कुछ सुनना नहीं चाहते, उसी तरह जैसा कि वो हिन्दू नहीं सुनना चाहता। मॉडर्न माइंड जो है, वह सिर्फ... के फर्क से नहीं होगा। वह स्ट्रक्चरल फर्क है। और एंथेसिस तो बदली जा सकती है। एक आदमी हिन्दू से मुसलमान हो जाता है, मुसलमान से ईसाई हो जाता है, लेकिन बेसिक माइंड वही का वही रहता है। वही सब काम रहता है। मुझे नहीं दिखाई पड़ता कि हिन्दुस्तान में जिसको आप प्रोग्रेसिव एलीमेंट कहें, वह जरा भी प्रोग्रेसिव है। उसने सिर्फ एंथेसिस बदली है, स्ट्रक्चर उसके पास वही का वही है। और उसके भीतर सब दांव-पेच, सब दन-फन वही के वही हैं। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ गया। अगर शिवसेना के अदमी आपको गलत दिखाई पड़ते हों, तो वो गलत है हीं, सो दिखाई पड़ने चाहिएं। लेकिन शिवसेना के खिलाफ जो कंयूनिस्ट लड़ रहा है, वह भी सब उन्हीं तरकीबों को, उन्हीं जातिवाद का उपयोग कर रहा है। वही सब तरकीबों को उपयोग कर रहा है, जो शिवसेना कर रही है। फिर सवाल यह है, और शिवाजी का पुतला लेके चलो कि माओं का पुतला लेकर चलो, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। पुतला लेके चलने वाला आदमी एक है।
आप दीवार पर शिवाजी के नारे लगा दो कि माओ का जय-जयकार कर दो, इससे अक्षर बदल जाते हैं, आप नहीं बदलते। और माओ भी वही माइंड लिख सकता है, जो शिवाजी को लिख रहा है। इस मुल्क को मॉडर्न होने का मतलब ही यह है कि पहली दफा ठीक से समझ लेना चाहिए कि हमारा ओल्ड क्या-क्या है। वह हमें बहुत साफ नहीं है। हमारा ओल्ड क्या-क्या है। एक तो हम बिलिविंग हैं, और हम ऑथोरिटी पे बड़ा भरोसा करते हैं। और मैं मानता हूं बड़ी अजीब बात है, कम्यूनिस्ट पार्टी का अगर हम पिछले बीस साल, तीस साल, चालीस साल का हिन्दुस्तान का इतिहास देखें, हमें बड़ी हैरानी होती है कि जैसे मास्को से एक सर्कुलर निकलता है यहां सबका दिमाग एकदम बदल जाता है। और उस सर्कुलर के पहले हम लाख उनको कहें कि ऐसा हो रहा है, उससे हम राजी नहीं होंगे। यह बड़ी अजीब सी बात है। हमारे पास भी कोई आंख है? अगर पचास साल का मास्को और हिन्दुस्तान की पार्टी के संबंधों का पूरा इतिहास देखे, तो मैं नहीं समझता यह आपके जिन महाराज का आपने नाम लिया, डोंगरे महाराज से बहुत भिन्न सिद्ध होगा। यह उससे भी गया। और डोंगरे महाराज तो कम से कम साफ दिखाई पड़ रहे हैं कि यह मरी दुनिया के हिस्से हैं। लेकिन यह कंयूनिस्ट ज्यादा खतरनाक सिद्ध होगा क्योंकि है बिल्कुल मरा, और साबित कर रहा है, वह भविष्य का हिस्सा है, और मॉडर्न माइंड है।
यह जो मॉडर्न और ओल्ड के बीच एक सवाल है, इसके लिए मैं निरंतर कोशिश करता हूं कि ओल्ड माइंड क्या है, वह हम साफ तौर से समझ लें। ताकि मॉडर्न होने का सवाल उठ जाए। मॉडर्न माइंड बहुत बड़ी बात है, सोशियलिस्ट क्रांति बहुत छोटी बात है। कैपिटलिज्म से सोशियलिज्म लाना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है, लेकिन माइंड को मॉडर्न करना, बहुत बड़ी... । मजा तो यह है कि जिनको आप पश्चिम के लोगों को मॉडर्न माइंड कह रहे हैं, उस गलती में भी आप मत पड़ना। वहां भी आज सड़क पर भजन कीर्तन शुरू हो गया है। आप इसको थोड़ा समझ लें, मॉडर्न माइंड आज वेस्ट के पास भी नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह जो है, स्थिति पश्चिम में भी जिसको हम मॉडर्न माइंड कह रहे हैं, वह
भी थोड़े से लोगों का है। स्केप्टिकल माइंड का सवाल है, वह बहुत थोड़े से लोगों के पास है पश्चिम में। हम इस मुल्क में भी स्केप्टिक्स को कैसे पैदा करें, यह नहीं है सवाल। और ध्यान रहे स्केप्टिक्स अगर पैदा करने हों, तो ऐसा नहीं है कि वह स्केप्टिकल होंगे गीता के बाबत, वह कैपिटल के बाबत और स्केप्टिकल होंगे। स्केप्टिकल माइंड एज सच डॉग्मेटिक नहीं हो सकता। तो न तो कम्युनिस्टों को उत्सुकता है स्केप्टिकल माइंड में, न सोशियलिस्टों को उत्सुक्ता है, न कैपिटलिस्टों को उत्सुकता है। आप जो कहते हैं कि बिरला मंदिर बनाता है। आप यह मत समझिए कि बिरला की ही यह उत्सुकता है कि मुल्क में बिलीविंग माइंड रहे, ये कम्युनिस्ट की भी यही उत्सुकता है कि बिलीविंग माइंड रहे। उसकी भी उत्सुकता स्पेक्टीकल माइंड में नहीं है। क्योंकि स्केप्टिकल माइंड कोई सीमाएं नहीं मानता। वह यह नहीं मानत कि हम गीता पह शक करेंगे और जब बाइबिल आएगी तो शक नहीं करेंगे। नॉन-सेक्टेरियन हैं। असल में जिसको कहना चाहिए, नॉन-इजमिक हैं। स्केप्टिकल माइंड जो है उसका कोई इज्म नहीं हो सकता। और वह अगर हमें पैदा करना ही पड़े, उसके बिना पैदा किये कोई रास्ता नहीं, लेकिन इसकी कोई जरूरत नहीं कि पूरा मुल्क स्पेक्टिकल हो। सच बात यह है कि मुल्क में अगर सिर्फ इंटेलिजेंसीया का एक आवांगार स्पेक्टीकल हो जाए, तो मुल्क में स्पेक्टिकलिज्म की धाराएं बहने लगेंगी। वह भी नहीं है।
अभी मैं देखता था कि आपका बंगाल के एक लेखक को, पदम श्री मिली। तो वह सज्जन अभी लिख रहे थे कि गांधी जो हैं वह सूअर के बच्चे थे। गांधी सूअरेर बच्चा। और उसको पदमश्री मिली तो उसने कहा कि वह जरा मेरी तबियत ठीक नहीं थी, मैं बीमार था, रूग्ण था और कंयूनिस्ट मित्र आ गए उन्होंने मुझसे लिखवा लिया। यह अवंगार था। गांधी को सूअर का बच्चा कहना है, तो बराबर कहो, लेकिन फिर पदमश्री तो लेने मत जाओ। और पदमश्री लेने पर क्षमा तो मत मांगो कि वह जरा मुझसे बीमारी में निकल गया था। इस मुल्क के पास एक इंटेलिजेंसिया का अवंगार चाहिए। न तो मजदूर यह कर सकेगा, न पूंजीपति यह कर सकेगा। यह दोनों नहीं कर सकते। यह दोनों की ट्रैडिशनल हैं कि होंगे ही। और जब पूंजीपति नहीं हो सकता, तो मजदूर कैसे नॉन ट्रैडिशनल हो जाएगा। लेकिन इंटलेक्ट का एक ट्रैडिशन जरूर खड़ा किया जा सकता है, वो हवा पैदा करेगा। और सारी क्रांति उसके पीछे आएगी।

प्रश्नः लड़ाई दोनों से करनी होगी, सोशियलिस्ट से भी लड़ाई करनी पड़ेगी, कैपिटलिस्ट से भी लड़ाई करनी होगी।

बिल्कुल दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ेगी।

नये भारत का जन्म
नौवां प्रवचन

चरित्रहीनता के कारण ही गुलामी आई

साधारणतः हम ऐसा ही सोचते हैं कि गुलामी के कारण हमारा चरित्र नष्ट
हो गया है। गुलामी के कारण हमारा व्यक्तित्व नष्ट हुआ लेकिन...

प्रश्नः अभी जरा कठिनाई है कि गुलामी आई तभी से चरित्रहीन रहे, ... ?

इसको, इसको मैं कहना चाहता हूं। इसको ही मैं कहना चाहता हूं। चरित्रहीनता जो है, वह गुलामी के कारण नहीं आई, बल्कि चरित्रहीनता के कारण ही गुलामी आई। और चरित्रहीन हम बने ऐसा कहना मुश्किल है, चरित्रहीन हम थे। बनने का तो मतलब यह होता है कि हम चरित्रवान थे। फिर हम चरित्रहीन बने। तो हमें कारण खोजने पडे. कि हम चरित्रवान कैसे थे? कब थे? और कैसे हम चरित्रहीन बने। मुझे नहीं दिखाई पड़ता कि हम कभी चरित्रवान थे। हमारी चरित्रहीनता बड़ी पुरानी है। और चरित्रहीनता का जो बुनियादी कारण है, वह हमारी संस्कृति में सदा से मौजूद है। उसकी वजह से गुरूवाणी का आनंद बिल्कुल स्वाभाविक था। और आज भी आ जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। और अगर हम जो भी इंतजाम करेंगे चरित्रवान बनने के वे सफल होने वाले नहीं हैं। वे सफल इसलिए नहीं होंगे कि हम फिर वही इंतजाम करेंगे, जो हमने सदा से किया था। जैसे, एक तो चरित्र से हम जो मतलब लेते रहे इस देश में, वो मतलब भी बड़ा भ्रांत है।
हमने चरित्र से एक ऐसा मतलब लिया है सदा से, हम उस व्यक्ति को पूरा चरित्रवान कहते रहे, जो जीवन में दर्शक की भांति खड़ा हो जाए। हमारी जो चरित्र की व्याख्या थी, सदा से, वह यह थी कि श्रेष्ठतम तो आदमी वह है जो जीवन में दर्शक की भांति खड़ा हो जाए। जो जीवन में, जीवन के कर्म में कमिटिड न हो। जो बाहर खड़ा हो जाए जीवन की सारी व्यवस्था से। तो हमने जिन लोगों को अपने देश में सर्वाधिक आदर दिया है, वह वे लोग थे, जो एक अर्थ में जीवन को छोड़कर जीवन से बाहर खड़े हो गए। तो जो कौम जीवन के बाहर हो जाने को चरित्र की श्रेष्ठतम ऊंचाई पर होनी चाहिए थी, उस कौम ने जीवन के भीतर जो लोग हैं उनका चरित्र गिरना शुरू हो जाएगा। जो कौम धर्म को, शील को, ज्ञान को जीवन का छोड़ना बना देगी, त्यागवादी बना देगी, उस कौम के बहुजन जीवन में, चरित्र विलीन हो जाएगा। क्योंकि हमारे मन में कहीं एक बात साफ हो गई, कि जीवित होना ही चरित्रहीनता है। और किसी गहरे पापों का फल है। अगर एक आदमी जन्मा है, तो वह किन्हीं पापों का फल भोग रहा है। और जो आदमी पापों के बाहर हो जाएगा वह, साथ ही जीवन के भी बाहर हो जाता है। उसका आवागमन बंद हो जाता है। तो जीवन और पाप, पर्यायवाची हैं हमारे मन में, और जिसके मन में जीवन और पाप पर्यायवाची हो, तो जीवन के भीतर, तो चरित्रवान और पुंयवान होने का उपाय न रहा। जीवन से भाग कर और पलायन में ही उपाय है। तो भारत का समाज हजारों साल से पलायनवादी और एस्केपिस्ट है। और इस वजह से, इस वजह से हम जीवन के भीतर चरित्र की जरूरत है, वहां चरित्र पैदा नहीं कर पाए हैं। भगौड़ा चरित्र पैदा किया है। यह चरित्र काम का नहीं था। ज्यादा से ज्यादा पूजा के योग्य हो सकता था। यह चिरत्र मंदिर में बैठाने योग्य हो सकता था। न यह युद्ध के मैदान पर किसी काम का था, न बाजार के मैदान पर किसी काम का था, न जीवन के संबंध में किसी काम का था। तो हम एक जीवंत चरित्र पैदा ही नहीं कर पाए कभी। इसलिए ऐसा कहना उचित नहीं है कि चरित्र हमने कभी भी खोया, ऐसा ही कहना ज्यादा उचित है हमने जो संस्कृति विकसित की, उसमें चरित्र आ ही नहीं सका। और अगर हम इसे ऐसा देख सकें, तो हमें फिर पूरा का पूरा पुनर्विचार करना पड़ेगा। और पुनर्विचार करें तो ही हम मूल स्रोत को पा सकें। पृथ्वी के जीवन को हम स्वीकार नहीं किये हैं। इसलिए पृथ्वी के जीवन में भी हम स्वीकृत नहीं हो सके। और हमने पृथ्वी को धन्यभाग से अंगीकार नहीं किया, इसलिए पृथ्वी भी हमें धन्यभाग से अंगीकार नहीं कर सकी। हम उखड़े हुए लोग हैं, जिनकी जड़ें नहीं हैं।

तो एक तो यह ख्याल में लेना जरूरी है कि भारत में अगर कभी भी हम चरित्र पैदा करना चाहें, तो हमें एक तरह का पुनर्वास करना पड़ेगा। हमें फिर से यह पृथ्वी जीने योग्य और यह जीवन आनंद योग्य और इस जीवन को भोगना रस, और इस जीवन के भीतर पुण्य और चरित्र की संभावना को स्वीकार करना पड़ेगा। और हमें तब इसके आस-पास की पूरी माइक्रोलॉजी, इसके आस-पास का पूरा दर्शन, इसके आस-पास की पूरी दृष्टि को नया करना पड़ेगा। जो सभ्यता भी परलोकवादी होंगी, उनका चरित्र पीला हो जाएगा। रक्तहीन हो जाएगा। असल में रक्तहीनता ही चरित्र हो जाएगी। और जहां भी रक्त दिखाई पड़ेगा, वहां खतरा दिखाई पड़ेगा। क्योंकि जहां भी रक्त वहां जीवन के हजार स्पंदन शुरू हो जाएंगे। हम सबसे घबड़ाएंगे। अब हमारी कठिनाई क्या है, हमारी कठिनाई यह है कि हमने रक्तहीन चरित्र पाया। रक्तहीन चरित्र कैसा होगा? सैक्स के भीतर तो चरित्र का उपाय नहीं क्योंकि सैक्स तो चरित्रहीनता है, तो सैक्स से भागा हुआ कर्मचारी भर चरित्रवान होगा, वह रक्तहीन होने वाला है। जबकि जीवन है सैक्स के भीतर और सैक्स के भीतर का एक चरित्र का कोड चाहिए, वह विकसित नहीं होता है, उसके विकसित होने का उपाय नहीं रह जाएगा। उसे तो विकसित हम तब करते हैं, जब हम स्वीकार कर लेते हैं कि यह रहा जीवन। इस घर के भीतर जहां मुझे जीना है, यहां की नैतिकता मैं विकसित नहीं करूंगा, क्योंकि मैं मानता हूं इस घर के भीतर होना ही अनैतिक है। तो इस घर के भीतर तो नैतिकता हो नहीं सकती, मैं इस घर के बाहर हो जाऊं तो नैतिक हो जाऊंगा। यह भारत का जो पुरातन, भागता हुआ मन है, इसको जड़ें देने की जरूरत है। और इस जीवन को जो हमें मिला है, पृथ्वी का शरीर कहा, इसको किसी परलोक के जीवन के लिए समर्पित करने की जरूरत नहीं। अगर परलोक का कोई जीवन है, तो इसके आनंद, और उसके पुंय और उसके चरित्र से ही विकसित होना चाहिए। उसके भागने से नहीं।
तो एक तो, जब भी मैं ऐसा ख्याल में लाता हूं कि चरित्र हमने कभी खोया
तो मुझे बड़ी कठिनाई हो जाती है। मेरे सामने सवाल उठता है कि वो कब था? यानि मुझे कभी दिखाई नहीं पड़ता। वह पूरे ज्ञात इतिहास में कभी दिखाई नहीं पड़ा। दिखाई पड़ने की हम कुछ भ्रांतियों में पड़ जाते हैं, वह इसीलिए पड़ जाते हैं कि कुछ चरित्रवान लोग हमें दिखाई पड़ते हैं। तो कुछ चरित्रवान लोग सदा हुए, वह आज भी हैं। लेकिन कुछ चरित्रवान लोगों से समाज नहीं बनता। समाज का चरित्र चाहिए।
दूसरी बात जो मेरे ख्याल में आती है, वह यह है कि हमने एक चरित्र की और
भी व्यवस्था की है, जो व्यक्तिवाची है। समुदाय का कोई चरित्र नहीं है। और एक-एक व्यक्ति के चरित्रवान होने के लिए हमारा आग्रह है। अगर वह चरित्रवान होता है तो उसको स्वर्ग मिलता है, और चरित्रहीन होता है तो नर्क मिलता है। लेकिन सामूहिक चरित्र भी कोई चीज है, उसकी हमारी धारणा नहीं है। मेरी समझ ऐसी है, चरित्र होता ही सामूहिक है। व्यक्तिगत चरित्र बेमानी बात हैं। अगर जीवन में मैं अकेला हूं तो झूठ और सच बोलने का कोई भी मतलब नहीं। ब्रह्मचारी, गैर-ब्रह्मचारी रहने का भी कोई मतलब नहीं। नैतिकता- अनैतिकता का भी कोई मतलब नहीं। सारा चरित्र वहीं शुरू होता है, जहां से दूसरा मुझे छूता है। तो जिस देश का चरित्र व्यक्तिवाची रहा हो, उस देश में सच्चे और बुरे चरित्र पैदा नहीं होंगे। क्योंकि चरित्र है ही वहां, जहां से दूसरा आता है मेरे जीवन में। वहीं से पता चला शुरू पड़ता है कि मैं क्या हूं? मेरे अंतरसंबंधों में ही, मेरी इंटररिलेशनशिप में ही मैं प्रकट होता हूं, मेरी कसौटियां वहीं हैं। हमने, हमने आत्मीयता को चरित्र कहा, दूसरों से छूट जाने को, हट जाने को, अलग हो जाने को, संबंध तोड़ देने को। एक बेटा मां के अलावा, बेटे का चरित्र पूरा कर ही नहीं सकता। और एक पत्नी के बिना पति का चरित्र पूरा नहीं करता। हमारी सारी चरित्रवानता, हमारे संबंधों की बात है। और हमने भी चरित्र की भावना विकसित की है, वह व्यक्तिवाची है। स्वभावतः वह पीली और रक्तहीन होगी। और संबंधित होने के कारण इस पृथ्वी की। क्योंकि हमने कुछ व्यक्ति तो पैदा कर लिए, वह व्यक्ति ऐसे ही हैं जैसे नट रस्सी पर चलता है। जिंदगी तो रास्ते पर चलेगी, एक नट चल सकता है कि बम्बई की दो बिल्डिंगों के बीच में एक रस्सी बांधके चल ले। तो वह तीर्थंकर हो जाएगा। वह अवतार हो जाएगा। और सारी दुनिया तो रस्सियों पर नहीं चल

सकती। रस्सियां चलने के लिए नहीं है, नाटक के लिए हो सकती हैं। एक आदमी चल लेगा, करोड़ आदमी तो उस मोटे रास्ते पर चलेंगे सीमित। उस रास्ते पर चलने का हमने कोई नियम नहीं बनाया। हमने नियम बनाएं हैं रस्सी पर चलने वाले। और इस रस्ते पर चलने वाले तो कंडेंड हैं ही, इन्हें इसके लिए नियम बनाने की कोई जरूरत नहीं है। जरूरत तो रस्सी पर चलने वाले नट के लिए है। तो कभी करोड़-दो करोड़ में एक आदमी तो नट बन जाता है, और महात्मा बन जाता है, और ध्यानी बन जाता है, वह चल जाता है उससे। हम सब जय, जयकार करके, ताली बजा कर अपने सीमित रोड पर चलने लगते हैं। उस रोड का कोई नियम नहीं है। उस रोड का कोई नियम नहीं है, उस रोड की कोई व्यवस्था नहीं है। व्यवस्था और नियम रस्सी वाले के लिए हैं।
तो दूसरी मेरी समझ है कि हमें समूहवाची चरित्र का, और एक ऐसे चरित्र
का जो भागता न हो, रूकता हो, ठहरता हो, संबंधित होता हो। बल्कि संबंधित होना भी, चरित्रवान होने का एक लक्षण है। हम कितने बड़े पैमाने पे संबंधित होते हैं? यानि मेरी तो समझ है कि जितना चरित्रवान व्यक्ति है, उतना उसके संबंधों का अंतरजाल व्यापक होगा। जितना चरित्रहीन व्यक्ति उसके संबंधों का जाल उतना क्षुद्र और छोटा होगा। असल में जिनसे वह संबंधित भी होगा, चरित्रहीन होने के कारण, उसके और उसके संबंधों के बीच दीवाल होगी, संबंध नहीं हो सकता।
एक चोर का क्या संबंध हो सकता है? एक झूठ बोलने वाले का क्या संबंध हो सकता है? एक दगाबाज का क्या संबंध हो सकता है? एक जेबकतरे का क्या संबंध हो सकता है? असल में अनैतिकता जो है, वो असंबंध है। और हमारी जो नैतिकता है, वो भी असंबंध है। इन दोनों के बीच बड़ा एक समान तत्व है। तो दूसरी बात ये दिखाई पड़ती है कि हम चरित्र की समूहवाची दृष्टि पर विचार करें कि समूह में चरित्र का क्या अर्थ होता है? चूंकि व्यक्तिवादी चरित्र था, इसलिए घूम-फिर के हमारी सारी चरित्र की धारणा सैक्स के आस-पास रूक गई। आज अगर हम कहते हैं कि फलां आदमी चरित्रहीन है, तो ऐसा पता नहीं चलता कि वह समय पर ना आता होगा, ऐसा पता नहीं चलता कि वो किसी को धोखा देता होगा कि दूध में पानी मिलाता होगा। ऐसा पता चलता है कि उसके और किसी स्त्री के बीच में गलत संबंध होंगे। हमारे मुल्क के मन में चरित्र का कुल मतलब यह यौन हो गया। वह कहीं यौन से बंधकर रूक गया। इसलिए एक आदमी समय पर न आए, वह झूठ बोले, कालाबाजारी करे, वह जिंदगी भर आंख नीची करके गुजर जाए, किसी स्त्री की तरफ न देखे तो हमारे लिये चरित्र का है, चरित्रवान है। वह आखिरी माध्यम बन जाता है कि यह आदमी महान चरित्रवान है, क्योंकि स्त्री को नहीं देखता। हम इतने, अगर हम बहुत गौर से देखें तो हमारी सारी चरित्र की धारणाएं यौन केंद्रित हैं। और मजा यह है कि यौन जो है वह अत्यंत व्यक्तिगत बात है। वह बहुत सामूहिक बात नहीं है। ज्यादा से ज्यादा दो व्यक्तियों के बीच का संबंध है। लेकिन जब मैं झूठ बोलता हूं तो यह संबंध अनंतव्यापी है।
मेरे सैक्स का मामला, मेरे और किसी और व्यक्ति के बीच की बात है। यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है, इसका कोई, व्यापक अर्थ नहीं है। यह बहुत ही प्राइवेट और निजी बात है। इस निजी बात को हमने इतना गौरव दिया है और जिसका अनंतव्यापी विस्तार होने वाला है, उस सबको हमने कोई मूल्य नहीं दिया। तो इधर मुझे लगता है, हिन्दुस्तान में चरित्र को ऊपर न उठा पाएंगे, जब तक कि उसे यौन से मुक्त नहीं करते। यानि मेरा मानना है कि यौन की धारणा चरित्र के किसी कोने की एक धारणा है। उसको पूरा चरित्र बना देना है। हिन्दुस्तान में यह तकली.फ हो गई है। हिन्दुस्तान में एक आदमी और कुछ भी कर रहा हो, हमें कोई विचार का कारण नहीं पैदा होता। इतना अगर पक्का हो जाए कि उसका किसी स्त्री के बीच कोई ऐसा संबंध नहीं है, जो समाज को मान्य नहीं है। चरित्र की धारणा, कैसे चरित्र को पैदा करे? यह नहीं हो सकता पैदा। यह जो चरित्र की धारणा है, यह साधु और संयासियों के लिए शायद सार्थक रही हो, साधारण जन के लिए, किसी अर्थ की नहीं है। साधारण जन के लिए हमें चरित्र की व्यापक धारणा खोज लेनी आवश्यक है।
दूसरी बात, जीवन में एक बार, अगर हमने पलायनवादी रूख ले लिया हो, तो हमारी समस्त नीति और समस्त चरित्र किसी गहरे अर्थों में उतार का और भागने

का हो जाता है। और जीवन उनका है जो आक्रामक हैं। आक्रामक सामान्य अर्थ में नहीं, समस्त अर्थों में। जीवन उनका है जो आक्रामक हैं। और एक बार अगर हमने तय कर लिया हो कि आक्रमण नहीं तो सिकुड़ना शुरू हो जाता है। और जीवन की बड़ी तकलीफ यह है कि जहां विकल्प है विकल्प चुनने का, या तो आप आगे बढ़िये, या आप पीछे हटा दिये जाएंगे। बीच में खड़े होने की कोई जगह ही नहीं है। यानि कोई यह सोचता हो, हम आगे न बढ़ेंगे। तो हम वहां तो खड़े ही रहेंगे जहां हम खड़े हैं, जिंदगी में। जिंदगी ऐसे आदमी को वहां नहीं खड़ा रखती, वह उसे पीछे हटा देती है।
एडेंटल ने एक बात लिखी है, कि मनुष्य की भाषा में रेस्ट जो शब्द है, वह जीवन में उसका पर्याय कहीं भी नहीं है। रेस्ट शब्द बिल्कुल झूठा है। विश्राम में कोई भी चीज नहीं है। या तो आगे जा रही है, या पीछे जा रही है। ठहरी हुई कोई भी चीज नहीं है। खड़ी हुई कोई भी चीज नहीं है। या तो वृक्ष जवान हो रहा है, या बूढ़ा होने लगा है। या तो आप फैल रहे हैं या सिकुड़ने लगे हैं। या तो आप जी रहे हैं, या मरने लगे हैं। इन दोनों के बीच में ऐसी कोई जगह नहीं कि एक आदमी कहे कि मैं जी तो रहा हूं लेकिन आगे जीवन में नहीं बढ़ रहा हूं। मैं ठहर गया हूं। तो उसे पता नहीं उसने मरना शुरू कर दिया है। या तो आप पहाड़ पर चढ़ रहे हैं, या नीचे उतर रहे हैं। इस देश के साथ क्या कठिनाई हो गई है, कि जीवन की जो सारी सहज बातें हैं, वह सब हमने निंदित कर दी हैं। जैसे विस्तार, वह हमारे मन में निंदित हो गया। हमने अनेक नामों से उसकी निंदा की है, और संकोच को अनेक नामों से प्रशंसित किया। अब आदमी धन बढ़ा रहा है तो हमने उसकी निंदा की। हमने कहा कि वो निंदनीय है।
तो एक आदमी अगर शक्ति बढ़ा रहा है, एक आदमी अगर सौंदर्य बढ़ा रहा है, एक आदमी अगर योजनाएं बना रहा है विस्तार की, तो हमने सबकी निंदा कर दी। हमने उस आदमी की प्रशंसा की, जो सब तरफ से संकोच कर रहा है। सिकोड़ रहा है अपने को। तो हमारा चरित्र जो है, वह संकोचवान है, विस्तारवान नहीं है। और जीवन जो है, वह विस्तार को मानता है, वह संकोच को नहीं मानता। और जिस दिन हमने यह तय कर लिया हमें सिकुड़ना है, उस दिन हमारे पड़ोसियों ने स्वभावतः तय किया कि फैलने की जगह बढ़ गई है, हमको फैलना है। इसमें कोई कठिनाई नहीं थी। मैंने अपने घर को छोटा करना चाहा, पड़ोसी के घर ने, अपने घर को बड़ा करना चाहा। फिर हम गुलाम हुए, इस गुलामी का सारा जिम्मा पड़ोसी पर नहीं, हमारे संकोच की धारणा पर है। और हमारे सारे महात्मा आज भी, और अनंत काल से हमको संकोच सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैं, सिकुड़ जाओ, उस दम तक सिकुड़ जाओ, जिसके आगे सिकुड़ने की जगह न रह जाए। तो अब हम जगह बना देते हैं, उस जगह में भर जाता है। हिन्दुस्तान में बुद्ध और महावीर के बाद भयंकर संकोच पैदा हुए। हिन्दुस्तान के मानस में, बुद्ध और महावीर के बाद इतना संकोच पैदा हुआ कि उस संकोच की वजह से हिन्दुस्तान ने सब तरह के आक्रमण आमिंंत्रत किये। मेरा मानना यह है कि हमारे सब आक्रमण जो हैं, आमंत्रित हैं। यानि मैं ऐसा कहता हूं कि हम आक्रमण करने नहीं जाते, अगर न करें तो हम बुलाते हैं। इन दो के बीच जगह नहीं है। या तो हम आक्रमण करने जाएंगे, या फिर हम किसी आक्रमण को बुलाएंगे। और बड़े म.जे की बात यह है कि जिसकी आप बात करते हैं, अनुशासन और डिसिप्लिन की, वह संकोचशील कौम में कभी नहीं होता। क्योंकि उसकी जरूरत नहीं होती। वो विस्तारर्थी जाति का लक्षण है, अनुशासन जो है। क्योंकि विस्तार्थ ही अनुशासन जरूरी है। बिन अनुशासन के विस्तार नहीं किया जा सकता। इसलिए बहुत बार ऐसा हो जाता है कि ज्यादा श्रेष्ठ संस्कृति कभी अपने से निकृष्ट संस्कृति के सामने झुक जाती है। अगर वह विस्तारवादी नहीं हो तो। और सदा ऐसा हुआ है। चंगेजी या तैमूर यह हिन्दुस्तान आए हैं, सब आक्रमण चाहे मुगल हो, और चाहे तुर्क हो, चाहे कोई भी हो। जो भी हिन्दुस्तान आए, हिन्दुस्तान की संस्कृति के मुकाबले वह सब पिछड़ी हुई कौमें थी। लेकिन एक मामले में हम मुश्किल में पड़ गए। वह आक्रामक थे और डिसिप्लिन थे। हम अनाक्रामक थे, अनाक्रामक को डिसिप्लिन की कोई जरूरत ही नहीं होती। जब हमें आपसे, मुझे आपसे लड़ने नहीं आना है, तो मैं दंड बैठक नहीं लगाता हूं। जब आप मुझ पर आक्रमण करते हैं, तब मैं लगाना शुरू करता हूं। वह वैसे ही है, जैसे जब आग लग जाए तब हम कुआं खोदने लगते हैं। कुआं जब तक खुदता है, तब तक

मकान जल जाता है। लेकिन आग लगाने जो निकला है, वह बहुत पहले कुएं के इंतजाम रखता है। क्योंकि आप आग लगाने निकलेंगे तो आग से जलने का डर सदा ही है।
तो जिन कौमों ने हिंदुस्तान को लक्ष्य माना, कभी तो ऐसा हुआ कि जैसे
कि तैमूर या चंगे.जी, एकदम अशिक्षित, एकदम बर्बर और जंगली साधन भी उनके पास बहुत नहीं थे, लेकिन फिर भी एक अदम्य अभीप्सा फैल जानी, तो उन्होंने वहां यूनान तक हिला दिया, इधर चीन के कोने तक हिला दिया। पूरा एशिया और पूरा यूरोप। थोड़े से टुकड़ों में, एक-एक ईंट गिरा दी। रोम से लेके और पेचिंग तक। सब, सबको हिला दिया एक दफा। और जो कि बड़े थे उनको। जिनके दिमाग की बड़ी लम्बी पुरानी कहानी है। और जिनको संदेह रह गया था कि हम कभी हिलाए जा सकते हैं, उनको बड़ी छोटी कौमों ने बड़ी खानाबदोश कौमों ने जिनके पास कोई बड़ी सामर्थ्य न थी लेकिन, एक सामर्थ्य विस्तार की अभीप्सा और विस्तार की अभीप्सा के पीछे, अनुशासन आता है। सिर्फ रक्षा की अभीप्सा से अनुशासन पैदा नहीं होता। यानि मेरी अपनी समझ यह है, कि आप सिर्फ अनुशासन का गुणगान करें, तो आप अनुशासन पैदा नहीं करवा सकते। अनुशासन का भी अपना अनुशासन है। अनुशासन का अपना मैथड है आने का। वह आता है तभी जब कोई विस्तारशील भावना काम करती हो। जब हम फैल जाना चाहते हों।
अब जैसे आज अमरीका में, या रूस में, संग्रह का एक अनुशासन पैदा होगा,
जो उन दो मुल्कों के सिवा कहीं भी पैदा नहीं होगा। क्योंकि उन्होंने अंतरिक्ष का विस्तार शुरू किया। अभी तक जो समय का अनुशासन था, वह घंटों में चल सकता था, मिनटों में चल सकता था। अब जो समय का अनुशासन है, वो क्षणों में और सैकंड के भी हजारों हिस्सों में चलाना होगा। क्योंकि अब अंतरिक्ष की जो यात्रा है, उसमें एक सेकेंड भूल-चूक हो जाने से, हमारा यात्री सदा के लिए खो जाएगा। तब अमेरिका एक ऐसी टाइम डिसिप्लिन को उपलब्ध हो जाएगा, जिसके लिए कल्पना ही नहीं हो सकती। असल में बैलगाड़ी में जो चल रहा है, उसके टाइम का अनुशासन अलग होगा। रॉकेट में जो चल रहा है, उसके टाइम का अनुशासन अलग होगा। बैलेगाड़ी में चलने वाली कौम से हम कहें कि तुम समय पर आ जाओ, तो हम पूर्ण बात गलत करते हैं। हम उससे कहें कि तुम ठीक सांझ छह बजे आ जाना, शार्प। इसका कोई मतलब नहीं होता। बैलगाड़ी में तीन होता है समय, सुबह, दोपहर, शाम। और ये छह-छह घंटे की होती है। इनका जो विस्तार है, एक आदमी कहता है हम सांझ आ जाएंगे सूरज ढलने पर। सूरज ढलने पर आ सकता है, सूरज ढलने के घंटेभर पहले आ सकता है, सूरज ढलने के चार घंटे बाद आ सकता है, अभी सांझ ही चलेगी। क्योंकि बैलगाड़ी भरोसे योग्य नहीं है। बैलगाड़ी का अपना समय है। पैदल चलने वाले आदमी के समय में मिनट और घंटे नहीं हो सकते, दिन होंगे। लेकिन अब जब हम अन्तरिक्ष की यात्रा पर निकलेंगे, तो सैकंड के हजारवें हिस्से पर एक्युरेसी चाहिए। अब चांद का विस्तार अमेरिका के मन में टाइम का जो बोध देगा, वह हमारे मन में नहीं हो सकता। लेकिन अमेरिकी सैनिक के मन में, अमेरिकी युवक के मन में, जैसे नई यात्रा पर अभियान पर निकला है, वह सारी दुनिया को पछाड़ देगा, समय के मामले में, उसके बराबर समय की, सच्चाई अब किसी में नहीं रह जाएगी। लेकिन यह आती है एक दूसरी व्यवस्था से, वह फैल रहा है। पृथ्वी को छोड़ कर बाहर जा रहा है, असल बात यह है, कि अब पृथ्वी आक्रमणों के लिए बहुत छोटी पड़ गई है। अब जो आक्रमणवान थे, अब उनके लिए पृथ्वी बहुत छोटी जगह है। अब इसका कोई मतलब नहीं। वह एक ग्लोबल विलेज से ज्यादा नहीं है। एक बड़ा गांव है, जो पूरी जमीन पर फैला हुआ है। अब जो बहुत आकांक्षी हैं, उनके लिए चांद-तारे और मंगल और दूर के तारों पर बस्तियां बसाने...
तो मेरी अपनी समझ यह है कि भारत को विस्तारवादी... अब यह शब्द बड़ा खराब मालूम पड़ता है। और हमारे हजारों साल की निंदा ने उसको, बड़ा गंदा कर दिया है। इसके मानस में विस्तार चाहिए, वो विस्तार बहुत आयामी होगा। धन का भी हो, यश का भी हो, ज्ञान का भी हो, यात्रा का भी हो, अभियान का भी, एडवेंचर का भी हो। वो समस्त दिशाओं में विस्तारवादी हो। तो भारत के युवक की जो पीड़ा है, वह पीड़ा यही है कि युवक होता है विस्तारवादी, और भारत का मन है संकोचवादी। तो भारत का मन है बूढ़े का, और इसलिए भारत के युवक के लिए, भारत के मन के साथ बड़ी बेचैनी हो गई है। वह लड़ाई बाप से नहीं चल रही है भारत के नागरिक की, वह लड़ाई बुढ़ापे से चल रही है। वह लड़ाई संकोच से चल रही है। वह भी

कॉन्शेस नहीं है, उसे भी बहुत साफ नहीं है कि जो हो रहा है, वह क्या हो रहा है। और हम अपने पुराने ही ढांचे में उसको बैठाने की कोशिश में लगे हैं। वह ढांचा उसके काम का नहीं साबित होगा, वह ढांचा तोड़ कर बाहर निकलेगा। लेकिन अगर हमने समझपूर्वक काम लिया, तब वह खुद भी बिना टूटे हुए ढांचे के बाहर हो सकेगा। नहीं तो ढांचा तोड़ने में खुद भी टूट जाएगा। तो एक तो मेरा ख्याल यह है कि भारत के मन में हमें अभीप्साएं जगाने की जरूरत है। कोई हमने ढाई-तीन हजार वर्ष से सपने नहीं देखे हैं। ड्रीम्स देखने हमने बंद कर दिये हैं। कोई बड़ा सपना नहीं देखा। सिवाय मरने के और मोक्ष जाने के, जो कि कोई सपना नहीं है। हमने तीन हजार वर्ष में ऐसा कोई सपना नहीं देखा, जिसको पूरा करने में लिए हमारी शक्तियों के लिए पुकार आए जिसको पूरा करने के लिए हमारा युवक डूबे। जिसको पूरा करने के लिए युवक की जवानी, रस ले। हमने कोई सपना नहीं देखा। हम सब न्यूनकोण हैं।
अगर हम पूरा अपने इतिहास को देखें तो हम बड़े हैरान होंगे, हम अकेली कौम हैं पृथ्वी पर, जिसके पास कोई बड़े उपयोग या बड़े सपने नहीं हैं। जरूरी नहीं है कि वह सपने पूरे होने वाले हों। सच तो यह है कि सपने ऐसे चाहिएं जो कभी पूरे होने वाले न हों, जो हमें रोज बुलाते रहें। और हम रोज बढ़ते रहे हों कभी पूरे भी न हों।
हमने जो सपना देखा है वह है सोसाइडल। हमारा सपना जो है वह मरने का है।
और मरना भी एक साधारण मरने से तृप्त नहीं, हम कहते हैं, कि हमें इस भांति मरना है कि फिर हम जन्म न सकें। फिर हम असल में एब्सोल्यूट डैथ के आकांक्षी हैं। हम साधारण मृत्यु से हम राजी नहीं हैं। या तो पृथ्वी पर ही मरते हों, तो वह साधारण मृत्यु से राजी नहीं कि फिर कहीं जन्म न लें। उनकी आकांक्षा यह है कि मरें तो ऐसे मरें कि फिर जन्म ही न सकें।
तो हम एकदम जन्म विरोधी, जीवन विरोधी हैं। आत्मघाती हमारी चित्त है। निश्चित ही हमें कुछ आत्मघाती लोगों ने प्रभावित किया है। कुछ सुसाइडल माइंड हमारी छाती पर सवार हो गए हैं। और उन्होंने हमारा पूरा का पूरा देश का मानस एक दिशा में मोड़ दिया है। और सच यह है कि देश के पास बहुत मानस नहीं होता। दस-पांच लोग उसे मोड़ते और चलाते हैं। अगर कहीं हमारे ऊपर ऐसे लोग हावी हो जाएं, जो आत्मघाती हैं, और मरने की आकांक्षा रखते हों, तो वह हम सबको मरने की दिशा में मोड़ देंगे।
तो हमें इस देश में अब ऐसे व्यक्ति चाहिए, बहुत ज्यादा नहीं, थोड़े से
ही सही, जो जीवन के आकांक्षी हों। जिनके जीवन की आकांक्षा प्रबल और अदम्य हो। और जो यह कहने का इंकार करते हों, कि हम मरने वाला मोक्ष नहीं चाहते, हम ऐसा मोक्ष चाहते हैं जो परम जीवन हो। हम जन्मों से नहीं डरते। हम ऐसा जन्म चाहते हैं जिसके बाद मौत ही न हो। अगर हम यह जीवन का अभियान की कल्पना और यह सपना भारत को दे सकें, तो हमारे भीतर की सब अवरूद्ध शक्तियां आज जग सकती हैं। वह मर नहीं जाती, सिर्फ अवरूद्ध होती हैं। और कई बार ऐसा होता है कि अगर भीतर शक्तियां अवरूद्ध हो जाएं, तो उनका अवरूद्ध होना बड़ी बेचैनी पैदा करता है। मार्ग मिलता नहीं, और बेचैनी पैदा होती है।
अब जैसे, यह जो, आज जैसा हमें दिखाई पड़ रहा है, यह आजादी भी एक नकारात्मक आजादी है। अब मैं इधर देखता हूं कि अगर विस्तारवादी हमारा मन होता, तो आजादी पोजिटिव होती, विधायक होती। संकोचवादी मन है, इसलिए आजादी नकारात्मक है। हम सिकुड़ गए, पड़ोसी हमारे ऊपर कब्जा कर लिये, अब ज्यादा-से- ज्यादा हमारी आजादी का कुल मतलब इतना है कि कृपा करके हम पर कब्जा छोड़ दें। यह नकारात्मक भाव है आजादी का। यह आजादी का इतना ही भाव है कि कृपा करके हमें गुलाम मत बनाओ। लेकिन जो गुलाम नहीं है, वह जरूरी रूप से आजाद नहीं हो जाता। गुलाम होना एक स्थिति है। आजाद होना बिल्कुल दूसरी स्थिति है। गुलाम न होना सिर्फ बीच की कड़ी है। जिस दिन हम गुलामी से आजादी में यात्रा करते हैं। तो अभी भारत सिर्फ गुलाम नहीं है। आजाद नहीं कहता मैं। और इसलिए हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं, क्योंकि गुलाम न होना, बिल्कुल बेमानी है। या तो हम आजाद बनें और या हम गुलाम हो जाएं। वह दोनों चैन की अवस्थाएं हैं। लेकिन उनकी एक स्थिति है, गुलाम न होना सिर्फ एक सेतु है, जिससे हमें आजादी पर पहुंचना चाहिए। लेकिन आजादी का हम करेंगे क्या?

आजादी प्राप्त करने का एक ही अर्थ हो सकता है कि हमारे पास कोई सपने हों, जिनको हम पूरा करना चाहें, तो आजादी का कोई मतलब है। हमारे पास कोई सपने नहीं हैं, हमारे पास सिर्फ एक भाव था, जो किसी भांति, ऊपर जो बैठा है वह नीचे उतर जाए, वो नीचे उतर गया। अब हम बड़ी दिक्कत में पड़ गए हैं हमारे पास एक काम भी था, वह भी खत्म हो गया है कि किसी को नीचे उतारना था, वह भी नीचे उतर गया है। और हमें बड़ी दिक्कत में छोड़ गया है। और ऐसे असमय में उतर गया है कि जब हमें आशा भी नहीं थी कि वह उतरेगा। हम बड़े भरोसे में जी रहे थे कि अभी नहीं उतरेगा। अपनी आजादी की लड़ाई हम जारी रखेंगे, वह अचानक से उतर आया। अब हमारे पास कोई लड़ाई भी नहीं है। कोई काम भी नहीं है, अब हम बड़ी बेचैनी में पड़ गए हैं। अब हमें ऐसा लगता है, अब हम क्या करें?
भारत के काम में बड़े से बड़ा मनुष्य में सवाल है कि क्या करें? वॉ टु डू? और जो भी करना है, वह सदा विस्तारवादी होगा। उसमें किसी तरह का विस्तार चाहिए। तो हम दरिद्रता को वरण किये बैठे हैं, हम दरिद्र को कहते हैं कि तुम नारायण हो, दरिद्र नारायण हो, हम तुम्हारी पूजा करेंगे। हम जो आदमी सड़क पर नंगा खड़ा हो जाए, उसके पैर छूएंगे। जो आदमी ढंग के कपड़े पहने हुए है वह हमको पापी मालूम पड़ेगा। यह भोगी है, कपड़े ठीक से पहने हुए है। आराम से बैठा है। कष्ट झेले, कांटे बिदा के जमीन पर लेट जाए तो महात्मा हो जाए।
यह जो हमारे चित्त की अवस्था है कि हम सारे मुल्क को जब तक कांटे पर न लिटा दें, तब तक हमारा मन भर नहीं सकता। जब तक सारा मुल्क नंगा न हो जाए, और जब तक सारा मुल्क भीख न मांगे, तब तक हम तृप्त नहीं होंगे, कि वह हमारा अंतिम लक्ष्य मालूम होता है। यह हो नहीं सकता क्योंकि मनुष्य की सहज व्यवस्था के प्रतिकूल है। कुछ लोग हैं, जिनको खुद को कष्ट देने में भी रस आता है। वह इसको बड़े मजे में, आनंद में आ जाएंगे। वह कांटे बिछा के लेट जाएंगे। वह सिर के बल खड़े होकर शीर्षासन करने लगेंगे। हम भी बड़े प्रसन्न होंगे और हम कहेंगे कोई बात नहीं, हमसे नहीं हो सकता, लेकिन तुम कर रहे हो तो कम-से-कम तुम एक आदर्श तो हो ही। हमें यह सब आदर्श गिराने पड़ेंगे। और जिंदगी की जो सहजता है, इधर मैं इतना हैरान होता हूं, कि कई बार ऐसी कठिनाई हो जाती है, अगर हजारों साल तक हमने कोई सहज वाक्य इंकार किया हो, तो हम भूल ही जाते हैं कि वह सहज है। जिंदगी की जो सहजता है, वह हमें अंगीकार कर लेनी पड़ेगी। और हमारा युवक तत्काल अनुशासन में आ जाएगा। हम सहज जीवन को स्वीकार कर लेंगे।
अगर मुल्क सपने पैदा कर सके तो, युवक अभी प्रतिबद्ध हो जाए, उन सपनों
के लिए कमेंट कर सके उन्हें कि हम अपने को लगा सकते हैं। लेकिन कोई सपना नहीं है। और हम जो बातें करते हैं वह फिजूल और बचकानी हैं, जिसको हम चाहते हैं कि कोई आके कमिट कर ले अपने को। हम जो बातें करते हैं, वह बहुत बचकानी हैं। और हम जो आदर्श सामने रखते हैं वह ऐसे हैं कि वो बेमानी है। हम कहीं कहते हैं कि पंचवर्षीय योजना पूरी करो। जो भी कोई बड़ा सपना नहीं है। युवक के पास बड़े सपने देखने की आकांक्षा है। हम कहीं कहते हैं कि पंचवर्षीय योजना पूरी करो। उसके पास बड़ी कामनाएं हैं कि उसका मन भरे। हम उसको ऐसी छोटी कामनाएं बताते हैं कि वह उनको छोड़ ही देता है, कि यह किसी मतलब की ही नहीं हैं। अभी मैं देखता हूं, कि रूस में पिछले स्टैलिन के मरने के बाद, पूरी शिथिलता आ गई है। और रूस का लड़का इनकार करता है, वह कहता है पंचवर्षीय योजना, पंचवर्षीय योजना इसमें क्या है? अब कब तक हम यही बकवास में पड़े रहें। कुछ और करने को है? प्रावदा के सारे एडिटोरियल पिछले दस वर्षों से एक ही बात समझा रहे हैं कि काम करो, काम करो। ज्यादा अन्न पैदा करो, ये ऐडिटोरियल खबर दे रहे हैं कि कुछ मामला भीतर गड़बड़ हो गया है। गड़बड़ यह हो गया है कि या तो चाबुक के बल पर उनसे काम ले लिया गया है, स्टैलिन के वक्त में। उसके पीछे बंदूक लगी थी। खुद स्टेलिन उन्नीस सौ अट्टाइस के बाद कभी किसी गांव में नहीं गया। लेकिन उसके खेतों और ट्रैक्टरों के साथ फोटो और बड़े-बड़े पोस्टर लगाए गए। वह कभी नहीं गया, उन्नीस सौ अट्टाइस के बाद। और लड़के को बस यह ही लगाए हुए हैं कि यह करो, यह करो, वह लड़का ऊब गया है। सारा

साहित्य रूस का बॉर्डन पैदा करने वाला हो गया है। खेती और अनाज, और ट्रैक्टर और बस वही, वही कोई बड़ा सपना चाहिए युवक को।
हमारे साथ भी वही मुश्किल है। हमारे पास कोड़ा भी नहीं है। उनके पास कोड़ा भी था। अगर स्टैलिन काम न हो तो आदमी को मिटा भी सकता था। हम वह भी नहीं कर सकते कि हम आदमी को मरने को मजबूर कर दें, फिर उसे कुछ भी करने को मजबूर होना पड़े। वह भी हम नहीं कर सकते। हम ऐसा सपना भी नहीं देख सकते कि वह स्वेच्छा से मरने की आकांक्षा से भर जाए। और अपने को जुझा दे और कहीं लगा दे। वह भी हम नहीं कर सकते। भीतर से धक्का भी नहीं दे सकते। तो हमें एक जिझ पैदा होगी, जिसमें हम खड़े हो गए हैं। इस जिझ को बहुत साधारण उपायों से नहीं तोड़ा जा सकता। इस जिझ को तोड़ने के लिए हमें पूरी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, उनमें कुछ बुनियादी मुद्दे तोड़ने पड़ेंगे। और हमें भारत के लिए नये इमेज देना पड़ेंगी, नई प्रतिमाएं देना पड़ेंगी। बुद्ध और महावीर की प्रतिमाएं इस मामले में काम नहीं दे सकती। शिवाजी और प्रताप भी इस मामले में अति साधारण हैं। इस मामले में उनको भी हम बहुत ज्यादा देर तक खींच के काम में नहीं ला सकते। क्योंकि जिन मुददों से वह लड़.े थे, वह मुद्दे बहुत ही बचकाने और साधारण थे। आज मामला बहुत दूसरा है। और ऐसे मामले के लिए, भारत की पूरी संस्कृति को सोचकर हमें, फिर से निर्धारित करने का ख्याल लेना पड़ेगा। और जहां-जहां देख कर तुम्हें बुनियादी भूल हो, और जिनकी वजह से सारे अवरोध पैदा हुए, वो हमें काट के फेंक देनी पड़ेंगी। अनुशासन लाना है तो भारत के चित्त को, विस्तार की कामना देनी पड़ेगी। उसके साथ ही अनुशासन अपने आप शुरू हो जाएगा। अनुशासन लाना हो तो, बड़ा सपना, जो युवक के मन को भा जाए। और वह उसमें डूब सके। और लग सके। अब हम देखते हैं कि लड़के को आप भेज देते हैं पढ़ने, बाप कहते हैं, ठीक कहते हैं कि वह अपने बाप के प्रति जिम्मेदारी नहीं निभा रहा, बाप मेहनत करके उसको पढ़ा रहा है, कॉन्ट्रेक्ट वो पूरा नहीं कर रहा। लेकिन मजा यह है कि उस लड़के को दिखाई पड़ रहा है कि वह एम ए के बाद क्लर्क ही होने वाला है। आप यह नहीं देख रहे, कि उसको आगे है क्या? भविष्य क्या है उसके पास? ज्यादा मौके तो इसी बात के हैं कि एम ए फर्स्ट क्लास में लेकर ही वह दतरों के सामने क्यू लगाकर खड़ा रहे और नौकरी न मिले। आगे पूरा क्या होने वाला है, जिसके लिये युनिवर्सिटी में मेहनत करे? मैं युनिवर्सिटी में देख कर इस बात से हैरान हुआ कि कितने लड़के हैं, जो डरते हैं कि अगर हमारी शिक्षा विश्वविद्यालय की पूरी हो गई तो फिर? इसका भय ही मैंने अनुभव किया कि इससे भी भयभीत है कि लड़के का विस्तार एम.ए. पूरा हुए जा रहा है, और अगले साल से क्यू में खड़े होना है, किसी एंप्लायमेंट ऑफिस के सामने। और क्लर्की के सिवाय कुछ भी नहीं है। वह मिले तो मुश्किल है। सौ रूपये की नौकरी मिलना मुश्किल है। यह लड़का डर रहा है, इसकी पूरे मन से यह घबड़ाहट है कि दो साल और युनिवर्सिटी में किसी तरह गुजर जाएं तो दो साल तो मैं और बाहर रहा। यानि आप जो देख रहे हैं कि पचास प्रतिशत बच्चे फेल हो रहे हैं, इस फेल होने में भविष्य की कमी है। भविष्य कोई है नहीं। पिछला जो आज से चालीस साल पहले लड़का मेहनत कर रहा था विश्वविद्यालय में उसका भविष्य था। अगर वह मिडिल भी पास हो जाता था, तो तहसीलदार हो जाता था। आज से तीस साल पहले, चालीस साल पहले, पचास साल पहले, मिडिल जो था, वह बड़ी भारी ची.ज था। पहला लड़का जो इलाहाबाद में मैट्रिक हुआ, उसका हाथी पर जुलूस निकाला गया। और सारे इलाहाबादियों ने फूल बरसाए उस पर कि एक लड़का मैट्रिक पास हो गया है। उस लड़के को जो मैट्रिक पास होने में मजा आया होगा, वह आज किसी लड़के को पीएच डी होने पर भी नहीं आता। गधे पर भी नहीं बिठालेंगे, हाथी तो बहुत दूर की बात है। बल्कि पीएच डी होकर हम उससे पूछेंगे कि किस मतलब के हो। आगे भविष्य चाहिए।
असल में भविष्य ही खींचता है, और ताकत देता है आने की। कल कुछ होना चाहिए जो पूरा होने वाला है। और उसको पूरा होने के लिए तैयारी आती है। कल कुछ होने वाला नहीं, तैयारी किसलिए करना है? और यह तैयारी कल जाकर एकदम से बेकार हो जाने वाली है कि बेकार हो जाएगी, यह सब तैयारी करके पता चलेगा कि कुछ नहीं हुआ। यानि तैयारी ऐसी चल रही है लड़के की आज कि उसकी शादी विवाह का भरोसा दिला रहे हैं और वह जान रहा है कि सब हो जाएगा। घोड़ा बन जाएगा, बैंड-

108

बाजे बज जाएंगे, और दुल्हन नहीं आएगी वक्त पर। और हम क्यू में रह जाने वाले हैं, कुछ आगे हो जाने वाला है नहीं। तो वह घर में सुस्त घूम रहा है, उसके चेहरे पर खुशी नहीं, हम उससे कहते हैं कि जवान हो, तुम्हारे विवाह का वक्त है खुश नजर आओ। और वह कहता है, हम जानते हैं कि घोड़ा तो बन जाएगा, और बैंड-बाजे बज जाएंगे, दुल्हन तो आने वाली नहीं है। तो वह डर रहा है, और घर के भीतर घूम रहा है कि बाहर मुझे मत निकालो, बैंड-बाजे बज रहे हैं, वह मुझे देख लेंगे।

नये भारत का जन्म
दसवां प्रवचन

अध्यात्म बीमारी बन गया

भारत के दुर्भाग्य की कहानी तो लंबी है। लेकिन इस कहानी के बुनियादी सूत्र बहुत थोड़े, बहुत पंक्चुअल हैं। तीन सूत्रों पर मैं आपसे बात करना चाहूंगा। और एक छोटी सी कहानी से शुरू करूंगा।
सुना है मैंने एक ज्योतिषी, रात्रि के अंधेरे में, आकाश के तारों का अध्ययन करता हुआ, किसी गांव के पास से गुजरता था। आकाश को देख रहा था, इसलिए स्वभावतः जमीन को देखने की सुविधा न मिली। आकाश के तारों पर नजर थी, इसलिए पैर कहां मुड़ गए, यह पता न चला, और वह एक सूखे कुएं में गिर पड़ा। चिल्लाया बहुत, पास से किसी किसान की झोपड़ी से लोगों ने निकल कर उसे बचाया। किसान भी घर पर न था, उसकी बूढ़ी मां ही घर पर थी। किसी तरह उस ज्योतिषी को बाहर निकाला जा सका था। और जब वह बाहर निकल आया तो उसने स्वभावतः धन्यवाद दिया, और उस बूढ़ी औरत को कहा कि मां, अगर कभी ज्योतिष के संबंध में कुछ समझना हो, तो इस समय पृथ्वी पर तारों को मुझसे ज्यादा जानने वाला कोई भी नहीं, तुम आ जाना। उस बूढ़ी स्त्री ने कहाः क्षमा करो मुझे। जिसे अभी जमीन के गड्ढों का पता नहीं, उसके आकाश के तारों के ज्ञान का भरोसा नहीं हो सकता।
भारत के दुर्भाग्य का पहला सूत्र यह है कि हम बहुत लंबे समय से आकाश
की तरफ देखने वाले लोग हैं और जमीन को देखना भूल गए। हमारी आंखे मोक्ष पर टिकी हैं, स्वर्ग पर टिकी हैं। पृथ्वी पर नहीं। इसलिए पृथ्वी पर कैसे जिएं यह हम न खोज पाए। हम ज्यादा से ज्यादा मरने के संबंध में विचार कर पाए हैं, कि कैसे मरें। कैसे जिएं? इसका हमें कोई भी पता नहीं चल पाया। और क्योंकि हम मृत्यु के बाद क्या होगा? इस संबंध में चिंतन करते रहे, इसलिए मृत्यु के पहले क्या हो, इस संबंध में हमारे विचार ने कोई गति नहीं की। क्योंकि हम आत्मा की बातें करते रहे, इसलिए शरीर को गंवा बैठे हैं। और चूंकि हम धर्म की बात करते रहे हैं, इसलिए धन को नहीं खोज पाए। और चूंकि हमने सिवाय रहस्य के, सपनों के, कल्पनाओं के, अपने मन में किसी और को बसेरा नहीं दिया, इसलिए विज्ञान को जन्म हम नहीं दे पाए।
अवैज्ञानिक, दीन, दरिद्र, दासता से भरा हुआ ये हमारा लंबा इतिहास, इस बात की खबर देता है कि आकाश की तरफ देखा जा सकता है कभी-कभी, लेकिन जो चौबीस घंटे आकाश की तरफ देखने लगते हैं, जमीन पर उनके रास्ते खो जाते हैं। कभी- कभी उचित है कि हम आकाश की तरफ देखें, लेकिन वह भी जमीन को सुंदर बनाने के लिए। कभी-कभी उचित है कि हम फूलों की तारीफ करें, लेकिन जड़ों को न भूल जाएं। और जो पौधा अपने फूलों की ही मस्ती में मस्त रहने लगे और जड़ों को भूल जाए, उस पौधे की जड़ें तो बचेंगी नहीं, फूल भी ज्यादा दिन नहीं बच सकते। क्योंकि फूलों के प्राण इन जड़ों में होते हैं, जो जमीन में अदृश्य हैं। और कैसा आश्चर्य है कि सुंदर फूलों के प्राण उन जड़ों में होते हैं, जो कुरूप हैं। कुरूप और अंधेरे में छिपी जड़ों में पौधों के प्राण हैं। फूल तो केवल ऊपर की सजावट है। और फूल बिना जड़ों के नहीं जी सकते। जड़ें जरूर बिना फूलों के भी जीना चाहें तो जी सकती हैं। जड़ों को भूल गए हैं, और जीवन की जो जड़ें थी, हमने उन सबको इंकार कर दिया है। फूलों के पक्ष में जड़ों को इंकार कर दिया है। बिना इस बात को समझे कि कोई फूल जड़ों के सहारे के बिना जीवित नहीं रह सकता।
हमने मंदिर के ऊपर के शिखर बचा लिए, स्वर्ण-शिखर। लेकिन मंदिर की नींव
भी भरनी पड़ती है। नींव के पत्थर बचाना हम भूल गए। स्वर्ण-शिखर हमारे हाथों में रह गए, और मंदिर गिर गया। क्योंकि ये तो हो सकता है, कि मंदिर पर स्वर्ण-शिखर न हो, लेकिन यह नहीं हो सकता कि अकेले स्वर्ण शिखर हो, और मंदिर की नींव न हो। यह जीवन के बुनियादी सत्यों में से एक है कि जो निम्न है, वह श्रेष्ठ के बिना हो सकता है। लेकिन जो श्रेष्ठ है, वह निम्न के बिना नहीं हो सकता। आदमी का पेट भूखा हो तो कविता को कोई जन्म नहीं मिलता है। पेट भरा हुआ हो सकता है, कविता को जन्म मिले, यह जरूरी नहीं। लेकिन पेट अगर

खाली है तो कविता को जन्म नहीं मिलता। बिना पेट के कविता का कोई अस्तित्व नहीं है। यद्यपि कविता के बिना पेट भली-भांति अस्तित्व में रह सकता है। जीसस का एक वचन है, जिसमें उन्होंने कहा है "मैन कैन नॉट लिव बाय ब्रेड अलोन" आदमी अकेली रोटी के सहारे नहीं जी सकता है। यह बात अधूरी है। और इस अधूरी बात में खतरा है। भारत इसी खतरे को पांच हजार साल से झेल रहा है। मनुष्य अकेली रोटी ने नहीं जी सकता, यह आधा सत्य है। और ध्यान रहे आधे सत्य असत्यों से भी खतरनाक सिद्ध होते हैं। क्योंकि असत्य बहुत दिन तक टिक नहीं सकते। लेकिन आधे सत्य बहुत दिनों तक टिक सकते हैं। असत्य बहुत दिनों तक धोखा नहीं दे सकते, वह दिखाई पड़ जाते हैं कि असत्य हैं। लेकिन अर्द्धसत्य धोखा दे सकते हैं, क्योंकि असत्य भीतर होता है और अर्द्ध सत्य उनके ऊपर वस्त्रों का आवरण बन जाता है और धोखा लंबा हो सकता है। इसलिए उचित है कि कोई असत्यों में जी ले, क्योंकि असत्यों में जीने वाला किसी न किसी दिन असत्यों के ऊपर उठ जाएगा। लेकिन जिन्होंने आधे सत्यों में जीना शुरू कर दिया है, उनका भगवान के अतिरिक्त कोई सहारा नहीं है। और ध्यान रहे भगवान का कोई सहारा होता नहीं है। यह सिर्फ बेसहारा होने में, सांत्वना है कि भगवान का सहारा है। यह बेसहारा होने की खबर है।
जीसस का यह वचन कि आदमी अकेली रोटी से नहीं जी सकता, सच है आधा। आधा वचन और भी याद कर लेना चाहिए कि आदमी बिना रोटी के बिल्कुल नहीं जी सकता। और यह तो हो भी सकता है कि अकेली रोटी से जी जाए, लेकिन यह बिल्कुल असंभव है कि बिना रोटी के जी जाए।
इस देश के अध्यात्म ने, इस देश के जीवन को सुगंध नहीं दी, दुर्गंध दे दी। क्योंकि अध्यात्म अधूरा था। वह आकाश का था, फूलों का था, उसमें जड़ों और बुनियाद की कोई जगह न थी। हमने भौतिकवाद के विपरीत आध्यात्मिक होने की बड़ी लंबी चेष्टा की है। हमने शरीर के खिलाफ सिर्फ आत्मा होने की लंबी चेष्टा की है। हमने भूखे पेट कविता रचने का प्रयास किया है। बड़ा एडवेंचर था। बड़ा दुस्साहसपूर्ण काम था, लेकिन बुद्धिमत्तापूर्वक वो करने योग्य नहीं था। वह नहीं हो सकता था। वह नहीं हुआ। लेकिन जब कोई कौम हजारों साल तक एक सपने में जीती है तो उसे सपने को छोड़ना मुश्किल हो जाता है। और जब हजारों साल तक हम किसी सपने को अपने खून में बसाते हैं, हड्डी और मांस-मज्जा में प्रवेश कर देते हैं। तो धीरे-धीरे हम यह भूल ही जाते हैं, कि वह सपना है। वह सच ही मालूम होने लगता है। और हजारों साल तक कोई अगर सपनों के साथ रहे, तो उस सपने को छोड़ना कठिन हो जाता है। सपना तो दूर, अगर हजारों साल तक किसी को हम जंजीरों में रखें, तो जंजीरें आभूषण बन जाती हैं। और हजारों साल तब अगर कोई जंजीरों में रहे, तो वह जंजीरों पर सोने-चांदी की पॉलिश कर लेता है। फूल-बूटे निकाल लेता है, चित्र बना लेता है और उनको आभूषण समझने लगता है। असल में हजारों साल तक जंजीरों में रहने के लिए जरूरी है कि जंजीरें जंजीरें न मालूम पड़ें, आभूषण मालूम पड़ने लगें।
मैंने सुना है, फ्रान्स की क्रांति के समय, वहां का जो सबसे खतरनाक कारागृह था, जहां आजीवन कैदी रखे जाते थे, क्रांतिकारियों ने उसे तोड़ दिया। उस कारागृह में ऐसे लोग बंदी थे, कोई बीस वर्ष से, कोई तीस वर्ष से, कोई पचास वर्ष से भी उस कारागृह की जंजीरें और बेड़ियां, सदा के लिए लगती थी। फिर जब आदमी मरता था, तो उसके हाथ तोड़ कर ही, खोली जाती थी। क्योंकि बीच में खुलने का कोई सवाल नहीं था, वह सिर्फ आजन्म कैदियों के लिए था। क्रांतिकारियों ने जाकर जेल की दीवारें तोड़ दीं, दरवाजे. तोड़ दिये, कारागृह में बंद कैदियों को बाहर निकाला। और जबरजस्ती उनकी जंजीरें तोड़ दीं। कई कैदियों ने इंकार भी किया। उन कैदियों ने कहा कि हम अपनी कोठरियों के बाहर हम नहीं आ सकते हैं। हम अंधेरे के आदि हो गए हैं। रोशनी में आंखों को तकली.फ होती है। लेकिन क्रांतिकारी नहीं माने। उन्होंने उनकी जंजीरें भी तोड़ दी, और उन्हें जेल खाने से बाहर कर दिया। एक चमत्कार घटा, लेकिन यह चमत्कार दुनिया को रहा होगा, हम समझ सकते हैं कि यह चमत्कार नहीं, बड़ा स्वाभाविक है। सांझ होते-होते आधे कैदी वापस लौट आए। और उन्होंने क्रांतिकारियों से कहा हम बाहर जाने से इंकार करते हैं। और बिना जंजीरों के हम जी नहीं सकते, क्योंकि वह हमारे शरीर के हिस्से हो गई हैं। अब जब हम

चलते हैं तो हमें ऐसा लगता है हम नंगे-नंगे हैं, कुछ खाली-खाली है। हमारी जंजीरें हमें वापस लौटा दो। स्वाभाविक है, जिनके हाथ-पैरों में, सेरों व.जन की जंजीरे पड़ी रही हों, वर्षों तक जो उनके साथ सोए हों, उठे हों, जागे हों, बैठे हों, वह जंजीरें अब जंजीरें नहीं, उनके शरीर के हिस्से हो गई हैं। उनके बिना अब उन्हें नींद न आ सकेगी। ऐसा ही हमारे देश के साथ हुआ है। हमारा अधूरा अध्यात्म, सच है, लेकिन आधा सच। और हमने भौतिकवाद मैटेरियलिज्म को इंकार पर उसे खड़ा किया है। भारत के जिंदगी के अधिकतम दुर्भाग्य का कारण, भारत का भौतिकवाद को इंकार करना है। क्योंकि जैसे ही हम भौतिकवाद को इंकार करते हैं, पूरा जीवन अस्वीकृत हो जाता है। क्योंकि जीवन के सारे आधार भौतिक हैं। शरीर भी भौतिक है, मस्तिष्क भी भौतिक है, .जमीन भी भौतिक है, वृक्ष, पाधे, पशु-पक्षी यह सारा जीवन भौतिक है। इस भौतिक जीवन में अध्यात्म के फूल लगते हैं जरूर, लेकिन यह भौतिक जीवन जब सम्पन्न हो, समृद्ध हो, यह भौतिक जीवन जब संतृप्त हो, जब यह भौतिक जीवन पूरी तरह भरा-पूरा हो, ओवरलोइंग हो, असल में अध्यात्म भौतिक जीवन की ओवरलोइंग है। ऊपर से बह जाना है। मेरी दृष्टि मे अध्यात्म आखिरी लग्जरी है। आखिरी विलास है जो मनुष्य जाति उपलब्ध कर सकती है। लेकिन जिन्होंने भौतिक जीवन को इंकार कर दिया हो, एक आदमी अपने शरीर को इंकार करे, भोजन बंद कर दे, पानी देना बंद कर दे, श्वांस लेना बंद कर दे, क्योंकि यह सब भौतिक हैं। कितनी देर उसकी आत्मा टिकेगी? और अगर उसकी आत्मा खो जाए, तो कौन जिम्मेदार होगा? आत्मा को बचाने की कोशिश में हमने आत्मा भी खो दी है। आत्मा की चर्चा हम करते रहे हैं, हमसे आत्महीन लोग खोजने कठिन हैं। क्योंकि एक हजार साल तक अगर लोग गुलाम रह सकते हों तो उनके भीतर आत्मा है, यह मानने में शक होता है। और अगर तीन हजार साल तक दीन, दरिद्र रह सकते हों तो यह मानने में थोड़ी सी हिम्मत जुटानी पड़ती है, कि वह जीवित हैं। अध्यात्म हमने बीमारी की तरह पकड़ लिया। अध्यात्म बीमारी बन जाता है, अगर भौतिकता के विपरीत हो। तो मैं यह कहना चाहता हूं कि अगर भारत अपने दुर्भाग्य की कहानी बदलना चाहता हो तो उसे एक मैटेरियलिस्ट स्प्रीचुअलिज्म एक भौतिकवादी अध्यात्म विकसित करना अनिवार्य हो गया है। हमने एक एंटी मैटेरियलिस्ट स्प्रीचुअलिज्म में अपने दिन गुजारे हैं, हमने सब इंकार किया, जो भी जिंदगी में था, सबको कंडेन्ट किया, निंदा की, और धीरे-धीरे हम खुद निंदित हो गए। और इस पृथ्वी पर हम सम्मान योग्य नहीं रह गए। फिर हमने सम्मान की नई तरकीबें निकाली। और हम अपने को ही, अपनी प्रशंसा में दिन बिताने लगे। शायद पृथ्वी पर हमसे ज्यादा आत्मप्रशंसा करने वाली कोई भी कौम नहीं है। यह सूचक है। यह इस बात की खबर है कि अब हमें और कोई प्रशंसा करने वाला नहीं मिलता, अब हमें अपनी प्रशंसा खुद ही करनी पड़ती है।
शंकराचार्य मुझे पीछे मिले। वह जगतगुरू हैं। मैंने उनसे पूछा, कि जगत
से पूछ कर आप गुरू हैं? जगत ने कोई स्वीकृति दी है आपके गुरू होने की? बहुत नाराज हो गए। नाराज होना स्वाभाविक है। क्योंकि जगत से पूछें हम जगतगुरू हैं। और एक आदमी हो तो हम समझ सकते हैं दिमाग खराब है। पूरा मुल्क जगतगुरू है। हम सबको यह ख्याल है कि हम सारी दुनिया के गुरू हैं। दुनिया से बिना पूछे। और दुनिया हमारे इन दावों पे हंसती है या, शायद अब हंसने योग्य भी नहीं समझती। वह अपेक्षा से गुजर जाती है। कोई फिक्र भी नहीं करता कि हम क्या दावे कर रहे हैं? क्योंकि दावे उनके फिक्र किये जा सकते हैं, जिनके दावों के पीछे बल हो। हमारे निर्बल के दावे हैं। जिनके पीछे कोई बल नहीं है। कारण क्या है? वजह क्या है?
पहला आपसे कारण कहना चाहता हूं और वह यह है, कि जिंदगी अध्यात्म और भौतिकता का समन्वय है। जिंदगी में ये दो चीजें अलग नहीं हैं। आदमी में आत्मा और शरीर ऐसे दो अस्तित्व नहीं हैं। आदमी आत्मा और शरीर का संयुक्त जोड़ है। शायद यह संयुक्त जोड़ कहना भी ठीक नहीं है। यह हमारी पुरानी भाषा की कमजोरी है। इसलिए संयुक्त जोड़ कहना पड़ता है।.ज्यादा बेहतर होगा यह कहना, कि शरीर आत्मा का दिखाई पड़ने वाला हिस्सा है। और आत्मा शरीर का न दिखाई पड़ने वाला हिस्सा है। उचित होगा कहना कि आत्मा का जो हिस्सा आंखों

और हाथों की पकड़ में आ जाता है, वह शरीर है। और आत्मा का जो हिस्सा हाथों और आंखों की पकड़ में नहीं आता, वह आत्मा है। आत्मा अदृश्य शरीर है, शरीर दृश्य आत्मा है। यह दो चीजें नहीं हैं, ऐसा नहीं है कि कहीं शरीर समाप्त होता है और आत्मा शुरू होती है। और ऐसा भी नहीं है कि आत्मा अलग-थलग शरीर से टूटकर जीती है। यह शरीर और आत्मा एक ही तरंग के दो रूप हैं। यह शरीर और आत्मा एक ही चीज की सघनताओं के भेद हैं। बहुत जो सघन कंडेन्स है, वो शरीर की तरह मालूम पड़ रहा है, बहुत विरल और तरल, और वायवीय जो है, वो आत्मा की तरह मालूम पड़ रहा है। लेकिन हम एक कठिनाई में जी रहे हैं, एक द्वंद्व में। हमने शरीर को अलग, और आत्मा को अलग मान रखा है। उस अलग मानने की वजह से स्वभावतः एक संघर्ष, एक आंतरिक द्वंद्व पैदा हो गया है। शरीर से लड़ों और आत्माओं को बचाओ। तो हमने शरीर से लड़ने की बहुत सी तरकीबें विकसित की हैं। हमारा पूरा धर्म, हमारी पूरी तपश्चर्या, हमारी साधना की सारी व्यवस्थाएं शरीर से लड़ने की व्यवस्थाएं हैं। और जिसमें जीना है, उससे जो लड़ेगा, उसका जीवन अगर जहर से भर जाए, तो आश्चर्य नहीं है।
जिस घर में मुझे रहना है, उस घर की दीवालों से मैं लड़ूं, तो घर को नुकसान कम, मुझे ही नुकसान ज्यादा पहुंचने वाला है। और जिस जगह मुझे रहना है, उसे मैं इंकार करूं, दुश्मनी करूं, शत्रुता करूं, तो जीना कठिन हो जाएगा, जीना एक भार और एक बोझ बन जाएगा। इसलिए भारत का मन निरंतर एक बात सोच रहा है कि जीवन से छुटकारा कैसे हो? जिस जीवन में हमें रहना है, हम उसे छुटकारे की भाषा में सोचते हैं, जिस जीवन में हमें आनंद और शांति और सुख खोजना है, उससे हम भागने की, मुक्त होने की भाषा में विचार कर रहे हैं, तो फिर कठिन हो जाएगा। हम जीवन, दुर्व्यवहार कर रहे हैं। हम जीवन के साथ वैसा ही व्यवहार कर रहे हैं, जैसा रेलवे स्टेशन पर, वेटिंग रूम के साथ यात्री करते हैं।
वे यात्री बैठे हैं अपनी ट्रेन की प्रतीक्षा में। उन्हें उस वेटिंग रूम से कोई प्रयोजन नहीं है। वह वहां छिलके भी डालते हैं, पान भी थूकते हैं, गंदगी भी फेंकते हैं। और अगर किसी यात्री से कहो, यह क्या कर रहे हो? तो वह कहता है, यह हमारे बाप का घर है? यह किसी का भी नहीं है, यह सिर्फ विश्रामालय है, यहां थोड़ी देर रूकना है, हमारी ट्रेन आएगी, हम चले जाएंगे। उसके पहले जो रूके थे, उन्होंने भी उसके साथ यही व्यवहार किया था। उनके बाद जो आएंगे, वह भी यही व्यवहार करेंगे। अगर जिंदगी गंदगी और कुरूपता से भर जाए तो कौन जिम्मेवार है? भारत में हम जीवन के साथ विश्रामालय का व्यवहार कर रहे हैं, एक घर का नहीं। सबको मरने की प्रतीक्षा है, जल्दी से किसी को स्वर्ग जाना है। किसी को मजबूरी में नर्क जाना पड़े, वो बात दूसरी है। कोई मोक्ष जाने की तैयारी में बैठा है, सब अपनी-अपनी ट्रेन की प्रतीक्षा में यह जो घर है, यह जो जीवन है, इसे सजाने, इसे सुंदर बनाने, इसे सुखी बनाने के लिए कोई, कोई आकांक्षा नहीं है। यह आकांक्षा अगर न हो तो यह घर सुंदर न बन पाएगा। जीवन हमारा निर्माण है, जीवन हमारा सृजन है, वो हमारा क्रिएशन है। जीवन हमें रखा हुआ नहीं मिलता है, वह कोई रेडीमेड चीज नहीं है, जो मिल गई है। उसे रोज-रोज बनाना पड़ता है। जो कौमें बनाती हैं, वह बना लेती हैं। जो कौमें नहीं बनाती हैं, वह खो देती हैं। और ध्यान रखें जिंदगी का एक नियम ख्याल में रखने जैसा है, कि जो आगे नहीं बढ़ते, वह अपनी जगह खड़े नहीं रह जाते, वह पीछे हटते जाते हैं। जिंदगी में ठहराव जैसी कोई चीज नहीं होती। एडिंगटन ने अपने संस्मरणों में लिखा है, कि कुछ शब्द हैं मनुष्य की भाषाओं में, जो बिल्कुल झूठे हैं। उनका पर्याय जिंदगी में होता ही नहीं। और उसने जो चार-छह शब्द गिनाएं हैं, उसमें पहला जो शब्द है, वह है रेस्ट, विश्राम। एडिंगटन ने कहा है कि विश्राम जैसा कोई क्षण जिंदगी में होता ही नहीं है। या तो आप आगे जाते हैं, या पीछे जाते हैं। या तो आप जीते हैं, या मरते हैं। या तो आप सुंदर होते हैं या कुरूप होना शुरू हो जाते हैं। ऐसा कोई क्षण नहीं है कि जहां आप हैं, और जो आप हैं, वही आप रह जाएं। अगर आप जीतते नहीं तो आप हारते हैं। ऐसा नहीं है कि आप एक जगह खड़े रह जाएं। अगर आप अमीर होने की कोशिश नहीं करते, तो आप गरीब होते चले जाते हैं। ऐसा नहीं है कि बाप बीच में ठहर जाएं कि न हम अमीर होंगे न हम गरीब होंगे। नहीं ऐसा

रेस्ट जैसी जिंदगी में कोई स्थिति नहीं है। जिंदगी गति है। तो जो आगे गति करता है, ठीक नहीं करता तो पीछे गति करनी पड़ती है। जिंदगी गति है, जिंदगी कहती है गति करो। आगे तो ठीक अन्यथा पीछे जाओ। या तो जीतो, या हारो। या तो फैलो या सुकड़ो। या तो जियो या मरो। जिंदगी बीच को स्वीकार नहीं करती। जिंदगी में इन दोनों के मध्य में कोई ठहराव, कोई रूकाव, कोई विश्राम की जगह नहीं है। लेकिन हम, हमने आगे बढ़ने की सारी आकांक्षाएं छोड़ दी हैं। क्योंकि आगे बढ़ने का मतलब, आगे बढ़ने का मतलब भौतिकता हो गई। अगर बड़ा मकान बनाना है तो ये भौतिकवाद है। अगर ज्यादा धन पैदा करना है तो यह भौतिकवाद है। अगर अच्छा भोजन खाना है तो यह भौतिकवाद है। अगर अच्छे कपड़े पहनने हैं तो यह भौतिकवाद है। अगर शरीर को सुंदर बनाना है तो यह भौतिकवाद है। तो शरीर को सुंदर मत बनाओ, शरीर कुरूप होता चला जाएगा। अच्छे कपड़े मत पहनो, धीरे-धीरे पाओगे कि कपड़े बचे ही नहीं हैं, नंगे खड़े रह गए हैं। धन की दौड़ मत करो, आखिर में पाओगे कि भीख मांगने के सिवाय कोई उपाय नहीं रह गया है। और आज पृथ्वी पर हम पहले मुल्क हैं, व्यक्तिगत रूप से तो बहुत लोगों ने भीख मांगी है, मुल्क की हैसियत से, पूरा मुल्क अगर भिखारी की हालत में आ गया है तो वह हम हैं। वैसे यह बहुत गौरवपूर्ण है हमारे लिए। क्योंकि हमारे सब महापुरूष भीख मांगते रहे, हम पूरा-का-पूरा मुल्क अगर भीख मांगने लगा है तो हम अपने महापुरूषों के चरण चिह्नों पर ही चल रहे हैं। बुद्ध अगर भिक्षा का पात्र लेके गांव-गांव घूमते थे, तो बुद्ध को हमें कहना चाहिए कि अब तुम बिल्कुल निश्चिंत रहो, अब हम भिक्षा का पात्र लेकर पूरी पृथ्वी पे घूम रहे हैं, पूरा देश। अब भीख मांगने के सिवाय हमारा कोई नेचुरल करेक्टर नहीं है। एक ही चरित्र है हमारा राष्ट्रीय। और वह भीख मांगने का चरित्र है। लेकिन हम अपने भीख में भी गौरवांवित हैं। हमें कोई चिंता नहीं होती।
बिहार में अकाल पड़ा, और जो लोग जानते थे, उन्होंने सूचनाएं दी थी, कि
इस अकाल के दुष्परिणाम भयंकर होंगे, और करीब दो करोड़ लोग मर सकते हैं, इस अकाल से। बिहार में अकाल फैलेगा तो आस-पास के प्रदेश भी प्रभावित हो जाएंगे। और दो करोड़ लोग मर सकते हैं। यह सूचनाएं दस साल पहले दे दी गई थीं। लेकिन हिन्दुस्तान ने कोई विचार नहीं किया। हमने सोचा हमें विचार करने की क्या जरूरत है? जब अकाल पड़ेगा, तब हम भीख मांग लेंगे। और हमने भीख मांगी। बिहार के लिए हमने सारी दुनिया से भीख मांगी। और सारी दुनिया की सहानुभूति के परिणामस्वरूप केवल चालीस आदमी बिहार के अकाल में भूख से मरे। जहां करोड़ के मरने की संभावना थी। चालीस आदमी केवल भूख से मरे, कि सारी दुनिया से भीख मांग कर हमने बिहार को बचाया लेकिन अकाल खत्म हुआ, बिहार फिर वैसे ही जी रहा है, जैसे अकाल के पहले जी रहा था।
बुद्ध से लेकर आज तक बिहार ने सैंकड़.ों अकाल देखे, लेकिन बिहार के खेत
पर कुआं नहीं है। हर अकाल के बाद हम फिर निश्चिंत जीने लगते हैं। वह बिहार की जमीन में जो पानी छिपा है, उसको खोदने की हम फिक्र नहीं करते। भिखारी कुछ भी नहीं करते। जब समय आता है, भीख मांग लेते हैं, और कुछ भी नहीं करते। फिर निश्चिंत हो जाते हैं।
यह थोड़ा सोचने जैसा है, अभी अमरीका के एक बहुत बड़े अर्थशास्त्री ने किताब लिखी हैः उन्नीस सौ अठहत्तर। और उस किताब में लिखा है कि उन्नीस अठहत्तर में हिन्दुस्तान में बहुत बड़ा अकाल पड़ेगा, जो पूरे हिन्दुस्तान को घेर लेगा। और उस अकाल में अंदाजन दस करोड़ से लेके बीस करोड़ लोगों तक की मृत्यु हो सकती है, अगर दुनिया से सहायता न मिली। दिल्ली में बड़े नेता से मैं कह रहा था कि आपने यह किताब पढ़ी है? उन्होंने किताब मेरे पास थी, ऊपर देखा लिखा उन्नीस सौ अठहत्तर, उन्होंने कहा उन्नीस सौ अठहत्तर बहुत दूर है, अभी तो उन्नीस सौ बहत्तर की फिकर करो। यह किताब आप पढ़िए, उन्होंने कहा उन्नीस सौ अठहत्तर कहां, हम बचेंगे कि नहीं बचेंगे। उन्नीस सौ अठहत्तर की बात उन्नीस अठहत्तर के लोग जानें। ठीक है उन्नीस सौ अठहत्तर में हम फिर भीख मांगने खड़े हो जाएंगे। लेकिन ध्यान रहे, अब दुनिया की भीख देने की क्षमता कम होती जा रही है। कम हो जाने के कारण हैं क्योंकि अब दुनिया में सिर्फ एक ही मुल्क भीख देने में समर्थ रह गया है, अमेरिका। रूस ने भी भीख मांगनी शुरू कर दी है। और उन्नीस सौ अठहत्तर में सवाल होगा रूस को बचाना

है, चीन को बचाना है, हिन्दुस्तान को बचाना है, किसको बचाना है? अभी तक यह विकल्प नहीं था, अभी तक भिखारी हम अकेले थे। अब धीरे-धीरे एशिया के और दूसरे हाथ भी, बढ़ते हुए अपना पात्र लिए हुए आ रहे हैं। अब भिखारियों में कॉम्पटीशन होगा उन्नीस अठहत्तर में। इसलिए उन्नीस अठहत्तर में हम यह बात मान कर नहीं चल सकते, कि हमको भीख मिलेगी। क्योंकि अगर अमेरिका को बचाना ही है तो, रूस को पहले बचाना उचित होगा। और जरूरी होगा। और मुझे भी अगर सवाल उठे कि हिन्दुस्तान को पहले बचाना है कि रूस को, तो मैं कहूंगा कि पहले रूस को बचा लो, क्योंकि हिन्दुस्तान के पास बचाने योग्य भी क्या है? क्या है हमारे पास बचाने योग्य सिवाय भीड़ के? बाकी बचाने योग्य कुछ नहीं है। अगर अमेरिका के आगे सवाल उठा तो रूस पहले बचाया जाएगा। हम आखिरी नंबर पर हो जाएंगे। फिर दूसरा यह है स्थिति कि हमें बचने के लिए शायद अमेरिका भी असमर्थ होता जाए। आज अमेरिका के जो चार किसान काम कर रहे हैं, उसमें से एक किसान की मेहनत हिन्दुस्तान को मिल रही है। अमेरिका की चौथाई उपज हम ले रहे हैं। अमेरिका के चार आदमियों की मेहनत, एक आदमी की मेहनत हमें मिल रही है। लेकिन उनको हमें कह देना चाहिए, तुम हमसे जीत न पाओगे। 1978 में तुम्हारे चारों किसान अगर हमें भोजन दें तो ही हमें बचा सकेंगे। क्योंकि 1978 तक हम शांत न बैठेंगे, हम रोज बच्चे पैदा करते चले जाएंगे। हम एक संबंध में बड़े उत्पादक हैं। वो बच्चे पैदा करने के संबंध में हमारे उत्पादन का कोई मुकाबला नहीं है। और जब हम बच्चे पैदा करते हैं, तब हमारा संयासी, हमारा साधु, हमारे महात्मा कहते हैं, बच्चे भगवान देता है। और जब अकाल आता है तो अकाल को बचाने के लिए भगवान कुछ भी नहीं करता। फिर हमें भीख मांगनी पड़ती है। तब यह सारे महात्मा भगवान से मिल कर कुछ भी नहीं दिलवाते। यह सिर्फ बच्चे ही दिलवाते हैं। यह नासमझी कुछ कारणों से पैदा हुई है। और उन कारणों में पहला कारण मैं आपसे कहता हूं, हम इतने दीन न हुए होते। हम इतने दरिद्र न हुए होते। सच तो यह है, हमसे ज्यादा समृद्ध होने की संभावना पृथ्वी पर किसी देश की नहीं है। हमारे पास अनंत स्रोत हैं। लेकिन हमारे पास उन स्रोतों का उपयोग करने वाली समझ नहीं है। और ऐसा नहीं कि हमारे पास समझ नहीं। हमारे पास समझ भी है, लेकिन हमारी समझ, हमारी समझ जो, उन अनंत स्रोतों के विरोध में खड़ी है। हम जीवन को समृद्ध करने की कला के दुश्मन हैं। हम उसे समृद्ध करने के लिए तैयार हैं। हम दीनता की पूजा कर रहे हैं। दरिद्रता की पूजा कर रहे हैं। त्याग की पूजा कर रहे हैं। हमारे मन में उपलब्धि की, भोग की, जीवन के रस को उपलब्ध करने की, कोई अभीप्सा नहीं है। अगर एक आदमी महल छोड़ कर सड़क पे भीख मांगने लगे, तो सारा गांव उसके पैरों में सिर छुका देगा। बिना इस बात की फिकर किये, कि जब हम भीख के लिए सिर झुकाते हैं, और जब हम आरोपित दरीद्रता के लिए नमस्कार करते हैं, तो हम बहुत गहरे में दरिद्रता को एक वर्च्यु, दरिद्रता को एक सदगुण बना रहे हैं। और जब कोई देश दरिद्रता को सदगुण बना देगा, और त्याग को महिमामंडित कर देगा, तो उस देश की उपलब्ध करने की क्षमता, विस्तार की क्षमता क्षीण हो जाने वाली है।
हमने सिर्फ त्यागी को आदर दिया है। गलत है यह बात, यह बहुत मैसोचिस्ट है। एक आदमी हुआ मैसोच, वह अपने को सताता था। पैरों में कांटे चुभाता था। आंच में हाथ डालता था। रात को जागके काटता था। कोड़े मारता था। उस मैसोच के नाम से एक वाद प्रचलित हुआ मैसोचिज्म। अपने को सताने वाला आदमी। हमारा मुल्क मैसोचिस्ट है। हम हजारों साल से अपने को सताने वाली कौम, इसलिए अगर एक आदमी, कांटों का बिस्तर बिछा कर उस पर लेट जाए, तो हमारे मन में बड़ी महिमा का उदय होता है। और हम उस आदमी को नमस्कार करने जाते हैं कि परम तपस्वी है। उस आदमी का मानसिक इलाज होना चाहिए। क्योंकि वह रूग्ण है, वो मानसिक रूप से बीमार है। क्योंकि मनुष्य के जीवन की सहज आकांक्षा फूलों का बिस्तर बनाने की है, कांटो का बिस्तर बनाने की नहीं है। यह आदमी साइकोटिक है। यह आदमी पैथालॉजिकल है। यह आदमी रूग्ण है, यह स्वस्थ नहीं है, जो कांटे की सेज बनाकर नंगा होकर उसपे लेट गया है। लेकिन यह हमारे लिए आदरणीय है। हम कहेंगे यह महातपस्वी है। जब हम इसे आदर देते हैं तो उसका मतलब यह है कि सोना तो हम भी कांटों की सेज पर ही चाहते हैं, यह बात दूसरी

है कि अभी इतनी ताकत नहीं जुटा पाए। जब जुटा लेंगे तो सोएंगे। लेकिन नमस्कार तो कर ही सकते हैं, आदर तो कर ही सकते हैं। हम जिस बात को आदर देते हैं, खबर भी देते हैं साथ में, कि हमारी आकांक्षा भी वही है। और अगर, कांटों पर सोने वाले लोगों को आदर देते-देते पूरा मुल्क कांटों पर सोने की हालत में आ गया, तो जिम्मेदार किसे ठहराइएगा? शिकायत किससे करनी है? अगर एक आदमी तीस दिन का उपवास कर ले तो, पूरे अहमदाबाद में जुलूस निकलेगा। बैंड-बाजे के साथ स्वागत-सत्कार होगा। इस आदमी को पागलखाने भेजना चाहिए, क्योंकि भोजन की इच्छा जीवन के विस्तार की इच्छा है। भोजन को छोड़ने की इच्छा, आत्मघाती है, सोसाइडल है। यह आदमी मरने के लिए आतुर है। और जब हम इसको आदर देंगे तो हम सोसाइडल, आत्महत्या के वातावरण को पैदा करेंगे। और अगर पूरा मुल्क धीरे-धीरे आत्महत्यावादी हो जाए, तो हम किसी से शिकायत भी तो नहीं कर सकते।
इस देश में प्रसन्न होना अपमानजनक है। उदास होना सम्मानजनक है। इस मुल्क में अगर रोती हुई शक्ल लेकर कोई पैदा हो तो उसके महात्मा हो जाने की पूरी संभावना है। असल में रोती हुई शक्ल बुनियादी क्वालिफिकेशन है महात्मा के लिए। वह योग्यता है, जिसके बिना कोई महात्मा नहीं हो सकता। हंसता हुआ आदमी, प्रसन्न आदमी, नाचता हुआ आदमी, हमें ना मालूम कैसे बुरे ख्यालों से भर देता है? हमारा जवान भी नहीं नाच सकता। बूढ़े. न नाचें, यह समझ में आता है। नाचें तो बहुत स्वागत योग्य है। लेकिन हमारा जवान भी नहीं नाच सकता। और अगर नाचे तो वो भी अपराधी समझेगा अपने को कि कुछ गिल्ट, कोई पाप कर रहा है, कोई अपराध कर रहा है। अगर हम नाचते हैं तो गिल्टियां अनुभव होते हैं। अगर हंसते हैं तो ऐसा लगता है कोई अपराध कर रहे हैं जीवन के प्रति। जब रोते हैं तभी हम खुल कर रोते हैं। जब हम रोते हैं और उदास होते है तभी हमें ऐसा लगता है कि अब हम राष्ट्रीय कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। इसके पीछे एक ही कारण है जो मैं आपसे कह रहा हूं और वह यह कि हमने शरीर के विपरीत आत्मा को स्वीकार किया है। शरीर के अनुकूल नहीं। शरीर के पक्ष में नहीं। ऐसा अध्यात्म जहरीला अध्यात्म है।
दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं, हमने एक दूसरा सूत्र, जिसके आधार पर हमारे दुर्भाग्य की घटनाएं फैलती चली गईं। हमारा दूसरा सूत्र है, विश्वास, श्रद्धा, बिलीफ, हम विचार करने वाली कौम हैं। हम विश्वास करने वाले लोग हैं। और हमारे शास्त्र कहते हैं कि जो संदेह करेगा, वह भटक जाएगा। और हमारे गुरू समझाते हैं कि जो विचार करेगा, वो आदमी धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक आदमी होने के लिए अंधा होना आवश्यक है। आंख नहीं चाहिए। विचार नहीं चाहिए। तर्क नहीं चाहिए। संदेह नहीं चाहिए। और ध्यान रहे बिना संदेह के विज्ञान का जन्म नहीं होता है। विज्ञान की सारी-की-सारी शाखाएं- प्रशाखाएं, डाउट, संदेह के बीज से विकसित हुई हैं। कब वह क्षण आएगा जब हम भी संदेह कर सकेंगे? अगर तीन सौ साल यूरोप के इतिहास में भी विश्वास के रहे होते, और अगर पिछले तीन सौ साल में यूरोप भी पोप और पादरियों के आस-पास चक्कर लगाता रहता, तो यूरोप भी आज उसी दीनता की हालत में होता, जिसमें हम हैं। आज अमेरिका के आदमी की औसत आमदनी, भारत के आदमी से सत्तर गुनी ज्यादा है। आज अमेरिका का गरीब आदमी भी हमारे अमीर आदमी से बेहतर हालत में है। आज हमारा अमीर आदमी भी अमेरिका के गरीब के सामने गरीब है। सेवरलेट गाड़ी हिन्दुस्तान में अमीर आदमी की गाड़ी है। अमेरिका में सेवरलेट नेबरहुड गरीब लोगों के मोहल्ले का नाम है। जहां सेवरलेट वाले लोग रहते हैं, वह गरीब इलाका है। तो गरीबों के मोहल्ले का नाम ही सेवरलेट नेबरहुड, सेवरलेट रखने वालों का मोहल्ला। कोई आदमी सेवरलेट वालेट वाले आदमी के पड़ौस में रहना पसंद नहीं करता, क्योंकि वह गरीब आदमी के पास कौन रहे।
हिन्दुस्तान में सेवरलेट गाड़ी अमीर आदमी की गाड़ी है। और बड़े मजे की बात है, अभी मुफतलाल परिवार के एक सज्जन मुझसे मिलने आए, तो वह कहने लगे कि सेवरलेट मर्सिटीज इनकी जरूरत क्या है? एम्बेसिडर से काम चल जाता है। एंबेसेडर की भी क्या जरूरत है, बैलगाड़ी से भी काम क्यों नहीं चलता है। और बैलगाड़ी भी बहुत भोग का साधन है, पैदल ही बहुत अच्छा है। पैदल ही चलके जब मोक्ष तक पहुंच सकते हैं लोग तो बैलगाड़ी की भी क्या जरूरत है। साधारण आदमी

आकर मुझसे कहे, लेकिन मफतलाल के परिवार का कोई आदमी मुझसे कहे कि क्या जरूरत है सेवरलेट की, एंबेसेडर क्या कम है? तो सोचने जैसा हो जाता है।
हिन्दुस्तान का अमीर आदमी भी जब इस भाषा में सोचता है कि हिन्दुस्तान के गरीब आदमी को हम क्या कहें? सिकुड़ने की भाषा है। लेकिन कसूर नहीं है। कसूर मफतलाल का नहीं है। कसूर महात्माओं का है, जो सिखा रहे हैं कि सिकुड़ो। फैलना पाप है, विस्तार पाप है, सिकुड़ो।
गांधी जी से किसी ने पूछा कि आप थर्ड क्लास में क्यों चलते हैं? तो उन्होंने कहा क्योंकि फोर्थ क्लास नहीं है। बड़े दुःख की बात है कि फोर्थ क्लास नहीं है। हमें बनाना चाहिए। लेकिन महात्मा फोर्थ क्लास से राजी न होंगे, वह कहेंगे फिथ क्लास कहां हैं? उनको कहीं भी नहीं रोका जा सकता। जब जिंदगी, जिंदगी के सारे नियम फैलने के हैं, तब हमारे सारे नियम सिकुड़ने के हैं।
एक बीज को बो दें, तो एक बीज से वृक्ष पैदा होगा, छोटा सा बीज बड़ा वृक्ष
हो जाएगा। इतना बड़ा कि उसके नीचे हजार बैलगाड़ियां ठहर सकें। और एक बीज को बो दें तो वृक्ष में करोड़ों बीज लगेंगे। एक बीज करोड़ बीज हो गया। अब आइंस्टीन के वाद को हम भली-भांति जानते हैं, सारा जगत एक्सपेंडिंग है। तारे भी अपनी जगह रूके नहीं हैं, वह भी फैल रहे हैं। हर दो तारों के बीच का फासला रोज अरबों मील बढ़ जाता है। सारा जगत फैल रहा है। जैसे कि कोई हवा भर रहा हो किसी गुब्बारे में। और गुब्बारा बड़ा होता जा रहा हो। ऐसा पूरा जगत फैल रहा है। फैलाव जिंदगी है। लेकिन फैलाव के लिए संदेह चाहिए। अन्यथा जिंदगी जड़ हो जाती है, विश्वास जड़ता है। विश्वास ठहरा लेता है। विश्वास कहता है, जो मान लिया वह ठीक है। और हमने कुछ बातें तीन हजार साल पहले मानी थी, वह अब भी ठीक हैं। तीन हजार साल में सब बदल गया। ना वह दिन रहे, न वह लोग रहे, न वह परिस्थितियां रहीं, न वह ज्ञान रहा, न वह बातें रहीं, सब बदल गया। तीन हजार साल पहले मानी गईं बातें, बीसवीं सदी में भी हमारे आधार हैं। हम जिंदा कैसे हैं? यह भी प्रश्नवाची है। हम बड़े अद्भुत लोग हैं, कि हम तीन हजार साल पहले की बातों को पकड़ कर आज जिंदा कैसे हैं?
मैं कलकत्ते में एक घर में ठहरा, एक डाक्टर के घर में, निकल रहा हूं बाहर, उनकी लड़की को छींक आ गई, उन्होंने कहा एक मिनट रूक जाएं। डाक्टर, डाक्टर को भी पता नहीं छीक क्यों आती है। डाक्टर पढ़ रहा है आज के मेडिकल कालेज में, लेकिन उसके पास बुद्धि तीन हजार साल पहले की है। जब छींक आती थी तो डर लगता था कि रूक जाओ। मैंने उस डाक्टर को कहा कि तुम तो भली-भांति जानते होंगे कि छींक क्यों आती है? उसने कहा जानता क्यों नहीं, लेकिन रूकने में हर्ज क्या है? यह एक आदमी नहीं बोल रहा है, यह दो सदियां बोल रही हैं, जिनके बीच तीन हजार साल का फासला है। यह आदमी सीजोफ्रैनिक, इस आदमी के भीतर दो स्वर हैं, जिनके बीच कोई संबंध नहीं है। वो कहता है, मुझे मालूम है। जिसे यह मालूम है कि छींक क्यों आती हैं, वह और आदमी है। और एक दूसरा आदमी उसके भीतर है, वह कहता है लेकिन रूकने में हर्ज क्या है? पता नहीं कुछ खतरा हो ही जाए, तो एक मिनट रूकने में हर्ज क्या है? मैंने उससे कहा एक मिनट रूकने में कोई भी हर्ज नहीं, लेकिन यह जो मन है, जो कहता है एक मिनट रूकने में हर्ज क्या है, यह बड़ा खतरनाक है। यह बहुत नुकसान पहुंचाएगा। यह सारे मुल्क को रोक लेगा। और जो डॉक्टर, मैंने कहा अगर मेरा बस चले तो तुम्हारे सारे सर्टिफिकेट आज ही जब्त करवा लूं। क्योंकि जो आदमी छींक से भी डरता है, इस आदमी से इलाज करवाना ठीक नहीं है। यह कब किस खतरे में... । मैंने कहा कि तुम ऑपरेशन कर रहे हो, और नर्स को छींक आ जाए, तो रूक जाना। तब तुमको पता चलेगा कि एक मिनट रूकने में हर्ज क्या है? मैंने कहा ऑपरेशन करते वक्त क्या करोगे अगर छींक आ जाए? उसने कहा यह तो सवाल मुझे उठा नहीं। मैंने कहा कभी भी उठ सकता है, छींक का कोई भरोसा है? फिर करोगे क्या? मैंने कहा, मैं जानता हूं तुम रुक जाओगे, और वह मरीज जो टेबिल पर पड़ा है, मरेगा। तुम तो रूकोगे लेकिन बीमारी नहीं रूकेगी एक मिनट। तुम तो रूकोगे लेकिन ऑपरेटिड हड्डियां और कटा हुआ पेट नहीं रूकेगा।
मैंने उसे एक घटना कही, मैंने उससे कहा कि एफ.आर.सी.एस. की परीक्षा देने एक आदमी गया हुआ था। उसकी मुखाग्र, ओरल परीक्षा थी, वायवा था। सारी

परीक्षा पूरी हो गई थी। और जब भीतर वह मैडिकल बोर्ड के सामने गया तो उन्होंने उससे कुछ पूछा कि यह दवा फलां किस्म के मरीज को कितनी मात्रा में देनी, उसने कुछ मात्रा बताई, फिर दरवाजे की तरफ बढ़ा, तभी उसे ख्याल आया कि इतनी मात्रा में देने पर तो मरीज मर जाएगा, यह जहर है। वह लौटा, उसने कहा कि माफ करिये, मैं जरा फर्क करना चाहता हूं। पर उन लोगों ने कहा कि मरीज मर चुका है। अब फर्क करने से कोई फायदा नहीं रहेगा। उसने कहा, मरीज है कहां? उसने कहा यह तो परीक्षा हो रही है, लेकिन अगर मरीज होता तो मरीज अब तक मर चुका होता। सुधार का कोई उपाय न रहा, जहर दिया जा चुका है। अगले साल फिर परीक्षा देना, तब सुधार करना। यह मामला खत्म हो गया। मैंने उस डाक्टर को कहा कि तुम अगर इतना सोचने को भी रूक गए कि छींक के लिए रूकना चाहिए कि नहीं, तो भी मरीज मर जाएगा।
हमारे पास विश्वास करने वाला एक मन है, जिसे हमने हजारों साल में मजबूत किया है। वह हर चीज पर विश्वास कर लेता है। इसके खतरे बड़े अजीब हैं। इसके खतरे ऐसे हैं कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल। अभी मैं, बंगाल में था तो कुछ नक्सलाइज्ड मित्र मुझे मिलने आए। आम तौर से मुल्क में हम सोचते होंगे कि नक्सलाइज्ड जो युवक हैं, वह बड़े क्रांतिकारी हैं। इस भ्रांति में मत पड़ना। हमारा युवक कुछ भी हो जाए, क्रांतिकारी होना बहुत मुश्किल है। एक युवक जो आया हुआ था, उसके हाथ में माओ की किताब थी। वह उसने नीचे रख दी, और भूल से उसका पैर लग गया, तो उसने उसके पैर पड़ लिये। जैसे गीता का हम पड़ते हैं, वैसे माओ की किताब का पैर... । अब यह नक्सलाइज्ड क्रांतिकारी हैं या सिर्फ गीता की जगह माओ आ गया है। कुरान की जगह मार्क्स आ गए हैं। और उपनिषद की जगह एंजल्स आ गए हैं। यानि हममें कोई फर्क नहीं है, हमारे हाथ की किताब भी बदल जाए, तो हिन्दुस्तान का कंयुनिस्ट जितना खतरनाक हो सकता है, उतना दुनिया का कहीं का खतरनाक नहीं हो सकता, क्योंकि ये भी विश्वासी आदमी है। वो मार्क्स को भी भगवान मान कर पकड़ता है, जब पकड़ता है। हमारा चित्त पकड़ने वाला और विश्वासी है। लेकिन ध्यान रहे, इस जगत में ज्ञान का सारा विकास संदेह से हुआ है। दूसरों पर संदेह नहीं, अपने पर भी संदेह। दूसरे के विचारों पर संदेह नहीं, अपने विचारों पर भी निरंतर जो संदेह करता है, उसके विचार रोज सत्य के निकट, और निकट, और निकट पहुंचते चले जाते हैं। आइंस्टीन से मरने के कोई पन्द्रह दिन पहले किसी ने पूछा कि आप एक धार्मिक आदमी में और वैज्ञानिक आदमी में क्या फर्क करते हैं? तो आइंस्टीन ने कहा, अगर धार्मिक आदमी से सौ सवाल पूछो तो वह डेढ़ सौ सवाल देने के लिए हमेशा तैयार है। और वैज्ञानिक आदमी से अगर सौ सवाल पूछो तो निन्यानवे के संबंध में वह कहेगा मुझे पता नहीं, एक के संबंध में कहेगा कि थोड़ा सा मुझे पता है, वो भी अंतिम नहीं है। अल्टीमेट नहीं है। कल बदल सकता है। लेकिन इस जगत को जो समृद्धि, जो सुख, जो स्वास्थ्य, जो शक्ति मिली है, वह विज्ञान से मिली है। हम विज्ञान पैदा नहीं कर पाए, विश्वास करने वाली कोई कौम विज्ञान पैदा नहीं कर सकी। और ध्यान रहे बिना विज्ञान के, मनुष्य का पृथ्वी पर जीना बिल्कुल नारकीय हो गया है। बिना विज्ञान के हम पृथ्वी पे नहीं जी सकते। बिना विज्ञान के हम पशुओं के जैसे ही हो जाते हैं। आज जो लोग जमीन में छिपी हुई हड्डियों की खोज-बीन करते हैं, उन्होंने बहुत सी कहानियां खोद निकाली हैं। एक कहानी जो बहुत सोचने जैसी है और हिन्दुस्तान के एक-एक बच्चे को समझने जैसी है, वह यह है कि आज से कोई दो या तीन लाख वर्ष पहले .जमीन पर हाथियों से बड़े-बड़े जानवर थे। हाथियों से दस गुने शरीर वाले, जानवर थे। अचानक एक ही बार में वह सब नष्ट हो गए। बड़ी कठिन बात है कि वह क्यों मर गए? कोई उनमें युद्ध नहीं हुआ, कोई उन्होंने एटमबम नहीं बनाया। कोई हाइड्रोजन बम नहीं बनाया। कोई चांद-तारों से किसी ने उन पर हमला नहीं किया। और जमीन पर उनका कोई मुकाबला नहीं था, जो उनको मिटा सके। वह मिट क्यों गए? वह सिर्फ मिट गए, क्योंकि उन बड़े जानवरों ने बहुत बच्चे पैदा कर लिए, एक। उन्होंने इतने बच्चे पैदा कर लिये, जो भोजन के आगे निकल गए। और दूसरा उन बड़े जानवरों के पास, बड़े तो बहुत थे, लेकिन शरीर बहुत बड़ा था, दिमाग बहुत छोटा था। और शरीर इतना बड़ा था कि दिमाग उसके अनुपात में ना के बराबर था। जब उनकी संख्या बहुत बढ़ गई, और प्राकृतिक साधन के बारे में चूक

गए। तो वह भोजन के नए साधन न खोज पाए। मरने के सिवा कोई उपाय न रहा। आने वाले भविष्य में सारी दुनिया के विचारशील लोग, एशिया, भारत, चीन, अफ्रीका इनसे बहुत डरे हुए है। घबराहट इतनी ज्यादा है कि यह इतने बच्चे पैदा कर देंगे, और इतने अवैज्ञानिक बुद्धि है कि उनको कोई रोकने का न साधन खोज पाएंगे, ना भोजन का साधन खोज पाएंगे, वह इस सारी दुनिया पर हावी हो जाएंगे, सारी दुनिया को नष्ट करने का कारण बन जाएंगे।
विज्ञान का अर्थ है, प्रकृति के साथ जीने के नए उपाय खोजना। प्रकृति
से नए रास्तों से नई सुविधाएं प्राप्त करना। प्रकृति से जीवन के सहारे और सहयोग के लिए नई-नई शक्तियों को जीतना। लेकिन यह वही कर पाएंगे, जो पुराने रास्तों पर संदेह करेंगे। जो पुराने रास्ते पर पूरा भरोसा करता है। वह कठिनाई में पड़ जाता है। अब जैसे उदाहरण के लिए अगर गांधी जी को पूछे, विनोबा जी को पूछें इस बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए हम क्या करें, तो वह पतंजलि की किताब खोल कर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य सार्थक है। यह ब्रह्मचर्य शायद पतंजलि के जमाने में, संख्या की कोई समस्या न थी। सारी दुनिया की आबादी पतंजलि के जमाने में दो करोड़ से ज्यादा न थी, सारी दुनिया की आबादी। और अब तो दो करोड़ का कोई हिसाब ही नहीं है। डेढ़ लाख और दो लाख आदमी हम रोज बढ़ा लेते हैं। दो करोड़ तो हम महीनों में पैदा करते हैं। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बंटा था, जितने लोग पाकिस्तान में गए थे, जिन्ना की आत्मा को हमें खबर कर देना चाहिए कि तुम बड़ी भूल में पड़े हो, उतने ही आदमी हमने फिर से पैदा कर लिए। हिन्दुस्तान उतना का उतना है। आदमी हमने कम नहीं होने दिये। हमने उतने आदमी पैदा कर लिए। तुम कितने ही पाकिस्तान काटो, हम दस साल में वापिस उतने आदमी पैदा कर लेंगे।
पतंजलि के जमाने में ब्रह्मचर्य का जो उपाय था, वह कोई जनसंख्या कम करने के लिए नहीं था। वह कुछ लोग जो जिंदगी के साथ प्रयोग करना चाहते थे, उनके लिए था। अब जब गांधी और विनोबा उस उपाय की बात इस बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने के लिए करते हैं, तब बड़ी हैरानी मालूम पड़ती है। गांधी जी अपने आश्रम के लिए सब लोगों को ब्रह्मचर्य के लिए राजी नहीं कर पाते। गांधी जी के आश्रम में भी, वैविचार की घटनाएं घट जाती हैं। इस पूरे मुल्क की तो बात छोड़ो। गांधी जी के सैक्रेटरी भी कोई स्त्री को लेकर भाग जाते हैं, पूरे मुल्क का तो हिसाब छोड़ें। गांधी जी जिनको कसमें दिलवाते हैं, वह भी प्रेम में पड़ जाते हैं।
अभी सरदार पृथ्वी सिंह मेरे पास आए। वी कह रहे थे कि जब मैं गांधी जी
के आश्रम में गया, तो उन्होंने कहा कि आश्रम में सब स्त्रियों को बहन और मां बेटी ही मानना है। इसकी कसम खा लो। वह बेचारा पृथ्वी िंसंह, हिम्मतवर आदमी है, उसने कसम खा ली। और अपनी कसम पाली। लेकिन पीछे मीरा बहन, उसके प्रेम में पड़ गईं। गांधी जी को मीरा के बड़े शुभाशीष उपलब्ध थे और जब मीरा ने कहा कि मैं पृथ्वी सिंह के बिना जी नहीं सकती, तो गांधी जी ने पृथ्वी सिंह को बुला कर कहा कि तुम विवाह कर लो, तो पृथ्वी सिंह ने कहा कि आप कैसी बात करते हैं? जब मैंने कसम खा ली, तो अपनी मां से विवाह करूं, कि अपनी बहन से, कि अपनी बेटी से। किससे विवाह करूं? गांधी जी ने कहा, छोड़ो वह कसम, तो ने कहा कि यह असंभव है। कसमें छोड़ी नहीं जाती। गांधी जी ने बहुत फुसलाने की कोशिश की तो एक रात पृथ्वी सिंह चुपचाप आश्रम से निकल भागे, कि कहीं वह फुसला ही न लें।
गांधी जी का आश्रम हो कि विनोबा का आश्रम हो, प्रेम एक सहज घटना है, और ब्रह्मचर्य एक असहज साधना है। चालीस-पचास करोड़ लोग ब्रह्मचर्य को साधेंगे, इस पागलपन में पड़ने की जरूरत नहीं है। लेकिन बर्थ कन्ट्रोल के यह खिलाफ हैं। क्योंकि वह नया साधन है। ब्रह्मचर्य पर शक करें तो बर्थ कन्ट्रोल पर राजी हो सकते हैं। लेकिन ब्रह्मचर्य पर जब पक्का भरोसा है, तो बर्थ कन्ट्रोल पर कैसे राजी हो सकते हैं। हमारा चिंतन पुराने को इतने जोर से पकड़ता है कि नए के लिए गुजाइश नहीं बचती कि वह प्रवेश कर जाए। और जिंदगी की रोज नई परिस्थितियों में, नए सब कुछ नये साधन खोज लेने पड़ते हैं। विज्ञान नए की खोज है। और जिसे हम धर्म कहते हैं, वह पुराने की पकड़ है। इसलिए जितना जोर से हम विश्वास घिरे रहेंगे, उतने ही अधिक दिनों तक हमारी

मुसीबत और हमारे दुर्भाग्य का कोई अंत नहीं होगा। हिन्दुस्तान के अतीत की सारी पराजय, हिन्दुस्तान के अतीत की सारी दासता, हमारे अवैज्ञानिक होने के ऊपर आधारित है।
जब सिकन्दर हिन्दुस्तान आया, तो वो घोड़ों पर सवार था। और पौरस लड़ने गया वह हाथियों पर सवार था। हाथी बहुत पुराना ढंग था लड़ाई का। सिकंदर से पोरस की जीत मुश्किल है। पोरस हो सकता है सिकन्दर से ज्यादा ताकतवर हो, लेकिन.ज्यादा वैज्ञानिक नहीं है। घोड़ा हाथी से बहुत वैज्ञानिक है। कम जगह घेरता है, तेजी से चलता है, गति करता है, दौड़ता है, बचाव करता है। हाथी बारात के लिए बहुत अच्छा, बारात निकालनी हो, या किसी साधु-महात्मा का जुलूस निकालना हो, तो हाथी से बढ़िया कुछ भी नहीं है। लेकिन युद्ध के मैदान पर हाथी बेमानी है। सिकन्दर के सिपाही जो कपड़े पहनकर आए थे, वह वैज्ञानिक थे। पोरस के सिपाही जो कपड़े पहन कर गए थे, वह वैज्ञानिक नहीं थे। लड़ने के लिए और तरह के कपड़े चाहिएं। लड़ने के लिए ऐसे कपड़े चाहिएं, जो शरीर पर कसे हों, ढीले न हों, लड़ने के लिए ऐसे कपड़े चाहिए, जिनका पता भी चले कि शरीर पर हैं, इतने कसे हों। अगर ढीले-ढाले कपड़े पहनने हों, प्रार्थना के लिए, मेरे जैसे कपड़े, अगर प्रार्थना करनी हो तो बड़े बढ़िया हैं। लेकिन अगर युद्ध पर लड़ने इन कपड़ों में जाना है, तो घर बता कर जाना चाहिए कि हारने के लिए तैयार रहना। हम हारने जा रहे हैं, लड़ने नहीं जा रहे हैं।
पोरस के सिपाही अवैज्ञानिक कपड़े पहने हुए थे। हिन्दुस्तान में ही लड़ते थे तो ठीक था, क्योंकि दूसरी तरफ भी वही कपड़े पहने हुए लोग थे। हिन्दुस्तान में लड़ते थे तो ठीक था, वह उस तरफ भी हाथी थे, इस तरफ भी हाथी थे। जिसके पास.ज्यादा थे, वह जीत जाता था। जब हम दूसरी कौमों से लड़े, तब हमको पता चला कि यह काम नहीं चलेगा। जो घोड़े पर लड़ने आया है, उससे हाथी से नहीं लड़ा जा सकता। जब अंग्रेजों से हम लड़े, तब भी वही गलती की। अंग्रेज हैं विकसित, तोपें और बंदूकें लेकर आए। हमारे पास विकसित तोपें और बंदूकें न थी। अभी हम चीनियों से हार कर बैठ गए हैं। हालांकि जब चीनियों से हम लड़ रहे थे, तो हमने इतनी कविता पैदा की कि अगर हमारे सिर्फ कवि ही लड़ने चले जाते तो भी हम जीत जाते। इतनी कविता लिखी गई, कि मैं तो हैरान हो गया। घर-घर में कवि पैदा हो गए। और हर आदमी कविता करने लगा और कहने लगा कि हम सोए हुए सिंह है हमें छेड़ो मत। मैंने कई सिंहों से पूछा कि कभी किसी सिंह ने यह कहा है कि हम सोए हुए हैं, हमें छेड़ो मत। छेड़ो और पता चल जाता है। कहने की कोई जरूरत नहीं होती। कोई सिंह कविता नहीं करता, छेड़ो और पता चल जाता है कि सिंह को छेड़ दिया। लेकिन हम बड़े अजीब सिंह हैं, हम सब कविताएं कर रहे हैं, और हमने इतनी कविताएं की कि माओ भी शायद घबराया होगा, कि पता नहीं, इनके पास कोई आध्यात्मिक ढंग तो नहीं है, लड़ाई का। इतनी कविताएं कर रहे हैं, कविताओं से कोई तंत्र-मंत्र तो नहीं कर रहे हैं। लेकिन हम हारे बुरी तरह। और जब हम हार गए, और सैंकड़ों मील जमीन चीन के कब्जें में चली गई, तब वो कवि कहां हैं? उनमें से कुछ पद्मभूषण हो गए। कोई भारत रत्न होने की कोशिश दिल्ली में कर रहे होंगे, लेकिन वह साए हुए सिंह कहां हैं, जिन्होंने कविताएं की थी। और उस जमीन का क्या हुआ? पंडित नेहरू तक ने पीछे कहा है कि वह जमीन बेकार है। उसमें घास भी नहीं उगता। अगर पहले ही मालूम है तो कौन-कौन सी जमीन बेकार है, वह सब दे दो, फिजूल के झगड़े क्यों करते हो। अगर जमीन बेकार थी तो मुल्क के जवानों को क्यों कटवाया? अगर जमीन बेकार थी तो खून क्यों गिराया? और अगर जमीन बेकार थी तो माओ को इतनी तकली.फ क्यों दी? कष्ट क्यों दिया, दुश्मनी क्यों की? मित्रता भी रहती, जमीन भी देते। और अभी भी मुल्क में बहुत जमीन बेकार पड़ी हुई है, इसलिए सावधान होना जरूरी है। जिसमें घास भी नहीं उगता, उसको दे दो। कल फिर घास उगने वाली दे देना। क्योंकि सिर्फ घास ही उगता है। और परसों गेंहूं उगने वाली भी दे देना, क्योंकि गेहूं भी घास की एक किस्म है। और क्या है? आदमी अपने को समझाने की कैसी तरकीबें निकालता है?
हम हारते रहे निरंतर, और जब हम अपने नेताओं से पूछें कि हार का कारण क्या है? तो वह कहते हैं फूट। फूट हार का कारण नहीं है। झूठी है यह बात। फूट हार का कारण नहीं है। हार का कारण है, नॉन-टेक्नॉलॉजिकल माइंड। हार का

कारण है, अवैज्ञानिक, तकनीक विरोधी मन। लेकिन इसको वह कैसे कहें? क्योंकि वह चरखे के प्रस्तोता हैं। वह कहते हैं चरखा चलाओ, हल जोतो, घर-घर छोटा- छोटा अपना काम करो। खुद अपने कपड़े धोओ, खुद खाना बनाओ, खुद खाना पैदा करो। एक-एक आदमी को स्वावलंबी बनाने की चेष्टा में जो लोग लगे हैं, वह राष्ट्र को स्वावलंबी न बना सकेंगे, ध्यान रखना। ध्यान रहे कि आदमी का सारा विकास परावलंबन से हुआ है। हम एक-दूसरे पर जिस मात्रा में निर्भर होते हैं, उतने विकसित होते हैं। अगर एक-एक आदमी स्वावलंबी हो जाए, अपना कपड़ा बनाए, अपना खाना पैदा करे, तो बस वह कपड़ा और खाना ही पैदा कर ले पूरी जिंदगी में तो बहुत है। कपड़ा भी पूरा नहीं होगा, कभी टांग उघड़ जाएगी, कभी सिर उघड़ जाएगा। और खाना भी कभी पूरा नहीं होगा। कभी सुबह की जून मिलगा, कभी सांझ की जून मिलेगा। जगत का सारा विकास जो है, वह इंटरडिपेंडेंस है। वह स्वावलंबन नहीं है। हम एक-दूसरे पर जितना निर्भर होते हैं, उतना विकास होता है। और हम एक-दूसरे पर जितने निर्भर होते हैं, उतनी एकता पैदा होती है। हिन्दुस्तान एक नहीं हो सका वर भी टैक्नोलॉजिकल विकास के रूकने की वजह से हुआ। अगर हिन्दुस्तान आगे भी गांव का देश रहेगा, तो एक नहीं हो सकता। क्योंकि एक होने के कारण नहीं हैं। एक गांव अपने भीतर जीता है। उसको कोई मतलब नहीं दूसरे गांव से। अगर दिल्ली हार जाए, तो एक छोटे गांव को क्या फर्क पड़ता है? कोई फर्क नहीं पड़ता। दिल्ली पर उसकी जिंदगी निर्भर नहीं है। और एक गांव अपना खाना बना लेता है, अपना कपड़ा पैदा कर लेता है। अपना चमार है उसके पास, अपना बढ़ई है उसके पास। वह गांव राष्ट्र का हिस्सा नहीं वह गांव खुद ही एक राष्ट्र है। इसलिए तो हमारे मुल्क में कई तरह के राष्ट्र हैं, राष्ट्र के भीतर, महाराष्ट्र भी है। अब बड़ा खतरा है। जब राष्ट्र के भीतर महाराष्ट्र हो, तो बहुत खतरा है। पचास राष्ट्र हैं इसके भीतर, असल में एक-एक गांव अपनी हैसियत रखता है। फिर एक-एक जाति अपनी हैसियत रखती है। और सब स्वावलंबी हैं। और एक-एक आदमी स्वावलंबी है। और अभी भी हम समझाए जा रहे हैं, स्वावलंबन। स्वावलंबन ने हमें हराया। स्वावलंबन ने हमें मारा। गांव की छोटी अपनी हैसियत ने कभी इस मुल्क को बड़ी हैसियत न दी। कभी ये मुल्क इकट्ठा न हो सका और ध्यान रहे जब हम इकट्ठे होते हैं तो टैक्नोलॉजी बदलनी चाहिए। जैसे-अगर बैलगाड़ी की दुनिया हो, तो बड़ा राष्ट्र पैदा नहीं हो सकता। बैलगाड़ी की दुनिया में छोटे-छोटे राष्ट्र ही हो सकते हैं। और अगर बैलगाड़ी की दुनिया हो तो ब्राह्मण और शूद्र को एक नहीं किया जा सकता। क्योंकि ब्राह्मण अपनी बैलगाड़ी में बैठा है, कोई जबरजस्ती नहीं कर सकता कि शूद्र को अपनी गाड़ी में बैठाया जाए। लेकिन रेलगाड़ी में ब्राह्मण और शूद्र एक हो जाएंगे। क्योंकि रेलगाड़ी में ब्राह्मण नहीं कह सकता कि मैं बैठा हूं तो शूद्र न चढ़े। रेलगाड़ी आएगी तो वर्ण व्यवस्था टूट जाएगी। बुद्ध समझाए नहीं टूटी, महावीर समझाए नहीं टूटी, हिन्दुस्तान के सब ब्रह्मज्ञानी कहते रहे कि सबमें ब्रह्म है, नहीं टूटी। रेलगाड़ी आई और टूटी। टैक्नोलॉजी बदलती है तो समाज की व्यवस्था बदलती है। अगर आज जब इतने बड़े जेट प्लेन हमारे पास हैं, जो कि सारी जमीन में घंटेभर में घूम जाएं, आधा घंटे में घूम जाएं, तब ध्यान रहे दुनिया में राष्ट्र ज्यादा दिन जिन्दा न रह पाएंगे। यह दुनिया एक ग्लोबल विलेज हो गई है। एक बड़ा गांव हो गई है। अब अगर हम, इतने बड़े जैट हमने विकसित कर लिये हैं, जो कि पृथ्वी पर आधा घण्टे में चक्कर लगा लेते हैं, तो अब ये पृथ्वी अलग-अलग नहीं रह सकती। जितनी टैक्नोलॉजी विकसित होती है, उतना आदमी निकट आता है, और बड़े समूह इकट्ठे होते हैं। हमारी टैक्नोलॉजी अविकसित है, इसलिए हम इकट्ठे भी नहीं हो पाए। और आज भी अविकसित है। आज भी हिन्दुस्तान गांवो का देश है, और आज भी, हिन्दुस्तान के पास पांच हजार साल पुराने, तकनीक हैं, और उनकी प्रशंसा किये चले जा रहे हैं, कि चरखा कातना कोई गौरवपूर्ण काम है। चरखा कात रहा है हमारा नेता। और हमारा नेता जब चरखा कातता है तो कैमरामैन को जरूर बुला लेता है, क्योंकि बाकी वक्त तो वो चरखा कातता नहीं, जब चरखा कातता है तो फोटोग्राफर को बुला लेता है। और पूरी अदा से चरखा कात कर बता देता है। फिर भूल-भाल जाता है। कुदाली उठा के चला देता है। चांदी की कुदाली बनाई हैं, नेताओं ने, चांदी की कुदालियों से कोई मतलब है? लेकिन फोटो उतरवाने के लिए चांदी की कुदाली बहुत अच्छी है।

ऐसे ही कुदाली अब बेमानी है। इस देश के लिए अपनी पुरानी व्यवस्था पर सन्देह पैदा हो, पूराने टैक्नीक पर, पुराने विश्वासों पर, पुरानी मान्यताओं पर, तो हम कोई भी कारण नहीं है कि बीस वर्ष में एक मॉडर्न, एक आधुनिक देश न बन जाएं। और जब तक हम आधुनिक देश नहीं बनते हैं, तब तक हमारे दुर्भाग्य का अंत नहीं होता। लेकिन आधुनिक होने में एक बड़ी जिझ पैदा हो गई है। वो मैं थोड़ा आपसे बात करना चाहूंगा।
हमें एक बड़ी कठिनाई हो गई है, और वो कठिनाई ये हुई, कि अंग्रेजों से लड़ने के कारण, पश्चिम के प्रति हमारे मन में एक विरोध पैदा हो गया। और मॉडर्न और वैस्टर्न के बीच एक भ्रांति पैदा हो गई। जो पश्चिमी है, वो आधुनिक भी है। और चूंकि पश्चिम से हमारे मन में एक खिलाफत है इसलिए आधुनिक से भी हमारे मन में एक खिलाफत है। लेकिन हमें इसमें फर्क करना सीखना पड़ेगा। हमें जानना पड़ेगा आधुनिक और बात है, पाश्चिमात्य और बात है। और अगर पश्चिम ने आधुनिक को स्वीकार किया है, इसलिए हमने अगर पश्चिम के कारण आधुनिक को इंकार किया तो, हम आत्महत्या कर लेंगे। हम बच न सकेंगे। आज हर ची.ज में हम विरोध करते हैं, अगर हमारा लड़का आधुनिक कपड़े पहनता है, तो हम कहते हैं यह पश्चिमी ढंग इख्तियार कर रहा है। अगर हमारा गांव आज आधुनिक चीजों का प्रयोग करता है, तो हम कहते हैं यह वैस्टर्नाइज हो रहा है। हम मॉडर्न और वैस्टर्न में फर्क नहीं कर पा रहे। यह दोनों अलग चीजें हैं। मॉडर्न होना एकदम जरूरी है, अन्यथा हम टिक न पाएंगे जमीन पर। क्योंकि पिछले तीन सौ वर्षों में, सारी पृथ्वी धीरे-धीरे रूपान्तरित हो गई है। हम अरूपांतरित छूट गए हैं। हम एक आइलैंड बन गए हैं, जो रूपांतरित नहीं हुआ, और अब हमें रूपांतरित होने में भी भय लगता है। यह डर लगता है कहीं पश्चिम हमारी आत्मा पर हावी न हो जाए। कहीं पश्चिम हमें न पकड़ ले। इसी संबंध में मैं तीसरा सूत्र कहना चाहता हूं, जिसने भारत को दुर्भाग्य दिया। फिर मैं अपनी बात पूरी करूं। भारत निरंतर अपनी आइडेंटिटि अतीत से जोड़ रहा है, भविष्य से नहीं। हम सदा पीछे की तरफ देखते हैं, हम पूछते हैं भारत यानि क्या? तो हम पीछे की तरफ देखते हैं। जब हम पूछते हैं भारतीयकरण तो हम पीछे की तरफ सोचते हैं। जब हम भविष्य के भी संबंध में बात करते हैं, तब भी हम अतीत के ही प्रतिकों को ले आते हैं। अगर हमें भविष्य में भी कोई समाज बनाना है, तो उसको भी हम रामराज्य का नाम देना पसन्द करते हैं। हम भविष्य की तरफ सोचते ही नहीं। हमारा भविष्य की तरफ कोई दृष्टि नहीं है। सिर्फ अतीत को पुनरूक्त करने को हम भविष्य माने बैठे हैं। अतीत की पुनरूक्ति नहीं हो सकती, समय पीछे नहीं लौटता, पूरी कौम भी कोशिश करे तो पीछे नहीं लौटता। जैसे बच्चा मां के पेट में वापस नहीं जा सकता, ऐसे कोई कौम पीछे लौटके अतीत में नही जा सकती। जहां से हम गुजर गए, गुजर गए सदा के लिए। जहां से हम निकल गए, निकल गए सदा के लिए। वहां कभी जाना नहीं हो सकता और ध्यान रहे, अगर पहुंच जाएं किसी तरकीब से, तो आज जितना दुःख है, इससे भी बड़े दुःख में पहुंच जाएंगे। अगर कोई जवान किसी तरकीब से, वैज्ञानिक व्यवस्था से, मां के गर्भ में वापस पहुंच जाए, तो जो दुःख पाएगा, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
बूढ़े अक्सर कहते सुने जाते हैं कि बचपन बहुत अच्छा था। लेकिन अगर कोई वैज्ञानिक टैक्नीक खोजा जा सके, और बूढ़ों को बच्चा बनाया जा सके, तो वह फौरन इंकार करेंगे, वो कहेंगे, हमको नहीं होना बच्चा। और अगर बच्चा हो जाएंगे तो, रोएंगे और हाथ-पैर जोड़ेंगे, कि हमें वापस जो थे, बना दो। क्योंकि बच्चा अच्छा था, यह बूढ़े की स्मृति है। अगर बूढ़े को बच्चा होना पड़े तब उसे तकलीफें पता चलेंगी कि बच्चे होने की तकलीफें क्या हैं? कोई बच्चा, बच्चा होने में प्रसन्न नहीं है। सब बच्चे जल्दी बड़ा होना चाहते हैं। बच्चे बड़े होने की अनेक तरह की कोशिशें करते हैं।
मैं एक दिन एक पोस्ट ऑफिस के पास सुबह घूमने निकला था। एक छोटा सा बच्चा, मुंह में सिगरेट दबाए, छोटी सी मूंछ लगाए, हाथ में छड़ी लेके चल रहा था। मुझे देखा तो एक वृक्ष के नीचे भाग कर छिप गया। मैं उसके पीछे भागा, पीछे पहुंचा, जल्दी से उसने अपनी मूंछ निकाल कर खींसे में रख ली। मैंने कहा, तू यह क्या कर रहा है? क्या बात है? पर तू लग बहुत अच्छा रहा है। तो वह

बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि मेरे डेडी जैसी मूछ लगा कर, और सिगरेट पी रहा था। और छड़ी लेकर चल रहा था। अब इस बच्चे को... । अधिकतम बच्चे, सिगरेट पीते हैं, सिर्फ इस रस में, कि सिगरेट पी के ऑथोरिटी, और बड़े होने का मजा आता है। शायद ही कोई ऐसे बच्चे हों, जो सिगरेट सिगरेट के लिए पीते हों, अधिक बच्चे सिगरेट पीना शुरू करते हैं, क्योंकि सिगरेट के साथ युवा होने की, ताकतवर होने की, शक्तिशाली होने की बात जुड़ी है। बड़े अकड़के सिगरेट पी रहे हैं। तो छोटे भी एक कोने में जाकर अकड़ के सिगरेट पीकर बड़े हो जाते हैं। बच्चे बड़ा होना चाहते हैं, बूढ़े बचपन की याद कर रहे हैं। कोई बूढ़ा बच्चा होने के लिए राजी नहीं होगा, अगर किया जा सके तो। लेकिन हम इसी भाषा में सोचते हैं, पीछे-पीछे-पीछे, भविष्य की कोई आइडेंटिटी, कि ये देश भविष्य में कैसा हो, हमारे पास में इसके कुछ कारण हैं। हमने अपने देश के चित्त की जो विभाजन रेखा बनाई है, वो अतीत उन्मुख है। वो पास्ट ओरिएनटेड है। वो यूचर ओरिएनटेड नहीं है। पहले कलयुग बाद में सब कुछ अच्छा था, सब अच्छा पहले, सब बुरा बाद में। हमारे मुल्क में पतन हो रहा है, सारी दुनिया में विकास हो रहा है। हमारा पतन हो रहा है। अच्छे लोग हो चुके हैं, अच्छे तीर्थंकर, अच्छे अवतार, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर सब हो चुके। और आगे, आगे सिवाय शैतानों के और किसी के होने के लिए कोई उपाय नहीं है। आगे अंधेरा है। स्वर्ण युग बीत चुके। आगे तो सिर्फ पाप और नर्क है। पश्चिम की दृष्टि भिन्न है, वह समझ लेनी जरूरी है। वो यूचर ओरिएनटेड है। उटोपियन है। उनका उटोपिया, आगे आने वाला है, उनकी गोल्डन ऐज आगे आने वाली है। हमारी गोल्डन ए.ज बीत चुकी। इसको बदलना पड़ेगा। अगर किसी कौम के मन में यह ख्याल है, कि हमारा स्वर्ण युग पीछे बीत चुका, तो अब आगे क्या करना है? सिर्फ बैठके दुर्भाग्य की प्रतीक्षा करनी है। नहीं, स्वर्ण युग सदा आगे ही होना चाहिए। और ध्यान रहे, स्वर्ण युग सदा आगे रहे तो ही विकास होता है। अगर हमें आगे कुछ अच्छा निर्मित करने की संभावना है, और हमें आगे कुछ आशा है, भरोसा है, कल्पना है, योजना है, तो हम उसे निर्मित कर लेंगे। और अगर कोई निर्माण की योजना आगे नहीं है, और हम सिर्फ पीछे देखने वाले लोग हैं, तो हम आगे भी दुर्भाग्य की कथा को लिखते जाएंगे और जब दुर्भाग्य आएगा, तब हम प्रसन्न होकर कहेंगे कि हमारे शास्त्रों ने पहले से ही कहा है कि कलयुग आ रहा है। पहले ही हमें पता है कि यह होने वाला है। दुर्भाग्य हम रचेंगे और शास्त्रों की गवाही हम बनेंगे। नहीं, ऐसे शास्त्रों से चाहिए छुटकारा। ऐसे विश्वासों से चाहिए मुक्ति, जो देश को भविष्य उन्मुख होने से रोक रहे हैं। नहीं कृष्ण से भी बेहतर कृष्ण हम भविष्य में पैदा करेंगे। और राम से भी बेहतर रामों की भविष्य में सम्भावना है। जगत चुक नहीं गया। और समय व्यर्थ नहीं हो गया, अगर परमात्मा पीछे बुद्ध और महावीर पैदा कर सकता है तो आगे और भी बेहतर बुद्ध और महावीर पैदा कर सकता है। आगे शून्य नहीं है, आगे इन्पोटेंस नहीं है। आगे सब निर्विचार नहीं हो गया है। आगे हम रोज और शक्तिशाली हो सकते हैं। एक बार यह भरोसा और, एक बार यह दृष्टि और एक बार यह स्वप्न, यह उटोपिया देश के मन को पकड़ ले और देश भविष्य उन्मुख हो जाए, तो इस देश के सौभाग्य की कहानी शुरू हो सकती है।
यह तीन बातें मैंने कहीं। इन तीन बातों को आपसे मानने के लिए नहीं कहा
है कि मैं जो कहूं वह आप मान लेंगे। मानने का मैं विरोधी हूं। मैंने जा कहा है, उसे सोचेंगे, शक करेंगे, तर्क करेंगे, संदेह करेंगे। और जो उसमें कचरा हो, उसे यहीं छोड़ जाएंगे, उसे साथ भी नहीं ले जाएंगे। अगर कहीं सोच में, विचार में, तर्क करने, संदेह करने से कोई, एकाध बात भी, ठीक मालूम पड़ जाए, तो वह बात आपकी हो जाएगी, वह मेरी नहीं रह जाएगी। और जो सत्य आपका अपना हो जाता है, वह जीवन में सक्रिय हो जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये भारत का जन्म
ग्यारहवां प्रवचन

मेरा भरोसा व्यक्ति पर है

प्रश्नः पंद्रह अगस्त के दिन मैंने कहा, उसी संदर्भ में पूरे हिंदुस्तान की स्थिति स्वरूप में है, उसके लिए कौन जिम्मेवार? हमारे नेता और हम?

उसके लिए हमारे नेता जिम्मेवार हैं। लेकिन हमारे नेताओं के लिए हम ही जिम्मेदार हैं। अंततः की जिम्मेवारी हमारी ही है। क्योंकि हमारे नेता हमसे कुछ अलग और भिन्न नहीं हैं। और हमने उन्हें चुना है, तो यह हमारी मनोस्थिति के प्रमाण हैं। हमारी जिम्मेवारी में, दो-चार बातें बहुत बुनियादी हैं। जैसे एक तो हमारी कोई राजनीतिक चेतना, कोई पोलिटिकल कनसनट्रेट नहीं है। आजादी की लड़ाई भी जो हम संघर्ष कर रहे थे, वह भी हमें राजनीतिक रूप से चेतन नहीं कर पाया। और न करने का कारण था कि हिंदुस्तान की पूरी परम्परा धार्मिक चेतना की परम्परा है। उसके पास कोई राजनीतिक चेतना नहीं। स्वभावतः इसीलिए हम इतने दिन तक गुलाम भी रह सके। क्योंकि हमारे धार्मिक मन को हमारी राजनीतिक गुलामी से कोई अंतर नहीं पड़ता। यदि हमने स्वतंत्रता के संबंध में भी कभी सोचा है, तो वो आतीक स्वतंत्रता की बात है। हमारा शरीर भी स्वतंत्र हो, हमारा सामान्य जीवन भी स्वतंत्र हो, उसके आगे हमारी कोई कामना नहीं थी। हमारी आत्मा मोक्ष जाए, तो आत्मा तो जंजीरों में भी मोक्ष जा सकती है और जेलखाने में भी मोक्ष जा सकती है। इसलिए भारत के पास जिसको पोलिटिकल कनसनट्रेट कहें, वह है ही नहीं।
आजादी के बाद भी वह नहीं है, क्योंकि आजादी से वह नहीं जग जाएगी। तो एक
तो राजनैतिक बोध की कमी हमें भारी नुकसान पहुंचा रही है। यह हमें जगाना पढ़ेगा। और हमें यह समझना पड़े कि राजनीति हमारे जीवन के सारे पहलुओं को भेदती है। चाहे वह धर्म हो, चाहे कला हो, चाहे साहित्य हो, चाहे पेट हो और चाहे मस्तिष्क। राजनीति सर्वग्राही है। राजनीति जिंदगी का एक पहलू अब नहीं रह गई, जैसे वह कभी थी। यानि जिंदगी ऐसी भी हो सकती थी कि गैर राजनीतिक हो, अब नहीं हो सकती। अब तो वह आदमी जो राजनीति में भाग नहीं लेता, वह भी अपने न लेने से भाग ले रहा है।
अगर आज एक सन्यासी राजनीति में कोई उत्सुकता नहीं लेता, तो भी उन लोगों के हित में काम कर रहा है जो चाहते हैं कि राजनीति में उत्सुकता कम लोग लें। तो यह हमें तोड़ना पड़े। और राजनीति का जो सर्वग्राही अस्तित्व है, राजनीति अब एक खंड नहीं है जीवन का, अब सारे जीवन को उसने आग्रहित कर लिया। यह बोध पैदा करने की जरूरत है, वह भारत के मन में नहीं है।
दूसरी बात, आजादी की लड़ाई में कई तरह की भ्रांतियां पैदा की हैं। एक
तो भ्रांति यह पैदा की कि आजादी की लड़ाई में हमें ऐसे सपने दिखाए जो झूठे, मिसाल के तौर पर ऐसा हमारे मन में आजादी के संघर्ष के दिनों के नेताओं ने यह भाव पैदा किया, जैसे अंग्रेज की गुलामी ही सब बीमारियों का कारण है। अंग्रेज गया कि सब बीमारियां गईं। सब बीमारियों का कारण अंग्रेज हैं। तो अंग्रेज गया कि बीमारियां गईं। फिर जैसे हमें कुछ और करना नहीं है। एक काम हमने कर लिया कि अंग्रेज चला गया, तो बात खत्म हो गई, क्योंकि बीमारी उसकी वजह से थी। लेकिन यह बात झूठ है। सच बात तो यह है कि हमारी बीमारियों की वजह से अंग्रेज था। हमारी बीमारियां ज्यादा डीप रोटेड थी, अंग्रेज बहुत बाद में आया। तो अंग्रेज हमारी बीमारियों का कारण नहीं था, बल्कि हमारी बीमारियां ही अंग्रेज के हिंदुस्तान में रहने के लिए कारण थी। तो अंग्रेज तो चला गया और बीमारियां वहीं की वहीं हैं। न केवल वहीं की वहीं हैं, बल्कि अंग्रेज ने दो सौ साल तक उन बीमारियों से कई तरह से लड़ने की भी कोशिश की, वह लड़ाई भी बंद हो गई। और अंग्रेज ने एक बुनियादी भूल की थी उस लड़ाई में, वह अंग्रेज के पक्ष में नहीं थी, हमारे पक्ष में थी कि अंग्रेज ने हमें पहली बार हमारा जो पूर्वई कुआं था। उसके बाहर हमें निकाल कर बाहर खड़ा कर दिया। एक हमारा मन था क्लोज्ड, उसके सब तरफ से दरवाजे तोड़ दिए। मेरी अपनी समझ

में, अगर अंग्रेज भारत को पाश्चात्य ढंग की शिक्षा न देते, तो भारत अनंतकाल तक गुलाम रह सकता था। क्योंकि जैसे ही उन्होंने पश्चिमी ढंग की शिक्षा दी, हमारे मन में पश्चिमी मूल पहली दफा जाग्रत हुआ। स्वतंत्रता, लोकतंत्र यह सारी की सारी मूल भावनाएं हम पश्चिम से लाए हैं।

प्रश्नः उन्होंने तो जैसे यह पश्चिमी शिक्षा यहां दाखिल की, तो वह तो उनके लिए कारक पैदा करने के लिए ही की थी। उस वक्त तो उनको ये ख्याल न होगा कि हिन्दुस्तान वाले इतनी तरक्की करेंगे?

नहीं, तरक्की तो कुछ खास नहीं की। लेकिन मैकाले को, मैकाले ने कोई यह शिक्षा यहां इन्ट्रोड्यूज्ड की थी, कि हिन्दुस्तान विकसित हो जाएगा, इसलिए की थी कि उनकी मशीनरी ठीक चल सके। लेकिन मैकाले हिन्दुस्तान की आजादी का पिता है, गांधी नहीं।

प्रश्नः उसे इतना खयाल नहीं आया होगा कि यह लोग पढ़ते-पढ़ते इतना आगे बढ़ जाएंगे? जो हमसे भी टक्कर लेंगे।

नहीं, यह कारण नहीं है। उन्हें कुछ और बातों का ख्याल नहीं हुआ। जैसे भारत के पास एक संतोष की लंबी परंपरा है। असंतोष भारत के लिए कोई मूल्य नहीं रहा। संतोष ही मूल्य है। सब स्थितियों में दुःख, पीड़ा, गुलामी कुछ भी हो, हम संतुष्ट हैं। पश्चिम में पिछले तीन सौ वर्षोंं में असंतोष के एक नए स्वर ने जन्म लिया। किसी चीज से संतोष नहीं है। इसलिए हर चीज को बदलना है। असंतोष अंततः क्रांति बना। हमारे लड़के भी पश्चिम जाके शिक्षा लेकर आए और असंतोष का स्वर लेकर आए। उस असंतोष के स्वर ने ही यहां भी क्रांति की और स्वतंत्रता की बात पैदा करनी शुरू की।
दूसरी बात, पश्चिम की शिक्षा ने पहली दफा, हिन्दुस्तान का जो बंद दिमाग था, उसके बाहर भी दुनिया है, उसका ख्याल दिया। अंग्रेजी के माध्यम से हम पहली दफा सारी दुनिया से संबंधित हुए। इस संबंध ने पहली दफा तुलना पैदा की। और हमें पता लगा कि हम कहां खड़े हैं? और साथ ही पश्चिम की समृद्धि, पश्चिम का लोकतंत्र, उसको जब देखकर हमारे बच्चे लौटे हैं, स्वभावतः उनके मन में ख्याल उठा कि यहां भी यह सब होना चाहिए। मजे की बात यह है अंग्रेजों से हिन्दुस्तान नहीं लड़ रहा था। अंग्रेजों से अंग्रेजों के पढ़ाए हुए लड़के ही लड़ रहे थे। पूरा हिन्दुस्तान लड़ाई लड़ा भी नहीं है आजादी की। सिर्फ अंग्रेजी शिक्षित वर्ग अंग्रेजों से लड़ा है। पश्चिम के साथ हमारा जो संबंध था, जिसने हमें सबल भी किया, स्वतंत्रता का बोध भी दिया, एक राजनीतिक चेतना की थोड़ी झलक भी दी। आजादी के बाद वो भी खो गई। आजादी के बाद फिर हमने अपने पूरे के भीतर बंद होने की कोशिश की। उसको कोई भारतीयकरण कहे, उसके कुछ और नाम दे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, या नाम न भी दे, फिर भी हम अपने गड्ढे में वापिस पहुंचने की कोशिश की हैं। अंग्रेजी को भी बाहर निकालो, पाश्चात्य शिक्षा को भी बाहर निकालो, पश्चिमी ढंग भी मत जियो, पश्चिमी ढंग के कपड़े भी मत पहनो। हमने धीरे-धीरे, फिर से अपने पूरे को मजबूत किया है और अपनी दीवालें मजबूत की हैं। इसकी वजह से ये बीस वर्ष हमारी चेतना के विकास के वर्ष नहीं हो सके।
भारत का जो नेतृत्व है, और जो राजनैतिक दल हैं, इन सबकी मनोस्थिति भी, मुझे चर्चिल का एक वक्तव्य ख्याल में है कि पंद्रह अगस्त, उन्नीस सौ सैंतालीस को आजादी के बाद चर्चिल ने एक वक्तव्य दिया, और उसने कहा कि आजादी आप दे रहे हैं, लेकिन हिंदुस्तान बीस साल के बाद वहीं होगा, जहां से मुगलों से हमने लिया था। इतना वापिस खड़ा हो जाएगा अपनी जगह पर। इतने खंड होंगे, इतना उपद्रव, इतना झगड़ा और कन्यूजन होगा। चर्चिल की भविष्यवाणी सही होती मालूम पड़ रही है। और ऐसा नहीं लगता कि आजादी मिलने से हमने कोई विकास किया है, बल्कि ऐसा लगता है कि किन्हीं मामलों में हम पतित हुए हैं, जैसे, आजादी के पहले कम से कम गुलामी के कारण ही सही भारत के जीवन में एक तरह का अनुशासन था। आजाद होकर वो अनुशासन सब नष्ट हुआ। यानि हमें ऐसा लगा

क्योंकि हम स्वतंत्र हो गए हैं, इसलिए सड़क पर ट्रैफिक के नियम भी मानने की कोई जरूरत नहीं है।
मैंने सुना है कि रूस में जब पहली दफा क्रांति हुई तो क्रांति के बाद
एक बूढ़ी औरत बीच सड़क पे चल रही थी। और एक ट्रैफिक के आदमी ने कहा कि तू कहां चल रही है? तो उसने कहा कि अब हम स्वतंत्र हैं। अब कोई नियम लागू नहीं होता। अब वो गए जार के दिन जबकि बाएं या दाएं चलना पड़ता था। करीब-करीब हमारे मन पर ऐसा हुआ कि गुलामी की वजह से जो-जो रोग हमारे दबे थे, और प्रकट नहीं हो पाते थे, वह सब-के-सब रोग एक साथ प्रकट हो गए। स्वतंत्रता ने अंग्रेजों को तो हटाया, हमारी एक बीमारी नहीं हटाई, बल्कि हमारी सब दबी हुई बीमारियों को उभारने का काम... । सारी बीमारियां उभर के खड़ी हो गईं। तो भारत के नेताओं ने जो भरोसा दिया था कि अंग्रेज अकेली बीमारी हैं, और उसके हटने से सब ठीक हो जाएगा। वो गलत सिद्ध हुआ। गलत था। और हमारी सारी बीमारियां जो सदा से थी हमारे भीतर, वो वापिस अपनी जगह प्रकट होकर खड़ी हो गईं।
यह सारी की सारी बीमारियां भी हिन्दुस्तान को राजनीतिक चेतना देतीं। कोई आदमी ब्राह्मण की तरह चेतन है, कोई आदमी क्षत्रिय की तरह चेतन है। हिन्दुस्तान की पूरी राजनीति जातिवाद की राजनीति है, गहरे में। ऊपर कोई कुछ भी बात कर रहा हो। गहरे में सारा मत जो है, वह मुसलमान का मुसलमान को मिल रहा है, हिन्दू का हिन्दू को मिल रहा है। और सारा-का-सारा जातिवाद भीतर काम कर रहा है। इसमें हमारी पूरी की पूरी जो राष्ट्रीय चेतना होनी चाहिए, राजनीतिक, वह चुनाव को नहीं पैदा होने देती क्योंकि चुनाव हमारे कुछ और हैं। मैं उसको वोट करूंगा, जो हमारी जाति का है।
दूसरी बात, हिन्दुस्तान के मन में हजारों साल से समृद्ध होने की कोई कामना नहीं है। इसमें दरिद्रता तृप्ति बना देती है। इसलिए जो एक आकांक्षा चाहिए विकास की, उन्नत होने की, विस्तार की वह नहीं है। और मेरी अपनी समझ ऐसी है कि जो कौम विस्तार नहीं करती, वह सिकुड़ती जाती है। और जो अमीर नहीं होना चाहता, वह गरीब होता चला जाता है।

प्रश्नः आप जो कह रहे हैं कि हमारे राजनैतिक कांशसनेस नहीं आई है। और हमारे नेताओं ने भी यह हमको सिखाया हुआ नहीं है। तो हमारे नेताओं को जान-बूझ कर यह पता था कि हमारे पास में यह राजनैतिक कांशसनेस नहीं है, इसकी हम कोशिश नहीं करें?

नहीं... । यह जान-बूझ कर पता नहीं था। हमारा नेता जो है, उसकी स्थिति बहुत कम समझ-बूझ की है। और आजादी के वक्त में जो नेतृत्व था, वह लोगों को उखाड़ने के लिए कुछ भी कह रहा था। और लोगों को लड़ाने के लिए कोई भी सपने दे रहा था। वो बहुत साफ नहीं था। क्योंकि नेताओं को भी यही ख्याल था। गांधी जी भी आजादी के बाद इतने फ्रस्टेटिड थे, जिसका हिसाब नहीं। क्योंकि गांधी जी को भी यह ही ख्याल था कि जो हमने कहा है वह आजादी के बाद एकदम हो जाएगा। अमन हो जाएगा, भाईचारा हो जाएगा, शान्ति हो जाएगी, सब सुख हो जाएगा, स्वावलंबन हो जाएगा और देश सुखी हो जाएगा, और लौट जाएगा गुरू के दिनों में और रामराज आ जाएगा, यह सब ख्याल थे। हम जिन नेताओं के नीचे, पिछले पचास सालों में जिए हैं, उन नेताओं के पास भी बहुत वैज्ञानिक सूझ-बूझ नहीं थी। काव्यात्मक सूझ-बूझ थी। पोएट्री थी। तो वह पोएट्री तो काम नहीं करती। हां, पोएट्री लड़ा सकती है। कविता लड़ा सकती है। लेकिन जब ताकत हाथ में आएगी तब वह बिल्कुल इंपोटेंट सिद्ध होगी। तो क्या करिएगा कविता का? तो अगर हिन्दुस्तानी गुलाम रहता, तो हम लड़ते चले जाते और मैनर्स अपने बनाए चले जाते, और रामराज की बातें करते चले जाते। सारी कठिनाई तभी होती है, जब नेता हाथ में, उस नेता के हाथ में जो कि जनता को उभारने की तरकीब जानता था, ताकत आती, तब पता चलता कि उसको सिर्फ उभारने की ताकत पता थी। उसे और कोई क्रियेटिव मुल्क में कुछ करने के लिए उपाय नहीं था।
तो हमारे नेता की तकलीफ है, और वह तकलीफ यह है कि उसके पास कोई वैज्ञानिक सूझ-बूझ नहीं है, न समाज के जीवन के वैज्ञानिक नियमों का कोई

पता है। अब जैसे कि हमारा नेता आजादी के वक्त में अगर चरखे की बात कर रहा था, तो हमने कभी भी नहीं सोचा कि चरखे की बात करने वाले नेता के हाथ में अगर ताकत आ जाएगी, तो यह क्या करेगा? यह बड़ा मुश्किल में डाल देगा। यह बहुत मुश्किल, इसके पास कोई टैक्नोलॉजिकल कोई ख्याल नहीं है। हिन्दुस्तान के जो सवाल हैं, जो कठिनाइयां हैं, जो जरूरतें हैं, वह आज चरखे से हल होने वाले नहीं हैं, उसके लिए तो बड़ा विशाल टैक्नोलॉजिकल इंतजाम चाहिए। और चरखे की बुद्धि जिस पर थी, और जो सोचता था, चरखा कातने से हमने अंग्रेजों को भगा दिया, तो हम चरखा कातके सब बीमारियों को भगा देंगे। अब जब अंग्रेज सब भाग गया, तो और क्या बचेगा? वह गलत ख्याल में था। अंग्रेज चरखा कातने से नहीं भाग गये। और चरखा कातने से कुछ नहीं भगेगा, हम रोज बीमार होते चले जाएंगे, जींर्ण होते चले जाएंगे।
तो हिन्दुस्तान के नेता के पास एक काव्य की सूझ-बूझ जो मेरी अपनी समझ
है कि हिन्दुस्तान के पास काव्य की सूझ-बूझ बहुत पुरानी है। हम कविता करने वाले लोग हैं, इसलिए हम बहुत बुरी तरह परेशान रहे। कविता भी जरूरी है लेकिन चटनी की तरह जरूरी है भोजन में, इससे ज्यादा वो जिंदगी बन जाए, तो जान ले उड़े। अगर पूरा भोजन चटनी का ही करना पड़े तो उस आदमी की मौत निश्चित है।
तो आजादी आने पर हमको पहली दफा पता चला कि हमारे पास कोई रचनात्मक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक दृष्टि नहीं है। अब हम क्या करें? नेता भाषण देना जानता था, जेल जाना जानता था, लकड़ी खाना जानता था, धरना देना जानता था। वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया, कि जो नेता ताकत में गए, वह बेचारे कठिनाई में पड़ गए, क्योंकि जो वह जानते थे, उससे कुछ संबंध न था अब। जो नेता उनकी ताकत में नहीं जा पाए, वह फिर धरना देना उन्होंने शुरू कर दिया, और दूसरे आंदोलन चलाने शुरू कर दिए। हिन्दुस्तान का नेतृत्व दो हिस्सों में बंट गया था। सत्ता धारी जो हो गए, उनको कुछ पता नहीं था कि अब क्या करना है? और जो सत्ता में नहीं जा सके, उनको बिल्कुल पता था कि क्या करना है? वह अपना काम जारी रखे। उन्होंने बीस साल में हिन्दुस्तान के मन को नीचे से विकृत किया। उन्होंने हर टुच्चे मुद्दों पर आंदोलन चलाए। सत्याग्रह किए कि एक कारखाना इस गांव में है तो उस गांव में हो, उसपे गोलियां चलवाई, उसपे आंदोलन चलवाए। और जो आदमी ताकत में पहुंच गया था, उसे कुछ भी पता नहीं था कि वह क्या करे? और वह आदमी तो तब एक ही रह गया कुल जमा कि वह ताकत में किस तरह बना रहे। स्वभावतः उसके पास कोई प्लान नहीं था, क्योंकि अगर उसके पास प्लान होता तो उसे ताकत में बने रहने की कोशिश न करनी पड़ती। अगर देश को वह सुख देता, समृद्धि देता और देश को भविष्य देता, तो हम उसे ताकत में बनाए ही रखते। यह कोई सवाल ही नहीं था। हां, लेकिन वह दे नहीं सका, तब उसके सामने एक ही सवाल रह गया कि जो मैं दे सकता था, देना चाहिए था, वह दे नहीं सका हूं और मुझे ताकत से हटा दिया जाएगा। तो वह ताकत पकड़.ने में लग गया। तो पूरे हिन्दुस्तान का नेतृत्व कुर्सी की पकड़-धकड़ में पड़ा हुआ है, उसे अब कोई और दूसरा प्रयोजन नहीं है। जो कुर्सी के बाहर है, वह जरूर उपद्रव करवाता है। वह कुर्सी में जाने को उत्सुक है। जो कुर्सी के भीतर वह जोर से कुर्सी को पकड़े रहता है, और उपद्रव करने वाले को तोड़ता रहता है।

प्रश्नः आजकल जो हमारे देश में प्रक्रिया चल रही है, सोशियलिज्म के नाम पर, और यह इकोनोमिक पॉलिसी के नाम पर इसके बारे में आपका क्या ख़्याल है? यह कुछ सही तरीका है?

नहीं, यह देश को फिर झूठे सपने देना है। और यह फिर ट्रिक का उपयोग है। जैसा कि 1947 के पहले हम आजादी के सपने देखते रहे कि आजादी आने से सब कुछ आ जाएगा, हालांकि आजादी आने से कुछ भी नहीं आता, आजादी आने से सिर्फ जिम्मेदारियां आती हैं। गुलाम के ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं होती। और अगर गुलाम भूखा मरता है, तो मालिक जिम्मेदार होता है। लेकिन मालिक हट जाए तो फिर गुलाम की जिम्मेदार रह जाता है। तो आजादी के साथ सिर्फ जिम्मेदारियां आती हैं। और जिम्मेदारियां झेलने के लिए साहस और सामर्थ्य की जरूरत पड़ती

है। सूझ-बूझ की जरूरत पड़ती है। वो एक सपना देकर हिन्दुस्तान का नेतृत्व चलता था। अब उनको बड़ी कठिनाई हो गई थी कि वह अब क्या करें? अब वह दूसरा सपना देना चाहते थे। और वह सपना है समाजवाद, कि समाजवाद आ जाए तो सब ठीक हो जाएगा। यह पहले सपने से भी झूठा सपना है। क्योंकि मजा यह कि समाजवाद उस मुल्क में ही आ सकता है, जहां कि संपत्ति पैदा हुई हो। हमारे जैसे गरीब मुल्क को समाजवाद की बातें करना बिल्कुल ही पागलपन है। पागलपन इसलिए कि समाजवाद का मतलब है बंटवारा, और बंटवारा होता है धन का। और धन तो होना ही चाहिए, अन्यथा हम सिर्फ गरीबी को बांटेंगे। और उससे कुछ फल नहीं होने वाला। नुकसान जरूर होगा। क्योंकि हिन्दुस्तान में जो थोड़ी बहुत संपत्ति कुछ लोगों के पास है अगर यह वितरित हो जाए, या न्यूनता में आ जाए, तो यह जो उत्पादन करते थे, इनके उत्पादन की प्रेरणा मर जाएगी। क्योंकि उसका कोई मतलब नहीं रह जाता। जब सारी संपत्ति सरकार के हाथ में जानी है, और एक सीमा पर टैक्.जेशन इतना होना है कि सारा-का-सारा मुनाफा सरकार के हाथ में ही जाने वाला है, तो मुनाफे की इच्छा भी मरती है। पैदा करने की इच्छा भी मरती है, और देश कुछ पैदा कर सकता नहीं। और देश बिल्कुल ही काहिल है। तो ऐसी स्थितियों में अगर समाजवाद लाया गया, कानूनी ढंग से थोप दिया गया मुल्क के ऊपर, तो हम और कठिनाई में पड़ जाएंगे, हम जो थोड़ा-बहुत पैदा कर रहे हैं, वह पैदाइश बंद हो जाएगी। सरकार के हाथ में जितना उद्योग जाता है, सबका सब हानि में चलने लगता है, फिर भी हम अंधे लोग, हम कहते हैं कि सारे उद्योग को राज्य के हाथ में दे देना चाहते हैं। राज्य जो उद्योग चला रहा है, उसमें वह अपना निकम्मापन हर तरह से सिद्ध कर रहा है। फिर भी हम सोचते हैं कि सारा राज्य के हाथ में चला जाए उद्योग, नेशनलाइज हो जाए, तो बड़े सुख की और स्वर्ग की दुनिया आ जाएगी।
अब यह फिर हम सपना देख रहे हैं। यह पहले सपने से भी ज्यादा झूठा सपना है। और समाजवाद अगर इस तरह थोप दिया गया, तो हमारा मुल्क और भी फ्रस्ट्रेशन में, और भी विषाद में घिर जाएगा। तो मेरी अपनी समझ ये है कि यह सिर्फ एक पॉलिटिकल ट्रिक है। समाजवाद की बात को उठा कर, अब जो लोग सत्ता में हैं, वे कुछ दिन और सत्ता में रहने की चेष्टा में रहेंगे। क्योंकि यह बात दिखाई पड़ गई है कि उनकी ऊपर दौड़-धूप सबको मालूम है, पूरे मुल्क को। अब वह सिर्फ कुर्सी पकड़ने के लिए उत्सुक हैं। तो अब मुल्क को फिर धोखा देना जरूरी भी नहीं, हम कुर्सी पकड़ने को उत्सुक नहीं, हम तो कोई वाद लाने को उत्सुक हैं। हम तो समाजवाद लाने को उत्सुक हैं, इसलिए सब दांव अब समाजवाद पर लगा दिया जाएगा कि समाजवाद आ जाएगा तो सब ठीक हो जाएगा। मेरी अपनी मान्यता ऐसी है कि समाज की बीमारियां मल्टीकॉजल हैं, बहुकारणीय। इसलिए इस तरह के एकांगी नारे सब खतरनाक हैं कि आजादी आ जाएगी, तो सब ठीक हो जाएगा कि समाजवाद आ जाएगा तो सब ठीक हो जाएगा। यह एकांगी नारे हैं। और हमें मुल्क की जो बहुआयामी पीड़ा है, उसको अनेक-अनेक मोर्चों से टक्कर लेने की जरूरत है। और फिर मजे की बात यह है कि हमारी यह ही तो तकली.फ है कि हमारे पास पूंजी नहीं है। हमारी तकलीफ यह नहीं है कि हमारे पास पूंजी है, और कुछ हाथों में। ये हमारी तकलीफ होती तो बात थी, हमारी तकलीफ यह कि हम पर पूंजी नहीं है। और जो कुछ हाथ हमें दिखाई पड़ रहे हैं, उनके पास इतनी अल्प पूंजी है, कि वह तभी तक दिखाई पड़ती है, जब तक कुछ ही हाथों में हैं, अगर वो बंटती है तो कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेगी।
हां, बिल्कुल ही इस तरह कुछ हल होने वाला नहीं है। तो मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तान को अभी पचास-सौ वर्ष कंस्टेंटली पूंजीवाद का प्रयोग करना चाहिए। और इतनी संपत्ति पैदा कर लेनी चाहिए कि पूंजीवाद का काम पूरा हो जाए। पूंजीवाद का काम समाजवाद नहीं कर सकेगा और अगर करवाना है समाजवाद से, तो फिर हमें बंदूक का उपयोग करना पड़ेगा, वह भी हम करने में कमजोर हैं। वह भी हम नहीं कर सकते।
स्टैलिन और माओ हो तो वह भी हो जाए, स्टेलिन ने कोई एक करोड़ लोगों की हत्या की विश्व में। तो अब जब इतनी हत्या के बाद सफल नहीं हो सके, तो हमारी तो कोई रास्ता नहीं, हम अहिंसावादी, और हम समाजवाद लाने में सफल हो जाएं। इस मुल्क में तो एक ही उपाय है और उपाय अगर कहीं से भी जाता है तो वाया

वाशिंगटन जाता है। वह वाया मास्को नहीं जाता। समाजवाद वाया वाशिंगटन ही इस मुल्क में संभव है कि हम इस मुल्क को समृद्ध करें, समृद्धि के सारे व्यक्तिगत जो भी इन्सेंटिव हैं, उनका हम पूरा उपयोग करें, मुल्क की लिथार्जी तोडं.े। और उसके लिए हम बहुत उपाय कर सकते हैं, लेकिन समाजवाद की वजह से वो हम न कर पाएंगे, नहीं तो मेरी दृष्टि में जो आदमी जितना ज्यादा कमाता है, उस पर टैक्जीशन उतना कम होता जाना चाहिए। एक आदमी लाख रूपये कमाता है तो ज्यादा टैक्स होना चाहिए, दो लाख कमाता है, कम हो जाना चाहिए। तीन लाख कमाता है और कम हो जाना चाहिए। पांच लाख कमाता है तो टैक्स के बाहर हो जाना चाहिए, और दस लाख कमाता है तो मुल्क को उसको कुछ उपाधियां भी और सम्मान भी देना चाहिए। हमें इंसेंटिव बढ़ाना चाहिए कि लोग पैदा करने में उत्सुक हों। हम इंसेंटिव कम करने में उत्सुक हैं। यह रोक लगाओ। तो मेरी दृष्टि में समाजवाद है फीलिंग का ख्याल और मेरी दृष्टि में मुल्क को जरूरत है लोरिंग की, फीलिंग की नहीं। नीचे से हमें तय करना चाहिए कि जो आदमी सौ रूपये से कम कमाता है, वह अपराधी है। और मुल्क को कोशिश करनी चाहिए, और उस आदमी को नैतिक भावना भी देनी चाहिए कि सौ से कम कमाना तो अपराध है। और मुल्क को भी जानना चाहिए कि हम सौ से कम कमाने को अगर आदमी को मजबूर कर रहे हैं तो यह अपराध है। सौ के नीचे कोई नहीं। हमें नीचे से लोरिंग मान लेनी चाहिए कि इससे नीचे हम किसी आदमी को नहीं जीने देंगे। उसके लिए हम कोशिश करेंगे। फीलिंग हमें बांध लेनी चाहिए कि इसके ऊपर हम किसी को न जाने देंगे। हम कर रहे हैं उल्टा।
तो समाजवाद मेरे लिए फिर एक सपना है, जो यह धोखेबाज सपना है। और दस-पन्द्रह साल के लिए मुल्क को भटका जाएगा। और अगर समाजवाद की स्थिति हम नहीं ला सके, जो कि हम नहीं ला सकते, तो इसका मतलब फिर मुल्क सिर्फ सिवाय कमिश्नरों के हाथ में जाने का कोई और उपाय नहीं रह जाएगा। एक दफा मुल्क को समाजवाद का ख्याल दे दिया, इसलिए कम्यूनिज्म बहुत उत्सुक है इस बात से कि आप समाजवाद का खयाल तो दे दें, समाजवाद आप पूरा नहीं कर पाएंगे, और मुल्क को समाजवाद का खयाल मिल गया, तो कंयूनिज्म के लिए फसल काटने का मौका हो जाएगा। क्योंकि वो कहेगा कि अब हम दे सकते हैं समाजवाद। एक बात से तो हम राजी हुए कि समाजवाद चाहिए, और आप समाजवाद दे नहीं सकते, लेकिन हम दे सकते हैं। तो इंदिरा जी और उनका सारा गु्रप कम्युनिस्टों के लिए रास्ता तैयार कर रहा है। ये तो कुछ कर नहीं पाएंगे।

प्रश्नः यह सीधी-साधी बात उन लोगों के समझ में क्यों नहीं आती?

उसके कारण हैं। उनके इंवेस्ट के खिलाफ है ये सीधी-साधी बात। इंदिरा
जी के पक्ष में नहीं है। क्योंकि आज कठिनाई क्या हो गई है, मुल्क में गरीब है बड़ा, तो वह है बहुमत। अमीर है अल्पतम, सबसे छोटी मायनोरिटि अमीर की है। बड़ी मेजोरिटि गरीब की है। आज गरीब की भावनाओं के अमीर के खिलाफ भड़काने से सरल और कोई काम नहीं है। अमीर के खिलाफ गरीब बुनियादी रूप से होता ही है, स्वभावतः ईर्ष्या से भरा होता है। उसकी इस ईर्ष्या को आज जगाया जा सकता है। और गरीबी इतनी बढ़ गई है कि अब दो ही उपाय हैं, या तो गरीब राजनेता पे टूट पड़ेगा, और कहेगा कि तुम हमें गरीब बनाए हुए हो, या राजनेता कोई और पकड़ाए इसके हाथ में कि यह तुम्हें गरीब बनाए हुए है। अब मैं क्या कर सकता हूं पूंजीपति तुम्हें चूसे जा रहा है। तो हम क्या कर सकते हैं, जब तक हम पूंजीपति को न रोकें। तो इसके उपाय खोजने की जरूरत पड़ गई। बीस साल में राजनेता ने कुछ भी नहीं किया है। तो आज मुल्क राजनेता की गर्दन पकड़ने को तैयार है कि आप ने कुछ भी नहीं किया। अब राजनेता के लिए जरूरी है कि कोई और गर्दन बता दे कि ये गर्दन है, जिसको तुम पकड़ो, हम कर ही क्या सकते हैं? यह शोषण किये चले जा रहे हैं। तो राजनेता के लिए जरूरी है कि वह धनपति को पकड़ा दे, जनता के हाथ में। सीधी-साधी बात है, लेकिन उसके हित में नहीं है। उसके लिए सरलतम यही है कि वह अमीर को पकड़ा दे गरीब के हाथ में। और गरीब को एकदम जंचती है यह बात। मजदूर को जंचती है कि वह परेशान है, क्योंकि पूंजीपति शोषण कर रहा है। जबकि सच्चाई उल्टी है, अगर यह फैक्ट्री बंद होती और

पूंजीपति शोषण बंद करता तो वो परेशान नहीं होगा, मरेगा सिर्फ। क्योंकि परेशान होने के लिए भी जिंदा होना जरूरी है। वो सिर्फ मरेगा। यह पूंजीपति उसका शोषण ही नहीं कर रहा है, उसको जिंदगी बनाए रखने में भी सहयोगी हो रहा है। इसका कोई ख्ंयाल नहीं है। छोटे झोपड़े वाले को लग रहा है कि बड़े मकान वाले ने मेरे मकान को छोटा करके बड़ा बना लिया है। जबकि असलियत उल्टी है। असलियत यह है कि बड़ा मकान बन रहा है इसलिए दस छोटे मकान बन पा रहे हैं। लेकिन यह दस छोटे मकान क्रोध से भरे हुए हैं, बड़े मकान के प्रति। इनके अहंकार को चोट लग रही है। राजनेता इस मौके को नहीं चूकेगा। राजनेता को ये बात साफ दिखाई पड़ रही है, या तो खुद की गर्दन दब जाएगी या किसी की गर्दन बताओ।
तो सदा ऐसा करना पड़ता है, जैसा हिटलर को जर्मनी में करना पड़ा। जब हिटलर कुछ नहीं कर सका, तो एक ही सवाल था कि उसे स्कैप वोट चाहिए, यहूदी को खतरा हो जाएगा। यहूदी सब कर रहा है। तो यहूदी का फंसाने में सहयोग मिला। क्योंकि यहूदी सिर्फ यहूदी ही नहीं था, धनपति भी था। जर्मनी का ज्यादा से ज्यादा धन यहूदी के पास था। एक तो यहूदी था, ईसाई उसके खिलाफ थे। दूसरा वह धनपति था, गरीब उसके विरोध में था। यहूदी को फंसा दिया। यहूदी को फंसाते ही से हिटलर निश्चिंत हो गया। हिटलर निश्चिंत हो गया, और जनता की आंख यहूदी पर पहुंच गई। हिन्दुस्तान के नेतृत्व को अब वही क्षण आ गया है। और इसलिए इंदिरा जी के हिटलर हो जाने की पूरी संभावना है। पूरी संभावना है। क्योंकि ट्रिक वही हैं। अब उनको फंसा देना है अमीर को। अब उनको फंसा देना है अमीर को। अमीर को यहां गर्दन दबाने लगेगी, जनता का रूख अमीर की तरफ हो जाएगा, और जितना अमीर की तरफ जनता का रूख होगा, उतनी जनता की दीनता और दरिद्रता बढ़ेगी। कारखाने बंद होंगे, हड़तालें होंगी, सरकार घाटे में चली जाएगी। और जितना जनता दुःखी होगी उतना अमीर को पकड़वाने के लिए और तैयारियां करती चली जाएगी। और जब तक जनता अमीर से जूझे, तो नेता अपनी जगह पर सुरक्षित है। और इतनी बड़ी जनता की भावना को अपने अनुकूल लाने के लिए इससे ज्यादा सरल कोई उपाय नहीं हो सकता।
आजादी के वक्त में हिन्दुस्तान में कोई पार्टी नहीं थी। पार्टी न होने का कारण था, क्योंकि जिससे हम लड़ रहे थे, वह हम सबका दुश्मन था। इसलिए एक पार्टी काफी थी। आजादी के बाद पच्चीस पार्टियां मुल्क में हो गईं। क्योंकि अब एक दुश्मन न था। अब इंदिरा जी फिर एक दुश्मन पैदा कर रहीं हैं, जिसके खिलाफ बाकी मुल्क को इकट्ठा किया जा सके। आप अंग्रेज तो नहीं है, जिसके खिलाफ कॉमन जैलेसी जगाई जा सके। लेकिन आप पूंजीपति हैं, इसके खिलाफ कॉमन जैलेसी जगाई जा सकती है। पूंजीपति को बिल्कुल विदेशी बनाया जा सकता है। और यह बन जाएगा इसमें कठिनाई नहीं। तो यह सीधी-साधी बात, मुल्क को अहित में ले जाने वाली बात भी आज नेता को समझानी कठिन है क्योंकि नेता को साफ दिखाई पड़ रहा है कि ताली किस बात से बजती है। जनता का वोट किस बात से मिलेगा? और जनता को पता नहीं कि वह अपनी ही आत्महत्या के लिए वोट दे रही है। और जनता को कोई पता नहीं है कि वह जो कर रही है, वह उससे मुल्क मरेगा। अब इसमें कठिनाई क्या है कि पूंजीपति जनता को समझाने में असमर्थ है। क्योंकि पूंजीपति अगर जनता को समझाने जाएगा, हम तुम्हारे पक्ष में हैं, तो जनता मान नहीं सकती। और पूंजीपति खुद ही कमजोर है, वह हिम्मत नहीं जुटा पाता, कि वह कहे हम तुम्हारे पक्ष में हैं, वह कैसे कहे मजदूर से कि वो उसके पक्ष में है? उसने कुछ भी नहीं किया है। जिससे साफ दिखाई पड़े कि वो पक्ष में है। और अगर एक पूंजीपति ने मंदिर बनवा दिए, एक पूंजीपति ने धर्मशाला बनवाई, तो वह उस विशेष पूंजीपति का दान है, पूंजीवाद का नहीं। पूंजीपति एज ए क्लास अभी भी खड़ा हुआ नहीं है। वह फुटकर है, बंटा हुआ है। और उसके पास, खुद ही वो गिल्टी कॉन्शेस से भरा हुआ है। यह बड़े मजे की बात है। कई बार लंबा प्रचार सच को झूठ कर देता है। और पूंजीपति अपराधी भाव से भरा हुआ है, यानि उसको भी ऐसा लगता है कि है तो समाजवाद ही ठीक। मेरे पास बड़े से बड़ा धनपति आता है तो वह भी कहता है कि है तो समाजवाद ही ठीक। आएगा तो वही। एक ऐसी नपुंसकता है पीछे, जो दोहरे तलों से खड़ी हो गई है। एक तो उसको अपराध का भाव, तो उसको लग रहा है मेरे पास बड़ा महल है, दूसरे के पास छोटा झोपड़ा है।

तो उसको लग रहा है, मेरे पास बड़ा धन है, दूसरे के पास बिल्कुल नहीं है। तो उसको भी डर तो लग ही रहा है कि मैंने कहीं से चूस लिया है। पूंजीपति को भी पता नहीं है कि पूंजीवाद शोषण की व्यवस्था नहीं है, क्रियेशन की व्यवस्था है। वो पूंजी पैदा कर रही है। इसलिए पूंजीपति कुछ कह नहीं सकता। नेतागण के फायदे हैं। और इंदिरा जी के विरोध में जो लोग हैं, उनकी भी इतनी हिम्मत नहीं कि समाजवाद के विरोध में बोलें। क्योंकि समाजवाद के विरोध में बोल कर कहीं वोट न खो जाए। इसलिए समाजवाद के विरोधी लोग भी चाहे मोरारजी हों, चाहे जनसंघी हों, और चाहे कोई और हों, वह भी भाषा समाजवाद की बोलेंगे। वह भी कहेंगे समाजवाद चिहए। बल्कि इंदिरा जी से बढ़-चढ़ कर बात करेंगे कि इतना जोर से राष्ट्रीयकरण करो।
यह एक जाल है, और इस जाल में जब तक इस मुल्क में कुछ ऐसे लोग इस जाल को तोड़ने की कोशिश न करें, जिनका कोई राजनैतिक स्वार्थ नहीं। और जिनको जनता के वोट से कोई मतलब नहीं, जो खुद पूंजीपति नहीं हैं, और जो खुद राजनीतिज्ञ नहीं हैं।
प्रश्नः शायद वह मौका आ जाए। अगर आप जैसे अभी इस प्रजा में ये कांशेसनैस ला रहे हैं कि राजनीतिक कांशसनेस क्या है? तो अगर कोई पार्टी, और कोई जनता का समूह आपको कहे कि पूरे देश में आप ये कांशसनेस फैलाने का काम करें, तो आप क्या नहीं करेंगे?
नहीं, बिल्कुल करूंगा। लेकिन उस राजनैतिक पार्टी के लिए नहीं करूंगा। बिल्कुल करूंगा, लेकिन यह चेतना फैलाने के लिए ही करूंगा। और मेरी अपनी समझ यह है कि जैसे ही कोई व्यक्ति राजनैतिक पार्टी से बंध जाए, वह चेतना फैलाने का काम नहीं कर सकता। क्योंकि राजनैतिक पार्टी के अपने स्वार्थ हैं। वह उतनी दूर तक चेतना फैलाना पसंद करेगी, जितनी दूर तक उस चेतना का शोषण वो कर सके। उसके आगे नहीं। उसके आगे नहीं। अगर मुझसे कोई राजनैतिक पार्टी राजी हो तो मैं, बिल्कुल राजनैतिक चेतना फैलाने का काम कर सकता हूं, लेकिन उस पार्टी के लिए नहीं, उस पार्टी का ही मैं उपयोग करूंगा, राजनैतिक चेतना फैलाने के लिए। और ऐसी कोई सीमा नहीं है, जिसमें मैं राजनैतिक चेतना को रोकने को राजी हूं।
जनसंघी एक सीमा तक फैलाना चाहेगा। कांग्रेसी दूसरी सीमा तक फैलाना चाहेगा। कम्युनिस्ट तीसरी सीमा तक फैलाना चाहेगा। लेकिन मैं असीम राजनैतिक चेतना चाहता हूं। मुझे इसकी फिकर नहीं है कि कौन पार्टी है। मुझे इसकी फिक्र है कि मुल्क राजनीतिक रीति से बुद्ध हो, तो गलत पार्टी नहीं चुनी जाएगी। मुझे इससे मतलब नहीं कि कौन सी पार्टी चुनी जाए और अगर मुझे इससे जरा भी मतलब है कि यह पार्टी चुनी जाए, तो फिर मैं उसी सीमा तक मुल्क की राजनैतिक चेतना को जगाने की कोशिश करूंगा, जिस सीमा तक वह पार्टी चली जाए। और सब पार्टियों की सीमाएं हैं। राजनैतिक चेतना की कोई सीमा नहीं। तो मैं शुद्ध रूप से राजनैतिक चेतना फैलाना चाहता हूं। तो मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं कि मुल्क क्या निर्णय लेता है, मैं कहता हूं कि मुल्क निर्णय होश से ले। इससे.ज्यादा मुझे प्रयोजन नहीं है।

प्रश्नः मुल्क कभी होश से निर्णय ले सकेगा?

ले सकता है।

प्रश्नः का स्टैंडर्ड तो वही नीचा होता है?

बिल्कुल होता है नीचा, लेकिन उसको नीचा रखने के हमने सब इंतजाम किए हैं। इसलिए वह नीचा है। अन्यथा नीचा नहीं रहेगा। जैसे-हुआ क्या है, हमेशा से वह सारे लोग, जो सत्ता में हैं, चाहे धर्म की सत्ता हो, चाहे राज्य की हो, चाहे धन की हो। जो भी सत्ता में हैं वह भीड़ की चेतना को बढ़ने नहीं देना चाहते हैं। वह भीड़ की चेतना को दबा कर रखते हैं। और भीड़ को भीड़ बना कर रखते हैं। मेरा प्रयास यही है कि भीड़ नहीं है, एक-एक व्यक्ति के पास चेतना है। और उस चेतना को अगर जगाया जा सके, जो कि जगाई जा सकती है, लेकिन उसे मैं तभी

जगा सकता हूं जब मेरा कोई निहित स्वार्थ नहीं। अगर मेरा जरा ही निहित स्वार्थ है, तो मैं भी चाहूंगा कि भीड़-भीड़ रहे। क्योंकि कल उसकी जागी हुई चेतना मेरे स्वार्थ के विपरीत भी पड़ेगी।
इस मुल्क में अब कुछ ऐसे लोगों की जरूरत है, जिनका कोई राजनैतिक स्वार्थ नहीं है। जिनका कोई आर्थिक स्वार्थ भी नहीं है। अगर मैं आज जनता से जा कर कहता हूं कि मेरी बात समझी जा सकती है, क्योंकि न मैं उससे वोट मांगने कभी जाता हूं, न कोई पार्टी बनाने कभी जाता हूं, अगर आज मैं पूंजीवाद की बात भी करूं तो उसको समझ में आ सकती है क्योंकि न मैं कोई फैक्ट्री चलाता हूं, न मैं कोई पूंजीपति हूं, न मैं कोई धन इकट्ठा करता हूं।
इस मुल्क को ऐसे दस-पचास विचारशील आंदोलनों की जरूरत है, जिनका कोई निकटतम लक्ष्य ही नहीं है। जिनका सिर्फ एक ही लक्ष्य है कि मुल्क जो भी निर्णय करेगा, उसके पास एक बोध हो और उस बोध के बाद जो भी निर्णय हों, हम उसके लिए राजी हैं। मुझे पर्टिकुलर निर्णय की जरूरत नहीं है। निर्णय बोधपूर्वक किया जा सके इसकी फिक्र है, और जनता इसके लिए बिल्कुल जगाई जा सकती है। अगर हम जनता को गलत चीजों के लिए सचेत कर सकते हैं, तो ठीक चीजों के लिए भी सचेत कर सकते हैं। अब जब जनता समाजवाद के लिए सचेत हो सकती है, चिल्ला सकती है कि समाजवाद चाहिए, तो हम जनता को यह भी समझा सकते हैं कि समाजवाद चाहिए, इसका इसका मतलब तुम्हें पता है, कि उसका क्या मतलब होगा? और अगर वो मतलब स्पष्ट किया जा सके, जो कि एक सच्चाई है, तो जनता उसके लिए भी जगाई जा सकती है।

प्रश्नः ऐसी चेतना जगाने का काम आज से पहले किसी हमारे नेता ने या धर्म पुरूष ने या कोई विचारक ने अपने देश में किया है?

नहीं किया, उसका कारण है। हमारे देश का कोई भी धर्म गुरू अब तक विशेष धर्म से बंधा हुआ व्यक्ति है। या जैसे बुद्ध जैसा व्यक्ति अगर पैदा भी हुआ जो किसी विशेष धर्म से बंधा हुआ नहीं था, तो बुद्ध के मरते ही जो परंपरा खड़ी हुई, वो बुद्ध से बंधी हुई थी। उसने बुद्ध धर्म बना दिया। इस हिन्दुस्तान में चाहे राजनैतिक, चाहे धार्मिक, एक ऑर्गेनाजेशन, एक संगठन, एक संप्रदाय, एक चर्च खड़ा हो गया। और उस चर्च के अपने स्वार्थ होने शुरू हो गए। इसलिए मैं इस संबंध में भी बहुत सचेत हूं कि मेरा कोई अनुयायी न हो, और मेरा कोई पंथ न हो, और मेरा कोई संप्रदाय न हो। मैं मरूं तो बिल्कुल मर जाऊं, मेरे पीछे कोई नामलेवा भी न हो।

प्रश्नः खामखां इतनी तकलीफ उठा रहे हैं, आपने यह जो किया है, वह इसको कौन चलाए रखेगा?

यह जो मेरी दृष्टि है, मेरा मानना ही यह है, कि जो मैं कर रहा हूं अगर
वह सच है, तो संगठन उसको नहीं जगाए रख सकता, क्योंकि संगठन उसी सच के आधार पर अपने स्वार्थ खड़े कर लेगा।

प्रश्नः आप कहते हैं, अगर आप जो कर रहे हैं अगर सच है, मतलब क्या आपको अभी भी भरोसा नहीं कि आप जो कर रहे हैं वह सच है?

मुझे तो पूरा भरोसा है, लेकिन मेरा भरोसा आपको संक्रामक न हो जाए। इसलिए मैं सदा अगर कहता हूं। मुझे तो पक्का भरोसा है। लेकिन जब मैं आपसे बात कर रहा हूं तो आपके लिए वह सच, मेरा सच आपके लिए सच तब तक नहीं होना चाहिए जब तक वह आपके चिंतन और आपके बोध का हिस्सा न हो जाए। तब तक मैं यदि की बात करता हूं। आपके लिए वह अगर है। और अगर मैं कहता हूं कि नहीं बिल्कुल सच है जो मैं कह रहा हूं, वह बिल्कुल सत्य है, तो मैं आपको फॉलोवर बनाने की कोशिश में लग गया। इसलिए मेरी प्रत्येक बात के साथ अगर लगा ही हुआ है। उसमें मेरी तरफ से कोई कमी नहीं है। लेकिन जिससे मैं कह रहा हूं वह कहीं

संक्रामक न हो जाए। मेरा भरोसा कहीं उसका भरोसा न बन जाए। जो विरोध हो जाता है, अगर हम बहुत जोर से बोलें तो दूसरा आदमी मान लेता है, बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, नहीं इतने जोर से कैसे कह रहे हैं? हैजिटेट करते हैं तो दूसरा आदमी भी सोचता है, नहीं तो सोचता नहीं। तो अब दुनिया को जिन लोगों को विचार देना है उनको हैजिटेशन के साथ देना है। उन्हें डॉगमैटिक असेप्शन के साथ नहीं देना है। उनको ये नहीं कहना है कि जो मैं कह रहा हूं, वह परमात्मा की आवा.ज है, तुम्हें सिर्फ मान ही लेना है और कुछ नहीं करना है। इसी से नुकसान हुआ है।
तो न मैं किसी पंथ, न किसी संप्रदाय, न किसी पार्टी, न किसी मत, मेरा भरोसा व्यक्ति पर है। और व्यक्ति की गरिमा पर मेरी श्रद्धा है। और मैं मानता हूं, अगर मेरी बात ठीक है, तो कुछ व्यक्तियों को जरूर ठीक लगेगी। और वे व्यक्ति काम जारी रखेंगे। लेकिन वह भी व्यक्ति की हैसियत से काम जारी रखना है। उसको अब श्रृंखला नहीं बनानी है। श्रृंखला बनते ही बात मर जाती है। और श्रृंखला बनते ही बात स्वार्थ पैदा करती है।
अब जैसे कि समझे कि बुद्ध ने कहा, बुद्ध ने, इसके बाद बुद्ध के मठ बन गए, विहार बन गए। अब इन मठों और विहारों को चलाना है, तो एस्टैब्लिशमेंट शुरू हुए। इनके लिए धन भी चाहिए, धनियों का सहयोग भी चाहिए। तो फिर बाद के मठों और बाद के संयासियों को जो बुद्ध के पीछे आए, उनको रोज-रोज समझौता करना पड़ा। रोज-रोज समझौता करना पड़ा।

प्रश्नः अब कभी भी आपको धन की जरूरत नहीं पड़ती?

नहीं, मुझे बिल्कुल नहीं पड़ती। आपके घर सोता हूं, आपके खाना खा लेता हूं। बात खत्म हो गई। जब तक आपको लगता है यह आदमी खाना देने योग्य बात करता है, आप दे देते हैं, नहीं तो बात खत्म हो गई। किसी दिन दूसरे के घर ठहरता हूं, तो वह मुझे खाना दे देता है। मुझे कोई धन की जरूरत नहीं।

प्रश्नः मिसाल के तौर पर आपके यह सब जो विचार लोगों में फैल रहे हैं, पुस्तकों के रूप में? वह सारे मेरे मित्र हैं, जैसे आपको ठीक लगता है, मेरी एक किताब लोगों तक पहुंचा देनी तो आप फिक्र कर लेते हैं। तो यह सब अनस्टैब्लिश है।

प्रश्नः अगर कल आपको खाना न मिले तो आप हमारे साथ बात कैसे करेंगे?

जब तक वह कर सकूं बिना खाना किये करता रहूंगा, फिर मैं मरना पसंद करूंगा, बजाय बात करने के। मगर खाने के लिए समझौता नहीं करूंगा।

प्रश्नः आज सुबह मैंने आपसे लैक्चर सुनी है, और आप मरने की बात कर रहे हैं?

हां, मैं इसलिए मरने की बात कर रहा हूं, कि मैं जो कह रहा हूं उसमें अगर मुझे समझौता करना पड़े, तो मैं जीने की बजाय मरना पसंद करूंगा। अगर आपका खाना शर्त के साथ आए मेरी तरफ, तो मैं मरना पसंद करूंगा। बेशर्त जिंदा रहना पसंद करूंगा, सशर्त जिंदा रहने का मुझे कोई अर्थ मालूम नहीं पड़ता।

प्रश्नः आप अभी तक जिंदा क्यों रहते हैं, और यह दुनिया में रखा भी क्या है?

इस दुनिया में बहुत कुछ रखा है, और इस दुनिया में जिंदा रहने का भी बहुत कुछ अर्थ है, ऐसा कुछ भी नहीं है, जो इस दुनिया में न पाया जा सके। और जो कुछ भी पाया गया है, चाहे दुनिया के बाहर का भी कुछ पाया गया हो, तो वह भी इसी दुनिया में पाया गया है। फिर मेरी अपनी समझ यह है कि जहां तक मेरा अपना काम है, जहां तक मैं संबंधित हूं, मैं आज मर जाऊं तो मुझे कोई हर्जा नहीं

है। क्योंकि जो मुझे पाने जैसा लगता है, वह मुझे लगता है, मिल गया है। लेकिन इस आनंद का एक दूसरा हिस्सा भी है, और वो बांटने का हिस्सा है। आनंद के साथ एक खूबी है, एक खूबी है कि अगर वो आपको मिल जाए तो आपको उसे बांटना ही पड़ेगा। और दुःख के साथ एक खूबी है कि अगर आपको मिल जाए तो आप दरवाजा बंद रख कर कोने में बैठ जाएंगे। दुःख सिकोड़ता है, और कहता है कोई न मिले। और आनंद फैलता है, और कहता है कोई मिल जाए। आनंद बंटना चाहता है। और मजा ये है कि जितना आनंद हमें मिलकर मिलता है, उससे ज्यादा आनंद तब मिलता है जब हम उसे शेयर कर पाते हैं। जब हम उसे बांट पाते हैं। तो वह भी मेरी वजह से जिंदा है। मुझे लगती है कोई बात आनंदपूर्ण तो जब आपको मैं कह पाता हूं तो मेरा आनंद बढ़ता है वह हजार गुना ज्यादा हो जाता है। और जब वही चमक आपकी आंख में मुझे दिखाई पड़ती है, तो मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रह जाता। पर वह बेशर्त ही जी सकता है, उसमें कोई शर्त नहीं हो सकती।

प्रश्नः कभी आपने सुसाइड का भी खयाल आया होगा?

नहीं, मुझे कभी खयाल नहीं आया। क्योंकि जिंदगी मुझे इतनी आनंदपूर्ण मालूम होती है।

प्रश्नः जब कि आपने ये ज्ञान प्राप्त नहीं किया होगा तब?

तब भी नहीं, उसका कारण है। उसका कारण है, क्योंकि जिंदगी को सदा जैसी
वह है, उसमें क्या-क्या खोजने योग्य है, उसमें मेरा रस है। असल में सोसाइड का ख्याल ही तब हमें आता है, जब जिंदगी हमें खोजने योग्य नहीं रह जाती।
एक आदमी किसी को प्रेम करता है, और वो औरत उसे न मिल पाए, तो वह मरने की सोचता है, वह मरने की नहीं सोचता, वह असल में एक शर्त के साथ जिंदा रहने को था, वह कहता था कि यह औरत मुझे मिलेगी तो ही मैं जिंदा रह सकता हूं।
मेरी कोई शर्त नहीं है। मैं ये कहता हूं कि जिंदगी जो मुझे देगी, उसमें मैं खोजूंगा कि मेरा आनंद कितना हो सकता है। अगर मैं किसी स्त्री को प्रेम करता हूं, वह मर जाए, तो मैं नहीं मानता उस स्त्री के साथ मेरा मरना हो जाए। क्योंकि मेरे प्रेम की अनन्त संभावनाएं हैं। बल्कि और स्त्री मिल सकती है, जिसको मैं प्रेम कर सकता हूं। और शायद जब उसे मैं प्रेम करूं तब मैं सोचूं कि बेहतर ही हुआ कि वो स्त्री मर गई। नहीं तो यह स्त्री मुझे न मिल पाती। मेरा मतलब समझ रहे हैं ना आप। मैं जिंदगी जैसी है, उसमें कितना आनंद खोजा जा सकता है इसकी चूंकि चेष्टा में लगा हूं इसलिए मुझे मरने का कभी ख्याल नहीं आया। जिंदगी मुझे रोज ज्यादा रसपूर्ण मालूम पड़ी है।

प्रश्नः जब मैं बैठ कर आपके बारे में सोच रहा था तो यही ख्याल आता था
कि आप जिंदे ही क्यों रहते हैं और मरने का खयाल ही क्यों नहीं आता?

यह ख्याल आता है, बिल्कुल ठीक है, यह स्वाभाविक है सवाल उठना।

प्रश्नः... साल की भी हो, तो उसके बाद आप जाएंगे जैसे महावीर और बुद्ध
भी गए हैं, तो फिर दुनिया उसी की उसी रतार से चलेगी, यह उन्नीस सौ अस्सी में भी दुनिया यही रहेगी, आप खामखां में तकलीफ क्यों उठा रहे हैं?

नहीं, यह मेरे लिए तकलीफ होती तो नहीं मैं उठाता। अगर यह मेरे लिए तकलीफ होती तो आप जो कहते हैं वह ख्याल आ गया होता, मुझे मर जाना चाहिए। तकलीफ तो मैं कभी न उठाऊं। अगर मुझे लगे ये तकलीफ है, तो मर ही जाना उचित है। लेकिन ये मेरी तकलीफ नहीं है, यह मेरा आनंद है। यह मेरा आनंद है। और यह आनंद... ।
एक छोटी घटना में आपसे कहूं, बुद्ध जिस दिन मरे, उस दिन उन्होंने आखिरी क्षण में अपने भिक्षुओं से पूछा कि कुछ और तो नहीं पूछना। मेरी मौत करीब आ रही है। तो भिक्षुओं ने कहा कि आपने जिंदगी में हमें इतना समझाया

है कि अब कुछ पूछने को भी नहीं बचा है। तीन बार बुद्ध ने पूछा, फिर उन्होंने कहा कि ठीक है। वो वृद्ध के पीछे चले गए जहां बैठे थे, और आंख बंद करके मृत्यु में डूबने लगे, तब एक आदमी भागा हुआ आया। वो उसी गांव में रहता था, और तीन बार बुद्ध उस गांव से गुजरे थे, लेकिन अपनी दुकान पर व्यस्त था और लोगों ने उससे कहा भी था, तो उसने कहा अगली बार जब आएंगे तो आ जाऊंगा, आज तो बड़ा काम है। आज उसको पता चला कि बुद्ध मरने के करीब हैं तो वो वहां उठ कर भागा हुआ आया। आके उसने कहा कि बुद्ध कहां हैं? मुझे उनसे कुछ पूछना है। भिक्षुओं ने कहा, अब चुप रहो, अब तो उन्होंने आंख भी बंद कर ली। अब उचित नहीं है, वह खोज भी चुके और हम मना भी कर चुके। लेकिन बुद्ध उस वृक्ष के पीछे से वापिस लौटकर आ गए। और उन्होंने कहा, जब तक मैं जिंदा हूं तुम मुझे इस आनंद से वंचित मत करो कि एक आदमी आया तो उसे मैं कुछ और दे जाऊं।
मेरे लिए वो तकलीफ नहीं है। मरने के आखिरी क्षण में भी अगर मुझे पता
चल जाए कि आप आ गए तो मैं उठ के बैठ जाऊं कि दो बातें और हो लें। मेरे लिए जिंदगी एक शेयरिंग है।

प्रश्नः जो अपने यह जिंदगी अपनी मर्जी से तो ली नहीं है?

नहीं ऐसा ख्याल नहीं है मेरा। हम जो कुछ भी कर रहे हैं, हमारी मर्जी से
कर रहे हैं, बहुत बार हमारी मर्जी का भी हमें पता नहीं है, यह दूसरी बात है। कर तो सब हम अपनी मर्जी से रहे हैं। अगर मैं जिंदगी में आया हूं तो यह मेरी मर्जी है, मेरे पिछले जन्मों की मर्जी है। मुझे याद न हो यह बात हो सकती है। आपको याद न हो, यह बात हो सकती है। लेकिन इस जगत में सुख और दुख, पीड़ा और आनन्द हम सब अपनी मर्जी से ही पैदा कर रहे हैं लेकिन कठिनाई क्या है, जब हम बीज बोते हैं, और जब फल आते हैं, इन दोनों के बीच इतना फासला होता है कि हम जुड़ नहीं पाते। अगर मैं कल आपको गाली दे आया था, और आज आप रास्ते में मुझको वहां मिल कर पत्थर मार दिए तो मैं जोड़ नहीं पाता। तो आज मैं सोचता हूं इस पत्थर को तो मैंने कभी मांगा ही नहीं था, यह तो मेरी मर्जी ही न थी। बाकी आ गई, नहीं वह मेरी ही मर्जी है, क्योंकि मेरे बिना चाहे क्या हो सकता है मेरे प्रति।

प्रश्नः आप स्वीकार करते हैं, फिर भी यह मानते हैं कि पिछला जन्म और अगला जन्म और यह जन्म भी हो सकते हैं?

नहीं यह मैं मानता नहीं हूं, यह मैं जानता हूं।

प्रश्नः मतलब क्या, आप मानते नहीं हैं और जानते हैं?

मानने का मतलब है कि किसी और ने कहा है। और मैं मानता हूं। जानने का मतलब है, मैंने जाना है। और मैं मानता नहीं हूँ। इतना फर्क पड़ जाता है। और बहुत बड़ा फर्क है, बहुत बड़ा फर्क है।

प्रश्न : आप यह समझा सकते हैं बात?

यह मैं समझा सकता हूं। लेकिन समझाने से आप, मानने से ज्यादा नहीं जा सकेंगे। लेकिन दिखा सकता हूं, वहां आप जानने में भी जा सकते हैं। तो उसकी सारी प्रक्रियाएं हैं। और बिल्कुल साइंटिफिक प्रक्रिया हैं कि आप अपने पिछले जन्म का स्मरण कैसे करें?

प्रश्नः यह फिजिकल साइंसेज और यह स्प्रिचुअल साइंसेज मतलब कि आप कहते हैं कि यह जन्म है और पिछला जन्म होता है और अगला जन्म भी होगा, बैठ जाएगा आपके दिमाग में?

बिल्कुल बैठ जाएगा, क्योंकि जहां साइंस है, वहां ताल-मेल बैठ ही जाता है। अगर दोनों साइंस हैं। मानने का और साइंस का मेल नहीं बैठेगा। जानने और सांइस का मेल बैठ जाएगा। उसके कारण हैं, क्योंकि चाहे कितनी भी भीतरी बात हो उसके पाने के उपाय अगर वैज्ञानिक हैं, तो बाहर का विज्ञान आज नहीं कल राजी हो जाएगा। अभी मैं एक ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी में एक लेबोरेट्री है, दिलावार लेबोरेट्री। उसमें वह कुछ वैज्ञानिक प्रयोग कर रहे हैं और बहुत हैरान हो गए। एक फकीर ने यह कहा कि मैं कुछ बीजों के ऊपर प्रार्थना करके पानी छिड़क देता हूं, यह बीज तुम्हारें उन बीजों से जल्दी अंकुरित हो जाएंगे, जो मेरी प्रार्थना के पानी के बिना तुमने बोए हैं। जिस पर प्रयोग किया गया है। सैकड़ों प्रयोग किये गए हैं इस बात पर, और वह फकीर हर बार सही निकला। एक ही पुड़िया के आधे बीज इस गमले में डाले गए, आधे इस गमले में। सारा खाद, सारी मिट्टी सब एक-सा और जो पानी छिड़का गया वह भी एक, पानी भी अलग नहीं। लेकिन इस गमले पर डाले गए पानी के लिए उसने प्रार्थना की और डाला, और इस पर बिना प्रार्थना के डाला गया। और हैरानी की बात है उसके हर प्रार्थना के सब बीज जल्दी अंकुरित हुए। बड़े पत्ते आए, बड़े फूल आए और उसकी गैर प्रार्थना के बीज पिछड़ गए। अब दिलावार लेबोरेट्री ने अपनी इस साल की रिसर्च रिपोर्ट में कहा कि हमें इंकार करना मुश्किल है। और इससे भी बड़ी जो घटना घटी, वह यह घटी कि उस फकीर ने एक बीज पर खड़े होकर प्रार्थना की, ईसाई फकीर है जो गले में एक क्रॉस लटकाए हुए है, और दोनों हाथ फैला कर वह आंख बंद करके खड़ा हुआ है, और इस बीज के लिए उसने प्रार्थना की। और जब उस बीज का फोटो लिया गया, तो बड़ी हैरानी की बात हुई, उस फोटो में क्रॉस का पूरा चिह्न है। तो आज नहीं, अब वह दिलावार लेबोरेट्री तो बिल्कुल वैज्ञानिक नियमों से चलती है।
अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गए। कि इस बीज के फोटोग्राफ में क्या इतनी संवेदनशीलता हो सकती है कि फकीर का चित्र उसमें भीतर प्रवेश कर गया। और उसकी छाती और उसके फैले हाथ, और क्रॉस उसमें पकड़ गया। लेकिन धर्म इसको बहुत दिन से कहता है। इतना जरूर है कि आम तौर से धर्म मानने वाले लोगों के हाथ में है, और इसलिए उन दोनों में ताल-मेल नहीं बैठता। मेरे जैसे आदमी के तो हाथ में तालमेल बैठने ही वाला है, उसमें कोई उपाय नहीं है। क्योंकि मैं मानता यह हूं कि धर्म जो है वह आंतरिक विज्ञान है। और विज्ञान जो है वो बाह्य धर्म है। और इन दोनों के सूत्र तो एक ही होने वाले हैं। आज देर लग सकती है, कि विज्ञान धीरे-धीरे बढ़ कर भीतर आ रहा है। अगर धर्म भी धीरे-धीरे बढ़ कर थोड़ा बाहर आए, तो किसी जगह मिलन हो सकता है। और वह मिलन आने वाली सदी में निश्चित ही हो जाएगा। और हो सकता है इसी सदी में हो जाए।
पिछले जन्म की स्मृति उतना ही वैज्ञानिक तथ्य है, जैसे इस जन्म की स्मृति। लेकिन दोनों में थोड़े से फर्क हैं, अब जैसे अगर मैं आपसे अभी पूछूं कि उन्नीस सौ पचास एक जनवरी आप थे तो, लेकिन स्मरण है आपको? नहीं है। अगर आपकी स्मृति से ही हमको मान कर चलना पड़े तो उन्नीस सौ पचास एक जनवरी हुई या नहीं हुई, और आपको कोई स्मरण नहीं और आप कहते हैं मैं था। आप किस आधार पर कहते है कि आप थे? क्योंकि आपको बिल्कुल स्मरण नहीं कि एक जनवरी उन्नीस सौ पचास में क्या हुआ। आप सुबह कब उठे, कब सोए, क्या खाया, क्या पीआ? किससे क्या बात की आप कहते हैं, कुछ भी नहीं। अगर आप ही प्रमाण हैं, और कोई कैलेंडर नहीं बचे दुनिया में, तो आप सिद्ध न कर पाएंगे कि एक जनवरी, उन्नीस सौ पचास थी, क्योंकि पहली तो बात यह कि आपको स्मरण ही नहीं, जो बुनियादी चीज तो कट गई है। लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि आपको अगर हिप्नोटाइज्ड किया जाए, तो आपको एक जनवरी, उन्नीस सौ पचास की सब स्मृतियां लौट आती हैं। तत्काल। मैं सैंकड़ो प्रयोग किया, और मैं दंग रह गया, कि आपको एक जनवरी जो आप होश में बिल्कुल नहीं बता पाते, बेहोशी में बताते हैं। वह स्मृति मिटी नहीं है। सिर्फ आपके अनकांशस में चली गई है। उसे उभारा जा सकता है। ठीक इसी भांति पिछले जन्म की स्मृतियां और गहरे अनकांशस में चली गई हैं। मां के पेट में भी जब बच्चा होता है, अगर मां गिर पड़ी हो तो उसकी चोट की स्मृति भी उसमें बनती है।

प्रश्नः वैसे वह स्मृति जीन्स के द्वारा अपने पास में आती कहां से होगी? अभी हम इस जन्म में इस मां के पेट से पैदा हुए हैं, और दूसरे जन्म में दूसरी मां के पेट में से पैदा हुए। तो यहां के जीन्स स्ट्रक्चर वही हैं, और वहां के जीन्स स्ट्रक्चर दूसरे हैं। तो दोनों का मेल कैसे... ?

जीन्स का जो स्ट्रक्चर है, उससे सिर्फ बॉडी आती है। और भी एक स्ट्रक्चर है आत्मा का, जिससे जीन के स्ट्रक्चर का कोई संबंध नहीं। इसलिए कल तो यह हो सकेगा कि जीन तो हम कैमिकली भी बना लें, लेकिन इससे भी आत्मा के लिए कोई फर्क नहीं पड़ जाएगा। इससे इतना ही फर्क पड़ेगा कि कल मां के पेट में जो प्राकृतिक रूप से तैयारी होती थी, और फिर आत्मा प्रवेश करती थी, अब इतना होगा कि लेबोरेट्री में वह तैयारी हो जाएगी, सिचुएशन पैदा हो जाएगी, आत्मा अब भी प्रवेश करेगी। आत्मा का प्रवेश और उसकी यात्रा अलग है। आपका जीन तो सिर्फ आपके शरीर को स्ट्रक्चर देता है। और शरीर की जहां तक मैमोरी का संबंध है वहां, तक वो आपकी मां की मैमोरी लाता है। आपका जो जीन है, जो सैल है पहला, वह आपके बाप और अपनी मां दोनों की मैमोरी को लाता है। आपके बाप की आंख का रंग भी उसमें होता है, आपकी मां की बुद्धि की क्षमता भी होती है। शरीर का रंग भी होता है, और ऊंचाई भी होती है। स्वास्थ्य भी होता है। वह सब लेकर आता है। वह बिल्टिनप्रोग्रील है। यह शरीर का बिल्टिनप्रोग्रील है। लेकिन जिस मैमोरी की मैं बात कर रहा हूं वह मैमोरी इस शरीर का हिस्सा ही नहीं है। इस शरीर का हिस्सा ब्रेन है, माइंड नहीं है। तो ब्रेन का तो बिल्टिनप्रोग्रेल लेकर आता है जीन, लेकिन माइंड का बिल्टिनप्रोग्रील लेकर नहीं आता। माइंड का बिल्टिनप्रोग्रील तो पिछले जन्म से आता है। और वह बिल्कुल अलग यात्रा है। और इन दोनों का मेल हैं आप।
एक आपका फिजिकल स्ट्रक्चर है, जिससे वह यात्री प्रकट होता है, जो भीतर आपके आया है। ऐसे ही जैसे यह बल्ब जल रहा है, इसमें दो स्ट्रक्चर हैं। एक तो बल्ब है और एक इलेक्ट्रिसिटी है। हालांकि बल्ब को हम फोड़ दें, तो इलेक्ट्रिसिटी एकदम नदारद हो जाएगी। और हो सकता है, कोई कहे कि एक ही स्ट्रक्चर था, बल्ब ही। क्योंकि जब बल्ब को फोड़ा तो इलेक्ट्रिसिटी कहां है? लेकिन बल्ब सिर्फ मैनिफेस्ट कर रहा था। इलेक्ट्रिसिटी फिर भी अलग थी। और उससे प्रकट होती थी।

प्रश्नः अगर हमारा शरीर यही स्तर पर रहे तो मर जाएगा, तो आत्मा के लिए
तो घर नहीं बनेगा। घर नहीं रहेगा, तो उसका अलग अस्तित्व है?

अलग का मतलब केवल इतना है कि जब तक आप जी रहे हैं, तो जिसको आप हाथ कह रहे हैं, यह वही हाथ नहीं है जो मर के होगा। उसको फिर हाथ कहना गलत होगा। असल में यह हाथ एक लीविंग ऑर्गेनिज्म है। तो जब मैं कह रहा हूं, जैसे मैंने आज सुबह कहा, कि शरीर दिखाई पड़ने वाली आत्मा है, तो उससे मेरा मतलब यह है, कि एक मरे हुए आदमी का हाथ, और एक जिंदा आदमी का हाथ, जिंदा आदमी का हाथ शरीर है। मरे हुए आदमी का हाथ एक पदार्थ है। मरे हुए आदमी के हाथ को मैं हाथ भी कहने को राजी नहीं हूं। क्योंकि अब हाथ का कोई भी तो काम नहीं करता वह। न पकड़ता है, न उठाता है, कुछ भी तो नहीं करता। हाथ तो एक फंग्शन था। अब सिर्फ मैटर रह जाता है।
एक कलम को पकड़ कर मैं लिख रहा हूं, जब मैं लिख रहा हूं कलम से, तभी तक वह कलम है, क्योंकि लिखा जाना उसका बेसिक फंग्शन है। जब मैंने उसको रख दिया, तब वह कलम नहीं है। तो जो शरीर मरने के बाद रह जाता है, उसको शरीर कहना ठीक नहीं है। कहना चाहिए इतना ही सिर्फ कि इस सब पदार्थ का आत्मा ने शरीर की तरह उपयोग किया था, वह छोड़ गई इसको अब। अब न वह उपयोग बचा, न वह उपयोग करने वाला बचा। अब तो सिर्फ मैटर रह गया है, पड़ा हुआ।

प्रश्नः और फिर आत्मा छोड़के कहां आ गई। शरीर से तो बाहर निकल जाती है, बिल्कुल हो सकेगा।
प्रश्नः तो फिर उसी वक्त पर आत्मा कहां से वापस आएगी?

हां, इस सबको समझने की बात है, ना। एक तो, दस साल बाद जब वो जिंदा होगा,
तो कई प्रॉब्लम्स सामने खड़े होंगे। अभी वह जिंदा हुआ नहीं, मैं मानता हूं, वह हो जाएगा। लेकिन कई प्राब्लम खड़े होंगे। पहला प्रॉब्लम तो यह खड़ा होगा कि हो सकता है उसमें दूसरी आत्मा प्रवेश कर जाए। और इसकी पर्सनैलिटि भिन्न हो। और पर्सनैलिटि तो शरीर के मरने की भी बात नहीं, अगर एक प्रेत एक आदमी में प्रवेश कर जाए तो भी पर्सनैलिटि बदल जाती है। पर्सनैलिटि के बदलने का जहां तक मामला है, पर्सनैलिटि के बदलने का जहां तक मामला है, एक आदमी में दो-तीन आत्माएं भी कभी रह सकती हैं, तो तब उसकी दो-तीन पर्सनेलिटि हो जाती हैं। और सी.ज ऑफ फ्रेनिक भी हो जाता है। तो जिस दिन हम आदमी के बचाए हुए शरीर को वापस लौटाएंगे, उस दिन कई प्रॉब्लम खड़े होंगे। हो सकता है यह आदमी दूसरा ही आदमी हो। सिर्फ शरीर उसका वही हो। और यह भी हो सकता है किसी क्षणों में कि यह उसी आदमी की आत्मा वापस लौट आए। यह भी संभावना है। क्योंकि अगर उस आदमी की आत्मा ने इतने दिन तक शरीर नहीं लिया, तो पासिबिलिटिज फिर है कि लौट आए। जैसे कि मैं यह घर छोड़ कर चला जाऊं, और अहमदाबाद में मैं घर खोजूं और मुझे घर न मिले, और एक झाड़ के नीचे बैठा रहूं, दो महीने बाद यह घर फिर अवेलेबल हो जाए, तो मैं वापस लौट आऊं। तो उसके प्रॉब्लम्स तो अलग खड़े होंगे।

प्रश्नः तो इतने वक्त तक आत्मा कहां रहेगी?

यह जो हमारा कहना है कहां, जिसको अभी हम स्पेस समझते हैं, वह स्पेस बहुत सी चीजों के लिए घर है। जैसे आप यहां बैठे हैं, लेकिन एक एक्स-रे की किरण आपको पार करके निकल जाती है, अगर एक्स-रे की किरण जानती हो तो वह पूछेगी, कहेगी यहां कोई आदमी नहीं, क्योंकि मैं तो रूकती नहीं। आप ऑप्सेक्शन नहीं हैं उसके लिए। एक प्रेत आत्मा के लिए भी आप ऑप्सेक्शन नहीं हैं। इसी कुर्सी पर एक प्रेत आत्मा भी बैठ सकती है आपके साथ। तो कहां से मेरा मतलब है किसी और लोक में चली जाती है, ना, वह ठीक इसी स्पेस में है। लेकिन बहुत दूसरे डायमेन्शन में जीती है। इसी स्पेस में लेकिन डायमेंशन और हैं। जैसे कि हम यहां बैठे हैं, उस कमरे में हवा भरी हुई है, एक रेडियो रखा हुआ है, हम रेडियो चलाते हैं, और रेडियो से आवाज आनी शुरू हो जाती है। जब तक आवाज नहीं आती है, तब भी इस कमरे से आवाज गुजरती है। इसी कमरे से।

प्रश्नः सुनाई न देने वाली आवाज?

वह गुजरती है। तरंग रहती है, लेकिन हमने रेडियो से उसे पकड़ लिया।
मीडियम एक आत्मा को इसी भांति पकड़ता है। जो कि थी, लेकिन पकड़ने का उपाय न था।